मरु-प्रदीप

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड
इलाहाबाद

द्वितीयावृत्ति : १९५८ ईसवी

मुद्रक : हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद

उपहार

परिचय

अंचल के सभी उपन्यासों की कथा-भूमि निम्नमध्यवर्ग है और उनके पात्र रूढ़िग्रस्त सामाजिक अनुशासन के विरुद्ध विद्रोह करते हुए अन्त में एक विराट आन्दोलन में अपने विद्रोह को समाहित कर देते हैं। वास्तव में आज के निम्न वर्ग की नैतिक कुण्ठाओं से उद्भूत वैयक्तिक विद्रोह के लिये यही एक स्वस्थ दिशा हो सकती है। किन्तु इस प्रकार के समस्त तथाकथित प्रगतिवादी कथाकारों के प्रति मेरी एक शिकायत रही है, कि वे अपने कथा-निर्माण और चरित्र-निरूपण में अत्यधिक यांत्रिक हो जाते हैं और उनकी कला में यथार्थ की तीखी चोट न रह कर प्रचार की छिछली ध्वनि आ जाती है।

इसके दो कारण हैं। पहली बात तो यह कि ऐसे लेखक इस बात को सर्वथा भूल जाते हैं कि मार्क्सवाद ने बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि कला का रूप-गठन सर्वथा राष्ट्रीय होना चाहिए। दूसरी बात यह है कि उनके पात्रों में अपना निज का व्यक्तित्व होना चाहिये। कलाकार को सिर्फ उस व्यक्तित्व का सामाजिक प्रगति की पृष्ठभूमि में तटस्थ आकलन मात्र करना चाहिये, उसकी सामाजिकता तथा असामाजिकता का आनुपातिक विवेचन करना चाहिये, एक दिशा सुझा देनी चाहिये।

अंचल के इस उपन्यास की सफलता मैं इसी में मानता हूँ। अंचल ने जो समस्या उठाई है उसके प्रति वे पूर्णतया जागरूक हैं, उसका ऐतिहासिक विश्लेषण उन्होंने किया है, उसका स्वस्थ जनवादी समाधान उन्हें मालूम है, वे उसकी पृष्ठभूमि में अपने सभी पात्रों का तटस्थ अंकन करते हैं।

कथानक इतनी फिसलनवाली जमीन पर है कि कलम का सन्तुलन बिगड़ जाने की बहुत संभावनाएँ थीं। या तो लेखक एक कवित्वमयी भावुकता में उलझ कर शांति के चरित्र का उदात्तीकरण प्रारंभ कर देता या विद्रोह का झंडा खड़ा करने के बहाने मन की सारी अतृप्त यौन लालसाओं को पृष्ठों पर उतारने लगता। किन्तु लेखक ने दोनों पक्षों को सम्हालते हुए जो चित्रण किया है वह यथार्थ के प्रति अधिक ईमानदार है और मनोविज्ञान की दृष्टि से अधिक पुष्ट, सोशल रीयलिज्म के निकट है। अंचल की भाषा में एक अजब कवित्वमय तेजी है, एक जादू है जिसका मैं सदा से कायल रहा हूँ।

निम्नमध्यवर्ग—जिसका चित्रण अंचल ने किया है—वह वास्तव में अब सिवा मरुस्थल के और क्या है, जिसका ज़र्रा-ज़र्रा बिखर चुका है, रस और जल के नाम पर जहाँ केवल मृगतृष्णाएं हैं, मरीचिकाएं मात्र हैं। उस धरातल पर चलने वाली निष्पाप आत्माएं गहरे अँधेरे में भटक रही हैं। कथाकार ने उनके पथ-प्रदर्शन के लिये एक दीप बालू की वेदिका पर स्थापित किया है। यह दीप उनके मार्ग प्रशस्त करेगा, उन्हें एक नये जनवादी समाधान की ओर ले चलेगा।

—धर्मवीर भारती

एक

मा-बाप ने जिस समय शांति नाम रक्खा था, उस समय भविष्य की निर्मम शक्तियाँ अट्टहास कर उठी थीं। जैसे रेगिस्तानी पूर्णिमा पूर्णिमा कही जाने पर भी पूर्ण नहीं होती, वैसे बहुत आशाओं से शांति नाम रखे जाने पर भी शांति विवाह के दो साल बाद और गौने के एक साल पहले ही विधवा हो गयी। पर जीवन में अशांति का पारावार उमड़ने पर भी शांति अपने नाम को सार्थक करती है। मा-बाप संयम, कांति और आभा की, श्रद्धा और शील की इस साकार रूप-प्रतिमा को सफेद अधमैली साड़ी पहने घर में जब ऊपर नीचे घूमते देखते हैं—रूखे बालों के गुच्छों को लापरवाही से छिटकाये—तब वे बेरहमी के साथ विधाता को कोसने लगते हैं। शांति कभी कुछ नहीं कहती। जिस भगवान् ने उसे ऐसा आमूल उजाड़ देने वाला दुख दिया है, उसी की सेवा में लगी रहती है। दुनिया का सुख उसकी आँखों में नहीं ठहरता पर दुनिया का दुख इतना विशाल विरामस्थल छोड़ कर कहाँ जाय? बराबर पढ़ती रहती है और पुस्तकों को पढ़ते समय उठने वाली शंकाएं, जीवन के प्रतीक बने इस चिरन्तन विरामचिह्न में आपसे आप लय हो जाती हैं—अपनी सारी प्रसन्नता खो बैठती हैं।

तो विधाता की दी हुई इस पुण्य अग्नि की ज्वाला को अपने वर्षा के प्रथम मेघ के निर्मल जल जैसी रूपराशि में बाँधे शांति चलती जाती है। घर में मा है, बाप है और एक छोटा लगभग दस वर्ष का भाई है जो खेलता अधिक है, पढ़ता कम। इस छोटे से अति सीमित वातावरण में शायद शांति का दुर्भाग्य उसे पागल बना देता यदि पड़ोस के—घर से बिलकुल लगे हुए घर के परिवार में उसका सुखद

प्रवेश अनेक वर्षों से न हो चुका होता। अपने इस मुँहबोले भाई और भाभी के पास पहुँच कर शांति सब कुछ भूल जाती है। ऐसा सुखद परिवार जिसके बीच में पहुँच कर उसकी कल्पना में आपसे आप मिठास आने लगती है—उसकी आशाएं और इच्छाएं, कठिन व्रत, पूजा, उपवास, नियम के बन्धनों में जकड़ी उसकी अतृप्त उत्सुकताएं अन्तर में बहती अश्रु-मन्दाकिनी से निकल कर उल्लास की चढ़ती धूप में आ खड़ी हो जाती हैं। भाई विमल कालेज में प्रोफेसर हैं। कालेज से एक डेढ़ बजे छुट्टी पा जाते हैं। शांति जानती है उन्हें कितने काम और व्यस्तताएं रहती हैं। उनके घर लौटने का भी कुछ ठीक नहीं। शांति तीन बजे के बाद से ही आँगन के बीच का दरवाजा खोल कर चक्कर लगाना शुरू कर देती है जैसे वंशी की व्यथापूर्ण तान कुंज-कुंज की तरु छाया में अपने युगों के खोये साथी का संधान करती है। आज शनिवार है! शांति जानती है, भैया का आज केवल एक पीरियड होता है और वे साढ़े ग्यारह बजे खाली हो जाते हैं। लेकिन शांति को आश्चर्य हुआ—चार बजने वाले हैं—भैया नहीं आये। बोली—भाभी, भैया कब आयेंगे?

भाभी ने चोटी करते हुए आइने के सामने से मुँह हटा कर कहा—मेरे पास आ—वहाँ से क्या पूछती है—पास आने में डर लगता है क्या?

हाँ भाभी, तुम्हारी यह नागिन जैसी चोटी! वहीं से बता दो भाभी! सचमुच डर लगता है।

भाभी ने फौरन आइना उठा कर आलमारी में रख दिया। सिर पर साड़ी ओढ़ती हुई आगे बढ़ कर शांति का प्रदोष के पीले आलोक जैसा मुँह देखती बोली—आज दिन भर नहीं दिखाई पड़ी। आज शनिवार है। बारह बजे से भैया की खोज शुरू हो जानी चाहिये थी।

मुझे आज हरी की शिकायत करनी है। अम्मा-दादा से वह बिलकुल नहीं डरता। उन्हीं का भय मानता है।

बड़े भाई से छोटे भाई का उलहना देना है। क्या किया है—सुनूँ तो। तुम अगर शिकायत करोगी तो वह न करेगा?

उसने मुझे मारा है, थप्पड़ों से।

क्यों? हरी बड़ा दुष्ट होता जाता है। क्यों मारा तुझे? तूने उसे छेड़ा होगा। अभी बच्चा है।

नहीं भाभी, मैंने केवल इतना कहा था, क्यों इधर-उधर घूम रहा है! आ, मेरे पास बैठ कर सवाल लगा। एक शब्द अधिक नहीं कहा, भाभी! कहते-कहते शांति ने अपना म्लान मुख नीचे कर लिया।

होगा भी! आ, चल मेरे साथ ऊपर के कमरे में। वहाँ से खिड़की खोल कर अपने भैया का रास्ता देखना। आज सुबह कह रहे थे, शांति कभी सुबह नहीं आती है। मैंने कहा, सुबह उसकी पूजा का समय रहता है। जिस दिन से शाम की पूजा के लिए देवता मिल जायगा, उस दिन से शाम का दर्शन भी दुर्लभ हो जायगा।

खिड़की खोल कर सड़क की ओर देखते ही पचास-साठ कदम पर विमल साइकिल पर आता दिखा। शांति ने जमीन पर कूद कर ताली बजाते हुए कहा—भैया आ गये—आ गये भैया आ गये! और दरवाजा खोलने के लिए नीचे उतरी। भाभी कौतुकपूर्ण नेत्रों से, जलसिक्त हृदय से और विद्रोह-क्षुब्ध आत्मा से कमरे के बाहर छत पर आ नीचे आँगन की ओर देखने लगीं। पुराना होते हुए भी यह कौतुक देखे बिना रहा नहीं जाता।

विमल कह रहा था—चल हट उधर, पगली है क्या! मेरी साइकिल तू उठायेगी! रोज तुझे मना करता हूँ पर वही बौखलपन की बात। कहते-कहते विमल ने साइकिल बैठक में रख दी। कमरे में पड़ी दो-चार चिट्ठियों और पत्र-पत्रिकाओं को उठा पतलून से क्लिप निकालता हुआ ऊपर की ओर चला। पीछे-पीछे लज्जारुण कुसुम कपोल लिये शांति चली।

कमरे में इधर-उधर पत्नी को न पाकर विमल छत पर आकर

बोला—जब मैं कमरे में दाखिल होता हूँ तो आपको यहाँ छत पर आकर खड़े होने की इच्छा होती है। क्यों लल्ली है न !

शांति के कुछ कहने के पेश्तर ही विमल की पत्नी ने मुँह फेर कर मुस्कराते हुए कहा—मैं समझी तुम बैठक में लल्ली की शिकायतें सुन रहे होगे। मैं क्या जानती तुम फौरन आ जाओगे।

कैसी शिकायत, लल्ली ! भाभी ने तुम्हें कुछ कहा है ? मैंने कई बार तुमसे कहा है, तुम्हें जो कुछ कहना हो, मुझसे कह दिया करो—लल्ली से कुछ न कहा करो।

तुम भाँग पिये हो ? मैं लल्ली को कभी कुछ कहती हूँ या आज ही कहूँगी ? यों एकतरफा डिग्री दे देने की आदत न होती तो एल०-एल० बी पास करके प्रोफेसरी न करते होते।

क्या बात है लल्ली—तुम्हारा मुँह इतना भारी क्यों है ? किसी ने तुम्हें डाँटा-फटकारा है ? अम्मा ने या दादा ने ? अरे, तू बोलती क्यों नहीं ? मेरा मुँह क्या देख रही है। देखना है तो अपनी भाभी का मुँह देख; सेंदूर, काजल बेंदी-बूँदी से लैस है।

शांति ने कहा—हरी ने फिर मुझे मारा है भैया। पाँच छः घूँसे और थप्पड़ पीठ में मार कर भाग गया।

विमल जोर से हँस पड़ा—उसकी सांत्वना-सिंचित हँसी से शांति कुसुमित बनानी-सी खिल गयी। बोली—आपको हँसी सूझती है, भैया ! अभी मेरा पूरा जीवन कटना है। कल को दादा-अम्मा न रहेंगे, तब मेरी क्या दशा होगी। इसकी बहू आ जायगी, तब दोनों मिल कर मुझे मारेंगे।

नहीं, पगली, उस चूहे के मारने से रोती है ? कहाँ है हरी, जा बुला ला। (पत्नी से) तुम कुछ चाय-पानी दोगी या मैं यों ही सूखता रहूँगा ? आज प्रिंसिपल से मेरी फिर लड़ाई होते-होते बची। बताऊँगा। लल्ली, खड़ी क्या है ? हरी को बुला ला।

जल्दी क्या है भैया ? बैठो भाभी। मैं चा बना कर लाती हूँ। चा पी लो भैया, तब हरी इजलास में पेश होगा।

कैसी बात है लल्ली ! तुम बैठो भैया के पास। मैं चा बना लूँगी। तुम काम करोगी और मैं यहाँ बैठ कर गप्प लड़ाऊँगी ? खूब ! कह कर विमल की पत्नी नीचे को चल पड़ी।

दोनों कमरे में अकेले रह गये। विमल एक-एक कर अपनी चिठ्ठियाँ पढ़ने लगा। अगस्त का महीना था। शांति ने जाकर चुपचाप पंखा चला दिया। हवा लगने पर एक बार विमल ने आँख उठा कर शांति की ओर देखा फिर चिठ्ठियाँ पढ़ने लगा। नीचे भाभी चा और नाश्ता बना रही थी। शांति चुपचाप दीवार से टिकी खड़ी थी। विमल ने लगभग आध घंटे के बाद जब पत्नी के आने पर सिर ऊपर उठाया तब उसके हाथ से चा का प्याला लेते हुए शांति से कहा—

अरे, तू बैठती क्यों नहीं ? तब से बराबर खड़ी है। तुझसे जो कहा जाता है उसका उल्टा ही करती है। चा पियेगी ? क्या कहा, नहीं ? अच्छा, पकौड़ी खाने में तो हर्ज नहीं है ? मेरे पास आ।

शांति चुपचाप आकर कुर्सी के पास खड़ी हो गयी। उमर लगभग बाईस-तेईस वर्ष की होगी पर देखने में पाँच-छः वर्ष छोटी ही लगती है। दुबली-पतली जैसे अशोक की नयी टहनी हो। महिमा की शुभ्र दुग्धफेन जैसी इस शिखा को निकट पाकर विमल को सदैव हवा में एक तृप्तिहीन भ्रांतिहीन उत्कंठित आग्रह छलका-छलका सा लगता है। पकौड़ी की तश्तरी शांति के सामने करता हुआ पत्नी से बोला—ले खा, तुम भी खाओ। कहाँ जा रही हो ?

और ले आऊँ। अपने लिये चा ले आऊँ। लल्ली, शुरू करो—मेरे लिए न रुको।

शांति ने चुपचाप दो पकौड़ियाँ निकाल लीं और खड़ी रही। विमल ने चा पीते हुए एक पत्रिका के पन्ने उलटने शुरू किये। चा

का प्याला खत्म करके मुँह ऊपर उठाया तो चौंक कर बोला—अरे, हाथ में लिये खड़ी है—खाती क्यों नहीं ?

शांति ने पकौड़ियाँ मुँह में डाल लीं और प्याला उठा कर बोली—आप दो प्याले पीते हैं, लाइये, भर लाऊँ। कह कर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये नीचे चल दी। विमल फिर पढ़ने लगा। तुरन्त ही नीचे से दोनों आ गईं। चा का प्याला विमल के सामने रख शांति ने कहा—भैया, मैं जाऊँ, हरी को बुला लाऊँ।

कूदती फाँदती शांति आँगन में पहुँची। हरी सामने बैठा शक्कर रोटी खा रहा था। माँ तखत पर बैठी दाल बीनती थीं। शांति को देखते ही मुँह चिढ़ाने लगा। शांति ने सागर की सी गंभीरता ओढ़ कर कहा—भैया बुला रहे हैं हरी !

हरी का कौर के लिए खुला मुँह खुला ही रह गया। 'ऐं' कह कर शान्ति की ओर देखने लगा। हाथ की रोटी तश्तरी पर रख कर चलने के लिए खड़ा होने लगा। शांति के ओठों के कोने पर बहुत चेष्टा करने पर भी मुस्कान फूट पड़ी। बोली—उनका हुक्म है जो काम कर रहा हो उसे पूरा करके आये। तुम रोटी खा कर चलो।

अच्छा ! कह कर हरी फिर घबरा कर बैठ गया और जल्दी-जल्दी रोटी निगलने लगा। पानी पी कर हाथ धोता हुआ बोला—बात क्या है दीदी तुम्हें तो मालूम होगी !

हरी ऐसे ही भय के अवसरों पर बहिन को दीदी कहता है। नहीं तो बराबर 'लल्लिया' कह कर बुलाता है। इस समय उसने 'दीदी' कह कर असाधारण सौजन्य का परिचय दिया और उत्तर के लिए उसका मुँह ताकने लगा—दिल में उत्सुकता और आशंका की छछूँदरें लोट रही थीं। भाभी की उसे कण-मात्र परवाह न थी, पर भैया ! उनसे वह न जाने कितना डरता था। उसे मालूम था उसके स्कूल के सब मास्टर, यहाँ तक कि हेड-मास्टर भैया का कितना अदब करते हैं और उनके सामने उनका सिर नीचा हो जाता है। जिस वस्तु के

लिए माता-पिता से कहने की उसकी स्वप्न में भी हिम्मत नहीं होती उसी को भैया उसकी पूरी बात सुने बिना ही सुलभ कर देते हैं। उन्होंने कभी उसे मारा नहीं, डाटा, फटकारा नहीं; पर उनका यह मौन तो सबसे डरावना है। शांति से कुछ उत्तर न पाकर बोला—अभी बुलाया है? ठीक बताओ न दीदी!

मा ने कहा—जाता क्यों नहीं? यहीं से कानून कर रहा है। काम होगा—चिट्ठी कहीं भेजनी होगी।

मगर हरी को इतनी जल्दी और सरलतापूर्वक बोध नहीं हो रहा था। वह जानता था, दीदी ने आज शिकायत की होगी। घी-शक्कर से चुपड़ी रोटी खा कर उठने पर भी भय से उसका गला सूख रहा था। चुपचाप शांति के पीछे-पीछे विमल के कमरे में आया और एक ओर खड़ा हो गया। शांति ने गंभीरतापूर्वक कहा—भैया मुज़रिम आ गया।

विमल ने अपना प्रशस्त मस्तक उठाते हुए कहा—हरी! हरी ने दोनों हाथ जोड़ कर नमस्ते करते हुए कहा—जी भैया।

संगीन शिकायत है तुम्हारे खिलाफ़—तुमने बड़ी बहन की पीठ पर आज फिर घूँसे जमाये हैं। एक दिन और तुमने ऐसी हरक़त की थी। मैंने तुम्हें कोई सजा नहीं दी। आज तुम्हें सजा देनी पड़ेगी। कुछ कहना है?

हरी के सामने विकट संकट था। झूठ बोल कर इस सारे कसूर से इंकार किया जा सकता है पर भैया से झूठ बोलना तो......और सच बोलने पर न जाने कौन सी सजा मिले। हकलाते हुए बोला—अब ऐसा नहीं करूँगा भैया!

क्या विश्वास! उस दिन भी तुमने यही कहा था। मैं झूठे आदमी की बात पर विश्वास नहीं करता। लल्ली! बोल क्या सजा दी जाय इस गधे को। अपनी बहिन पर हाथ उठाता है नालायक।

भाभी ने बीच में पड़ कर कहा—जज साहब, मैं कुछ बोल सकती हूँ?

जरूर ! तुम मुज़रिम की भाभी हो। तुम्हें पैरवी करने का हक है।

मैं पैरवी नहीं करती—केवल दंड निर्धारित कराती हूँ। लल्ली, तुम्हें याद है, इसने तुम्हें कितने घूँसे-थप्पड़ मारे ?

याद है भाभी, बीस घूँसे—बारह-थप्पड़।

झूठ है भैया—रोता हुआ हरी बोला। बिलकुल झूठ है। इस बखत तुम भैया के सामने झूठ बोल लो......

नहीं तो क्या करेगा ? मैं यहाँ न होता तो क्या करता—और मारता लल्ली को ? यही तेरे कहने का मतलब है न ? अभी-अभी तूने कहा था ऐसा नहीं करूँगा कभी। फौरन धमकी देने लगा ?

हरी ने सँभल कर कहा—भैया, मैं अब भी कहता हूँ कभी ऐसा न करूँगा पर यह झूठ बोलती है। मैंने कुल छै घूँसे मारे हैं।

भाभी—खैर, छै सही, कुछ तो माना। मेरा कहना है लल्ली भी इसकी पीठ पर गिन कर छै घूँसे लगाये।

हरी ने करुण दृष्टि से भाभी की ओर देख कर कहा—मैं टैं हो जाऊँगा भाभी। यह कितनी बड़ी है—मैं कितना छोटा हूँ।

तू जितना छोटा है, उतना ही खोटा है। जब मारता है, तब बड़ा बन जाता है—सजा मिलते समय छोटा।

हरी फिर रोआसा हो गया। शांति ने कहा—मैं घूँसे नहीं मारना चाहती, आप इसे डाट दीजिये। फिर मुझ से झगड़ा न करे और समय व्यर्थ न गँवाया करे, पढ़ा लिखा करे।

मैंने तुम्हें सवाल लगाने को दिये थे हरी ! तुमने लगाये ?

नहीं भैया—उन्हीं सवालों को लगाने के लिए मैंने कहा था जब इसने मुझे मारा। बिना कहे मुझसे रहा न जायगा—यह मुझे ऐसे ही पीटेगा। मैं कहाँ तक तुमसे रोज शिकायत किया करूँगी।

भाभी कभी कुछ नहीं कहती हैं। यही मुझे क्यों कहती है ?

विमल ने कहा—भाभी खुद गोबर-गनेश हैं। उसे क्या मतलब तुम्हारे पढ़ने-लिखने से। वह तो चाहती है तुम ऐसे ही मूर्ख बने रहो।

तू दीदी क्यों नहीं कहता रे ? पिटने पर तुला हुआ है ? देख लल्ली, आज से अगर यह तू तकार करे और दीदी न कहे तो मुझे बतलाना। मैं इसके कान गर्म करूँगा—नाक टेढ़ी कर दूँगा—तब 'ईडियट' मानेगा। पकड़ दोनों कान।

हरी दोनों कान पकड़ उठने-बैठने लगा। विमल ने कहा—गिन पच्चीस तक गिनती।

हरी ने जैसे-तैसे गिनती खत्म की और चुपचाप खड़ा हो गया। विमल अखबार पर सरसरी निगाह डाल रहा था। हरी पाँच मिनट के बाद सहमता हुआ बोला—मैं जा सकता हूँ ? कुछ काम करना है ?

नहीं, तू जा।

भाभी ने कहा—पहले मेरे साथ पकौड़ियाँ खा ले। स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरती हुई पीछे-पीछे नीचे उतरीं। शांति और विमल फिर अकेले रह गये। आराम-कुर्सी पर लेटते हुए विमल ने कहा—खड़ी क्यों है—बैठ जा कुर्सी पर। तेरे पैर थकते नहीं ? मैं खड़े-खड़े एक क्लास लेता हूँ तो दूसरी बार बैठ जाता हूँ।

शांति ने बड़ी-बड़ी नुकीली पलकों के भीतर से चिड़िया के बच्चों जैसी उछलती आँखों को विमल के चेहरे पर स्थिर कर कहा—आप प्रोफेसर हैं। आपकी बात दूसरी है। भैया ! लड़के तुम्हें तंग नहीं करते ? मैंने सुना है कालेज के लड़के बड़े शैतान होते हैं और प्रोफेसरों को बनाया करते हैं। सच है यह ? तब······तब आप क्या करते हैं—कैसे पढ़ाते हैं ?

पहले तुम कुर्सी पर बैठ जाओ, तब मैं जवाब दूँगा।

शांति ने सहम कर कुर्सी पर बैठते हुए साड़ी का पल्ला सिर पर रखते हुए कहा—और लड़कियाँ भैया ! बड़ी चंचल होती हैं कालेज में पढ़ने वालीं। वे भी तुम्हें परेशान करती होंगी। तब क्या करते हो ? जब दोनों मिल जाते होंगे तब और हैरान होते होंगे। सब मिल कर एक साथ बोलते होंगे; तुम अकेले किसे-किसे उत्तर देते होगे !

और कुछ पूछना है या बस ?

पूछना बहुत कुछ है। जब तक तुम्हारे पास बैठूंगी पूछती रहूँगी। सिवाय पूछने के—तुमसे लेने के—मैंने किया ही क्या है ? मैं साकार प्रश्न हूँ जो उठते-बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते, सोते-जागते, चला करता है। आदि नहीं—मध्य नहीं—अंत नहीं—जिसकी रेखाओं में दिग-दिगन्त की शून्यता वक्र हो कर स्पंदित होती रहती है—झंकृत हो उठती है। मेरे प्रश्नों की न चलाओ तुम। उनकी थाह नहीं है। उनके अर्थ न हो—संगति न हो—संतुलन न हो पर जो नहीं है उसको लेकर मेरे प्रश्न नहीं चलते। और मेरे सामने जो है, वह बेमानी हो सकता है, उसे बेकार और बेनिशान कहा जा सकता है, पर उसके अस्तित्व से इंकार नहीं किया जा सकता। तुमने मुझे बताया नहीं।

क्या करेगी इन बातों को जान कर ?

यह मैं भी नहीं जानती। जानने के पहले यह जाना भी नहीं जा सकता। पर जिन बातों को जानने में कोई हर्ज न हो, उन्हें जान लेना चाहती हूँ। तुम्हीं ने उस दिन कहा था, जानना ही होना है। मुझे मालूम है, मैं कभी हो नहीं सकती। जानकर ही क्यों न अपनी तृष्णा की आंशिक पूर्ति करूँ।

यही जानने को बाकी बचा है। सारी विद्या पढ़ ली है न ! सुन। लड़के हों या लड़कियाँ, उन्हीं प्रोफेसरों को तंग करते हैं और बनाते हैं जो पग-पग पर अपने प्रोफेसर होने के लिए माफी माँगते चलते हैं—मेरा मतलब है, मौन भाषा में। जो अध्यापन को आत्मअभिव्यक्ति का माध्यम न मान कर सुविधा और सौदा समझते हैं—जो अपनी हीनता की भावना को एक नकली बौद्धिक आभिजात्य-सूचक अलगाव के द्वारा जाहिर करते हैं—जिनके पास स्वार्जित जीवनसार और स्वतंत्र अन्तसज्योति नहीं होती—जो विचारों की स्वतंत्रता और दृष्टि की विभिन्नता का आदर नहीं कर पाते। मुझे कोई तंग नहीं करता—

कोई बनाता नहीं। जो प्रतिक्षण बनने के लिए तैयार रहता है और खुद अपने को इतनी बेरहमी से बनाता है—निर्दयतापूर्वक अपना मजाक उड़ाता है कि उसे बनाने की आवश्यकता उसके विद्यार्थी भी नहीं समझते। जिसने तय कर लिया है कि वह कभी तंग न होगा वरन प्रसरित होता जायगा उसे कौन तंग करेगा? तू भर न करना। औरों को मैं समझा बुझा लूंगा।

मैं तुम्हें तंग करूँगी! यही एक लालसा रह गयी है, भैया! इसीलिए इतनी पूजा, पाठ, आराधना भक्ति करती हूँ पर यही बल विधाता मुझे नहीं देता। जिस दिन मेरे भीतर इतनी शक्ति आ जायगी उसी दिन समझूँगी समूचा जन्म सफल हो गया! यही तो लाख चेष्टा करने पर भी नहीं पैदा होता। तुमने एक दिन कहा था—स्वतंत्रता के अर्थ होते हैं बड़ी से बड़ी गलती कर सकने का अधिकार। मैं इतनी स्वतंत्र कहाँ भैया!—शांति पैरों के नाखून से फर्श खोदने लगी!

तुम्हें इतनी हौंस है तो तंग कर लो। लेकिन एक बात बताओ, सचमुच किसी को तंग करने में मजा आता है? अपनी भाभी को ही देखो। अक्सर मुझे परेशान करने की कोशिश करती है। और कोई पति हो तो सचमुच तंग आ जाय। पर यहाँ कोई असर नहीं। लल्ली! तुमने भी किसी को तंग किया है? मैं दावे के साथ कह सकता हूँ मुझे तुमने कभी तंग नहीं किया। पर सोच कर बताओ तो!

शांति की कोरों पर जल की एक-एक पूरी बूँद सरोज की पंखड़ी पर किरन के नूर की तरह ठहर गयी, जैसे उसकी शरबती आँखों को इससे अधिक की आज्ञा न थी। विमल ने चौंक कर कहा—रोती हो! पास आओ। हाँ, रोती हो। मुझे माफ करो लल्ली। मैंने शायद अनुचित किया। आइन्दा तुमसे ऐसी बात न करूँगा।

शांति के आँसू न जाने किस भाप में मिल कर उड़ गये। चेहरे पर मनुहार की मिटती-सी धूप चमकने लगी। बोली—तुम्हारे पास

बैठ कर कभी रो सकती हूँ ? आँख में कभी-कभी हवा का झोंका लगने में पानी भर आता है। औरों का जब तुम्हें तंग करना मुझे इतना खराब लगता है, तो मैं तुम्हें तंग कर अपनी नजरों में कहाँ रहूँगी ? तुम तो पूजा करने की वस्तु हो लेकिन......लेकिन जिसे मंदिर बनाने का भी अधिकार न हो, जो आजीवन शून्य की उपासना करने को मजबूर हो......उसे निराशा के उन्माद में कभी-कभी विद्रूप हो सकता है...... मुझे माफ़ करना। मेरी आत्मा निर्दोश है भैया ! मन को ही प्रमाद हो जाता है।

प्रमाद गुनाह है शांति ! प्रमोद तो समझ में आ जाता है पर प्रमाद ! वह समझ को निष्क्रिय और नाकाम कर देता है। मगर मैं इसे मान नहीं सकता। तुम प्रमाद के पीछे दौड़ने वाली नहीं हो। न प्रमाद तुम्हारा ही पीछा कर सकता है। इस सफाई की जरूरत क्या है ! मैं तुम्हें जानता नहीं ? अच्छा, अब हँस दो !

शांति हँसने लगी। विमल ने पूछा—तुम्हारे भगवान् का क्या हाल-चाल है ? जरा मेरी तारीफ उनसे करती रहना। तुम्हारी भाभी कहती थी, वे तुम्हारा कहना मानते हैं। अगर किसी ने मुझे तंग किया तो मैं समझूँगा तूने उनसे कहा नहीं वर्ना वे जरूर उसे रोक देते। जरा यह भी कह दे कि तेरी इस गुड़िया भाभी को सुबुद्धि दे दें। मेरी अक्ल में से उतनी काट लें। पर इसे जरूर दे दें। उनके पास से कुछ जायगा नहीं। मुझे अलबत्ता सुविधा हो जायगी।

आप भाभी को न जाने क्या समझते हैं। मेरे भगवान् का मजाक आप क्यों उड़ाते हैं। वे कभी आपके विरुद्ध एक शब्द नहीं कहते।

तू झूठ बोलती है। वे जरूर मेरी बुराई करते होंगे। मैंने कभी उनकी परवाह नहीं की—कोई नोटिस ही नहीं लिया। बड़े लोग ऐसे व्यक्ति से कभी संतुष्ट नहीं रहते। उनका अहं इसे गवारा नहीं करता। वे अकारण अपनी अवहेलना करने वाले के विरोधी और शत्रु बन

जाते हैं। भगवान को कुछ काम तो आखिर चाहिए। खाली बैठे-बैठे समय नहीं कटता।

आपको भगवान् पर बिलकुल विश्वास नहीं रह गया ?

पहले था, पर ज्यों-ज्यों तुम पर विश्वास बढ़ता गया त्यों-त्यों वह कम होता गया। जो भगवान तुम्हारी जैसी को इस सीमा तक लूट कर बर्बाद कर सकता है वह पाषाण पहले है, भगवान बाद में। पाषाण ही में यह गुण होता है कि वह पाषाण को टूटते देखकर पीड़ित नहीं होता—चीत्कार नहीं करता—मर्म-वेदना से बिद्ध होकर आर्तनाद नहीं करता। तुम उसी पाषाण को पूजती हो !

शांति के चेहरे पर पीड़ा की पीतिमा गहरी हो गयी। आँखों में एक अनहोना उजड़ापन घिर आया। विमल ने फिर कहा—जो भगवान तुम्हारे नसीब की मुश्कें इतनी बेरहमी से कस चुका है, उसी की तुम पूजा करती हो ! उसी की दोहाई देती हो ! मुझे अविश्वासी और गुमराह समझी हो। मैं पुरुष हूँ। तुम आततायी को पूज सकती हो। मेरे हृदय में उसके लिए नफ़रत है—केवल नफ़रत। दिखाई पड़ने पर कभी उसे द्वन्द्व के लिए ललकार सकता हूँ। तुम मेरे विद्रोह को नासमझी समझती हो। मैं उसे अपने होश में होने का चिन्ह मानता हूँ। उसका मजाक उड़ाने में मुझे उल्लास मिलता है।

नहीं, नहीं भैया ? ऐसा न कहो। अपने लिए मैं उत्तरदायिनी हूँ—मेरे कर्म उत्तरदायी हैं। भगवान के दरबार में न्याय होता है। शिकायत मुझे होनी चाहिये। मैं स्वप्न में भी ऐसी बात मन में नहीं लाती। मेरे सामने ऐसी बात न किया करो। मुझे चोट लगती है—दिल दुखता है। मेरा सारा विवेक उनके चरणों पर आश्रित है। तुम ऐसा न कहो—मेरी चेतना को सहारा दिये चलो। जीवन का चिरन्तन विरामस्थल है यह। तुम्हें बेचैनी क्यों भैया ! भोगने के लिए मैं काफ़ी नहीं ? तुम इस ज्वाला से दूर रहो। मैं जलने के लिए हूँ ! अब ऐसा न कहोगे, वायदा करो। तुम्हारे पैरों पर सिर रखती हूँ।

विमल ने प्रीति-सुकोमल करों से शांति का अनुनय-अंजलि-सा परिपूर्ण सिर उठा कर खड़े होते हुए कहा—इतनी बड़ी पीड़ा अकेले झेलना चाहती है। बहादुरी की हद नहीं दिखती। जेब से कलम निकाल ला और मेरा राइटिंग पैड। तीन-चार चिठ्ठियों का जवाब लिखना है। सुबह तुझे फ़ुरसत रहती नहीं। भगवान के आगे भाई को कौन पूछता है?

विमल बोलने लगा। शांति भारी मन ले लिखती रही।

दो

रात के दो बज गए थे। विमल छत पर टेबिललेम्प लगाए पढ़ रहा था। सामने पलँग पर पत्नी सो गयी थी। विमल को प्यास लगी है। न पत्नी को पानी देने के लिए जगाने की इच्छा होती है और न किताब छोड़ कर उठने की। छत के कोने कुर्सी पर सुराही गिलास रक्खा है। विमल ने पानी पीते हुए देखा—बगल की छत पर शांति जाग रही है। बोला—लल्ली! सोई नहीं? क्या कर रही है यहाँ खड़ी? तेरी भाभी तीन घंटे से सो रही है। जगा दूँ? बात करने की इच्छा है?

तुम नहीं सोये भैया! दो बज गए हैं। सो जाओ। अपने स्वास्थ्य की चिन्ता बिल्कुल नहीं होती?

तू है मेरी चिन्ता करने को पुरखिन! अँग्रेजी में एक कविता है जिसकी लाइन है—मैं अपनी मोमबत्ती दोनों सिरों से जला रहा हूँ। मेरी जीवन की बाती दोनों सिरे से जल रही है। बहुत काम हैं।

सो जाओ! रात बीत रही है। कब सोओगे?

पानी पीकर दूर जलती हुई बिजली की बत्तियों की ओर देखते हुए विमल ने कहा—किताब खत्म करनी है। अभी आधी हुई है। तुम

क्यों जाग रही हो ? मैं नौ बजे तक सोता रहूँगा। तुम्हें सूर्य निकलने के पहले पूजा में बैठना पड़ेगा।

मैं कुछ नहीं जानती। तुम बत्ती बुझा दो।

बत्ती बुझाने से नींद न आ जायगी। अँधेरे में पड़ा-पड़ा क्या करूँगा ? मुझे पढ़ने दो। नींद आप से आप आ जायगी तो पुस्तक बंद करनी पड़ेगी। फिक्र न करो। अनियम मेरे लिए नियम बन गया है। मैं आदत से लाचार हूँ। तुम कई दिनों से आईं नहीं। लगता है तुम्हें कभी-कभी मेरी बातों से तकलीफ पहुँचती है।

शांति कुछ न बोली। पूरी खुली निभ्रांत आँखों की उजाड़ कोमलता विमल को जैसे पकड़ाई न दे रही थी। बोला—मैं मजबूर हो जाता हूँ तभी कुछ कहता हूँ। मेरे कहने का कोई अर्थ न निकाला करो। जैसे मैं कह कर भूल जाता हूँ वैसे तुम सुन कर भूल जाया करो। कालेज में मैं सनकी कहलाता हूँ। तुम मुझे उससे अधिक न समझना। तुम आया करो। नाराज हो जाने से पड़ोस में आना जाना नहीं रुकता। तुम्हारे भगवान को कुछ न कहूँगा। कहो लिख कर दे दूँ।

आऊँगा भैया ! मैं नाराज कब थी। घर के कामों से फुरसत न मिली थी। हरी के कुर्त्ते—बाबू जी की गंजियाँ सीनी थी। कल आऊँगी। अब सो जाओ कितनी रात बीत गयी।

बीत जाने दो। मैं सो गया होता तब भी बीत जाती। जागता हूँ तब भी बीत जायगी। जिसे बीतना है वह किसी के सोने जागने की परवाह नहीं करता। तुम नाराज नहीं हो यह जान कर सुख मिला। मगर मेरा दिल विश्वास नहीं करता। कम से कम तुम खुश नहीं हो।

जब नाराज नहीं हूँ तब खुश ही होऊँगी। मेरी खुशी क्या—नाराजी क्या ? तुमसे नाराज होऊँगी तो भगवान मुझसे नाराज होंगे।

तुम माफ कर दोगे—वे न माफ करेंगे।

इसलिए कि मैं इंसान हूँ वे भगवान हैं। माफ करने लगें तो

भगवान कैसे ? मैं यह सब क्यों कह रहा हूँ। मैंने तय कर लिया है भगवान को लेकर कभी तुम से कोई बात न करूँगा। तुम उनकी पूजा करती हो यही क्या मेरे लिए काफी नहीं कि मैं उनका आदर करूँ—कम से कम तिरस्कार तो न करूँ। जिसका तुम आदर करो उसका आदर तो मुझे करना ही होगा। जाओ सो जाओ।

जो मैं तुमसे कहती हूँ वही तुम मुझसे कहती हो। यह भी कोई बात है। प्रोफेसरों में यह आदत होनी चाहिए। एक प्रोफेसर से किसी ने कहा—आपके लड़के आपसे बिल्कुल नहीं डरते। जानते हो भैया। उन्होंने क्या कहा ? बोले—मैं कब लड़कों से डरता हूँ ?

कुतर्की दिमाग पाया है तुमने। शरारत से बाज नहीं आती। इस तरह की बातें करती हो—फिर कहती हो 'सो जाओ'। कोई प्रोफेसर नहीं मौलवी रहा होगा। इतनी अकड़ पंडितों और मौलवियों में होती है।

नहीं भैया ! युनिवर्सिटी का प्रोफेसर था। सच कहती हूँ। मौलवी और पंडित पाठशाला में पढ़ाते हैं। वहाँ लड़कों को उनसे डरना ही पड़ता है। यह विश्वविद्यालय की बात है।

वाइसचांसलर ने तुम्हें लिखकर भेजा होगा। छोटे मुँह बड़ी बात करती हो। सोती क्यों नहीं जाकर। मेरा वक्त खराब कर रही हो। कल आना—जी भर कर बात कर लेना।

यह नहीं होने का। सोओ नहीं पढ़ने न दूँगी। कोई समय है पढ़ने का। सुबह जब घंटे भर भाभी जगावेंगी तब आप जागेंगे। मुझे सब पता है। भैया ! जिस तरह किताबों को पढ़ा जा सकता है। वैसे ही आदमी का मन नहीं पढ़ा जा सकता ?

जरूर पढ़ा जा सकता है। उसके लिए हृदय में लगन होनी चाहिए आँखों में ज्योति—पुतलियों में तृष्णा और जीवन की प्यास चाहिए। जिसके मन में असंतोष औस अतृप्ति है वही दूसरों का मन

पढ़ सकता है। जो तृप्त है—आकंठ छका है वह दूसरों का दिल नहीं बाँच सकता है। आत्मा का आग्रह है यह—तभी पूरा हो सकता है।

लेकिन इसमें भूल होने की अधिक संभावन होती होगी। किताब में जो लिखा रहता है उसका एक निश्चित अर्थ होता है। मन के संबन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। मन में अर्थ भी रहता है अनर्थ भी। संगति भी—संघात भी। तब क्या होता होगा भैया!

कुछ नहीं होता लल्ली! एक हलका सा झटका—कभी आँखों में चार बूँद आँसू—कभी वह भी नहीं। कभी एक सांस्कृतिक मनो-रंजन—कभी जीवनव्यापी वेदना की परिणति। लेकिन भूल यहाँ कम होती है। जो मन को बाँचते हैं वे ठीक बाँचते हैं। जो नहीं बाँच पाते वे बिल्कुल नहीं बाँच पाते। एक प्रेरणा होती है यह जो न सीखने से आती है न भूलने से भूलती है। वेदना की सृष्टि है यह। इसके लिए जीवन की जड़े प्रतिपल सींचने वाला विश्वास चाहिए। अखंड, अपराजेय अनहोना किन्तु अवदात विश्वास! तुममें यह शक्ति है। तुम्हारी साधना ने उसे पैना कर दिया है।

गलत सोचते हो तुम! मैं जब अपना मन नहीं पढ़ पाती तब दूसरों का कैसे पढ़ पाऊँगी। यही विवश हो जाती है वह नारी जो प्रवृत्ति-निवृत्ति का अन्तर नहीं जानती। मैं यहीं आकर ठहर जाती हूँ। सोचती हूँ यदि इस विरामस्थल पर ठहरने का सुभीता न होता तो भगवान जाने कहाँ जाकर लगती। बहते जाना ही जीवन का स्वरूप नहीं।

यह जीवन का स्वरूप नहीं वास्तविक जीवन है। लेकिन केवल बहने से काम नहीं चलता औरों को साथ बहाना भी पड़ता है। नदी की धारा यदि अपने साथ मानव, जीव, जन्तु, नावों को न बहा सके तो उसका बहना एक विडम्बना होगी। उसकी गति में जीवन का

सबसे कुरूप व्यंग होगा। बहना और बहाना—चलना और चलाना—जलना और जलाना यही जीवन है।

मैं अकर्मक हूँ। मुझसे सकर्मता की आशा करना ज्यादती है। जो निरुद्देश्य, निस्सार, निष्प्राण है उसे कभी दूसरों को प्रभावित करने की आशा—आकांक्षा न करनी चाहिए। मैं बराबर यही सोचा करती हूँ और जीवन की क्रिया यहीं तक है।

इसके आगे भी है लक्ष्मी! सोचने के बाद जानने की स्थिति है। यह जानना ही महसूस करना है। जानने के लिए सहभोक्ता बनना पड़ता है। तभी जीवन का असली रस जो आत्मा की तलहटी से छन कर आता है—मिलता है। तभी तुम्हें ज्ञात होगा कि जीवन केवल उपासना नहीं उपलब्धि है। देवता उपासना की वस्तु हो सकते हैं परन्तु हाड़-माँस का बना मानव केवल पूजा और अर्चना की वस्तु नहीं अधिकार और अपनाने की वस्तु है। उसकी माँग के आधार स्पंदन-शील होते हैं।

शांति ने कोई उत्तर न दिया। सनसनाती रात में उसे जीवन के सबसे अपरिचित किन्तु सबसे प्रिय लगने वाले स्वर सुनाई दे रहे थे। इस रहस्यपूर्ण गंभीर अर्धनिशा में उसे परिपूर्ति का संकेत और संदेश सुनाई दिया। पीले चाँद की चमक अंधकार की गहरी घनी अभेद्यता को कम कर रही थी और सृष्टि की शून्यता की साँस जैसे और गहरी हो गयी थी। मुँडेर पर अवसन्न कुमुदिनी जैसा अपना मुखड़ा टेके हुए वह स्थिर नेत्रों से विमल का मुख देख रही थी। विमल ने फिर कहा—यह न समझना मैं तुम्हारे देवता का उपहास कर रहा हूँ। भगवान की कल्पना जिसने की है उसने कल्पना को अपने जीवन के रंग प्रदान कर इतनी सजीवता और प्राणवानता दी है! उस मानवीय शक्ति और सौख्य का अहसास तुम्हें होना चाहिए। जान कर अनजान बनने से काम न चलेगा। बिना स्वर के गीत नहीं गाया जा सकता। मैं मानता हूँ इससे तुम्हारी आत्मा को विश्राम मिलता है पर एक प्रवंचक छलना

है यह ! जब इस छलना का स्वप्न टूटता है तब जो विस्फोट होता है वह सँभाले नहीं सँभलता। मैं संयम और संवरण का विरोधी नहीं। मैं मानता हूँ कि उनसे जिन्दगी का नूर बढ़ता है। अस्तित्व की आभा उभरती है। लेकिन संयम और साधना के आधार इतने दृढ़ होने चाहिए जो बड़े से बड़े तूफान झेल सकें। जिनमें मिटती छाया की शीतलता नहीं उगते रवि की जीवन्त ऊष्मा हो।

शांति ने स्वर की विह्वलता को यथासंभव दबाते हुए उच्छ्वसित हृदय से कहा—तुम समझते हो भैया ! सब मनों की भाषा एक होती है जैसे किताबों की अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू। ऐसा होता नहीं। बड़ा अंतर हुआ करता है। सब के मन की नाप तौल एक नहीं होती।

भूलती है लल्ला ! मन की भाषा सचमुच एक होती है जैसे सब किताबों की जो एक भाषा में लिखी जाती हैं, होती है। अंतर तू जिसे कहती है वह शैली में—अभिव्यक्ति के स्वरूप में होता है। पर इस अभिव्यक्ति को वहन करनेवाले मन के मूल स्वर एक हैं—चेतना के संवादक आधारों में कोई अन्तर नहीं। जीवन के ये निश्चयात्मक संकेत एक जैसे न होते तो दुनिया 'कासमास' न होकर 'केयास' बन गयी होती। लेकिन जैसे भिन्न-भिन्न लेखों की शैलियाँ भिन्न होती हैं वैसे ही भिन्न-भिन्न हृदयों के वातावरण, उनके स्वप्न, उनकी छायाएँ भिन्न होती हैं। सबके गुरुत्वाकर्षण की शक्ति और गति एक होती है। उनकी अस्पृश्यता का सौन्दर्य एक होता है। प्रकटीकरण में भेद है केवल। सृष्टि का अनिवार्य नितान्त आवश्यक क्रम है यह।

कुछ बातें अकथ्य और अप्रकटनीय भी होती हैं ! मन अभी तक उन भव्य, विराट, निश्चल भावों को व्यक्त करने वाली भाषा कहाँ बना पाया है। सभी गहरी बातें जो अन्तर्आत्मा की निरुपम संपूर्णता का अभिप्राय लेकर आती हैं अकथ्य अज्ञेय होती हैं जैसे गहरा प्रेम, गहरी पीड़ा, गहरा सौन्दर्य, गहरा अवसाद…उसे तुम पढ़ लेते हो भैया !

विमल चौंक सा पड़ा। शांति की मुद्रा में तन्मयता—एक दिव्य आर्जव का भाव था—होठों पर एक रहस्यभरी किन्तु चंचल चिड़िया सी हल्की फुल्की मुस्कान जो उद्वेगों को दबाते दबाते संयम की क्रिया-शक्ति में—एक कठोर कर्मठता में परिवर्तित हो चुकी थी। एक गहरे आह्लाद और भूख से निर्मित वह मुस्कान। तारों के बिखरे आकाश में विमल केवल आंशिक झलक पा सका। किन्तु वह उससे परिचित है—कई बार उसे देख चुका है। यहीं उसकी समूची आत्मा विद्रोह करने लगती है। बढ़ते हुए विस्मय, बढ़ती हुई पीड़ा जैसी यह प्रसरणशील मुस्कान विमल से देखो नहीं जाती। अभाव की नग्नता जब सपनों से भर भर जाती है तब ऐसी भेदक मुस्कान फूटती है। विमल चुप पड़ रहा।

शांति की पुतलियों में आत्मविश्वास की निजी दीप्ति दौड़ रही थी। जैसे तुम जो अनुसंधान करके जान सकोगे वह मैं दुख के इस सबसे बड़े घूँट को पीकर जान गयी हूँ—जैसे मेरे भीतर वह आज वर्षों से घटित हो रहा है। डूबती रात के धुँधले में अपनी छत की मुँडेर पर खड़ी यह मुग्ध निष्काम कौतुक और लापरवाही की स्पन्दन-शील प्रतिभा कुछ देर खामोश रहने के बाद बोली—मेरी बात का उत्तर दो न! दुनिया में पढ़ा सब कुछ जा सकता है पर उस गहरी अनुभूति को नहीं जो जीवन की सर्वग्राही विदग्धता का अभिशाप बन कर आती है। उस सम्पूर्ण भावैक्य को—उस आत्मान्तिक एकत्व को नहीं पढ़ा जा सकता भैया मेरे! जो प्रतिक्षण अपने को बढ़ते हुए संशय की दृष्टि से देखता है। जो शक्ति का बीजमात्र बनी रह कर फड़फड़ाया करती है—जिसे अंकुरित होने की इज़ाजत नहीं है उस तीक्ष्ण आकर्षण की विह्वलता को कौन समझ पाया है आज तक? लेकिन......तुम पढ़ लेते होगे।......तुमने बहुत पढ़ा है। तुम जरूर उसे पढ़ लोगे......मैं जानती हूँ......मेरा हृदय जानता है...... तुम जरूर पढ़ लोगे—कहते-कहते शांति के गले के कंपन का तार

प्राणोन्मेषकारी अवाकूता पास आकर टूट गया--एक अदम्य जीवन शक्ति से टकरा कर।

जरूर पढ़ लूँगा लल्ली!—विमल ने प्राणों की सारी करुणा उड़ेलते हुए कहा—कोई चाहे उसे न बाँच सके मैं उसे अक्षर अक्षर—रेखा-रेखा बिन्दु-बिन्दु तक जान लूँगा। इतना न पढ़ा होता तब भी जान लेता। प्राणों के फैलते हुए परिग्रह और किताबी पढ़ाई से कोई सम्बन्ध नहीं है। लेकिन......

लेकिन क्या......उत्कंठित स्वर से शांति ने पूछा तुम्हारे स्वच्छ तरल भावहीन हृदय में प्रकृति ही प्रकृति है। तुम्हारे पास अपना कोई नहीं जो तुम्हारे हृदय में आये--चाहे व्यक्त होने के लिए चाहे छिपा रहने के लिए। मगर तुम्हारे हृदय की निर्मलता पर—पारदर्शिता पर मुझे उतना विश्वास है जितना पहाड़ी झील के अन्तर पर जिसमें छोटा से छोटा बादल का टुकड़ा—उड़ता हुआ पंछी तक दिखायी दे जाता है।

क्यों! मेरे पास वे तंतु हैं जो जीवन मृत्यु का सम्बन्ध जोड़ते हैं। जिन पर अभाव अपनी पीड़ाओं का गुरुभार ले नाचता हुआ बढ़ता है। तुमने कैसे कह दिया भैया! मेरे पास अपना कुछ नहीं। मेरे पास जो है अपना है। बेगाना कुछ नहीं। मैं अपने मोहावरण के स्पंदन में जीना चाहती हूँ। आत्मदान की संभावनाएं मेरा संबल हैं जिनके सहारे मैं मुरादों का महल बनाती हूँ। तुम कहते हो मेरे पास कुछ नहीं! मेरे पास बहुत कुछ है। वह सब जो छिपी यथार्थता के पास होता है-—परिताप की अतिमानवीय शक्ति से परिचालित उपासना में होता है। जिसकी आँखों की मनुहारें अनलशिखा में बदल चुकी हों उसकी विनाश की प्यास कभी बुझी है? इतनी अविदित अविजित ज्वालाओं के होते हुए भी तुम कहते हो मेरे पास कुछ भी नहीं।......रवि का तेज जिसे प्रतिदिन छू-छू कर नए सिरे से जलने की दीक्षा देता रहता है......

विमल ने कहा—ठीक है। इतने ही को लेकर जीवन का वास्तविक होना नहीं कहा जाता। वेदना के चढ़ाव-उतार में, द्वन्द्व में, डूबने उतराने में, अपने सामर्थ्य की अग्निपरीक्षा लेते रहने में ही जीवन बीत जाय—यह भी कोई बात है! आत्म-उपलब्धि की झूठी प्रतीति है यह! ऐसी विनाशक संकीर्णता है जिससे न छुटकारा मिलने का अर्थ है जीवन के सूत्र को खो बैठना। अन्तर्वेदना के इस आत्मशिखर को तुम विवेक कह सकती हो। झूठा प्रमाद है यह! प्रमाद सच्चे झूठे होते हैं। जीवन भर निवृत्ति का दुख भोगते रहना ही जीवन का उद्देश्य नहीं। इस प्रकार की निस्सार अकर्मण्य जीवनव्यापी निष्ठा की अडिग जड़ता का कोई मूल्य नहीं। बिना अपराध तुम दुख भोगती रहना चाहती हो। दुख भी ऐसा-वैसा नहीं। अपने जीवित अंग को काट कर फेंक देने पर जैसी यंत्रणा होती है वैसा ही। अपनी शुचिता की मर्यादा के नाम पर यह जीवन ही दैन्य छिपाना चाहोगी! युग-युग से भारतीय नारी यही करती आयी है। वैधव्यनिष्ठा का ऐसा कठिन मूल्य चुकाती आयी है। युगों के मूल संस्कार पर वह कोई आघात नहीं सहन कर सकती। दुख की गहनता में घुटते रहने वाली—घुट-घुट कर रहने वाली—रह-रह कर घुटने वाली यह अपरिवर्तनशीलता अस्वस्थ असुन्दर है। मैं तुम्हें उसमें नहीं पड़ा रहने दूँगा। तन मन में परिपूर्ण रह कर लहराने वाले जीवन की अवज्ञा होगी यह। मानव जिसे एक बार हृदय की सम्पूर्ण गहराई से प्रेम करता है उसे खोकर वह इतना पंगु अपाहिज नहीं हो जाता। उसमें भी परिवर्तन की गुंजायश रहती है। तुम्हारे सम्बन्ध में तो यह बात भी नहीं कही जा सकती। वहाँ केवल एक झूठी और विकृत अवास्तविकता का नाता है। केवल एक ऐसी घटना की याद है यह जिसका निशान तक धुल कर पुँछ गया। जिसे न अब कुछ दिया जा सकता है—जिससे न कुछ पाया जा सकता है। मनुष्य नहीं—उसकी याद भी नहीं—उसको लेकर चलने वाली आत्मीय वेदना की संगति

भी नहीं। एक लचा हुआ—टूटा हुआ—खंड-खंड आदर्श है जो मेरी समझ में नहीं आता। वह आदर्श भी कैसा जो यथार्थ से टकराते टकराते इतना बदसूरत हो जाय। मैं उसे नहीं मानता।

पागलपन की बात है यह! सो जाओ! मेरी कल्पना के बाहर की बात है यह। मैं इसे बड़ी चीज नहीं मानती। मेरा अनुरोध मान लो।

सबसे बड़े पागल वे होते हैं लल्ली! जो दूसरों का पागलपन देखा करते हैं अपना नहीं। तुमको यह पागलपन इसलिए लगता है कि तुम अपने भीतर जीवन की ऊष्मा को भुलावा देने की कोशिश करती हो। जो मर चुका है—जिसका खात्मा हो चुका है उसे जिलाने की चेष्टा करती हो। जिसे मृत्यु ने हजारों फीट नीचे ले जाकर दफ़ना रक्खा है उसमें बेस्वाद खुमारी का आक्रोश—निराकार निर्जीव भरना चाहती हो। असमय—प्रकृति के सारे विधान को लात मार कर हारे थके जराग्रस्त बनाए मन के द्वारा भविष्य की सारी आशाओं को जलांजली देना चाहती हो। उसके लिए युग-युगों से वाहवाही के विशेषण-ख्याति के आडम्बर चले आ रहे हैं। देवी-देवता, संत-पुरोहित, धर्म और नीतिशास्त्र पग-पग पर उनकी कीर्ति का बाजा बजाते हैं। पर आत्ममरण और आत्मपीड़न के किस निर्लज्ज उन्माद की बेसिर पैर वाली स्तुति है यह! कभी बैठ कर सोचा है शांति! कितनी झूठी क्षुद्र वस्तु को छाती से चिपटाए तुम अपने दिन काट रही हो। कितनी बड़ी और घातक मिथ्या को सत्य शिव का गौरव दे रही हो। बड़ी थोथी धारणा है। बड़ा पाशविक अस्वीकरण है। मानवता का सिर लज्जानत कर देनेवाली और कोई मूढ़ता इससे बड़ी नहीं। न जाने कब किन अंधकार की घड़ियों में स्वतःसिद्ध पवित्रता की इस विनाशक मान्यता की नींव पड़ी। विरोधी आत्म-द्वंदिनी धारा में भारतीय नारी का जीवन बहने लगा! उस समय सबकी आँखें फूट गयी थी? सबके विवेक को लकवा मार गया था?

शांति को लगा भैया की बात का जवाब देना जरूरी है। पर उसे जवाब देने लायक कोई बात न सूझ रही थी। हृदय के भीतर बहते विरोध को खोल कर दिखा भी न सकती थी। आमरण संयत जीवन की कल्पना को लेकर मन ही मन एक विराट पवित्रता—हिमालय जैसी शुचिता की आभा से उद्‌भासित होने वाली बालविधवा जिस आनन्द-लोक को न जाने कब जीवन के अश्रुपंकिल मर्सिये में विसर्जित कर चुकी थी उसी का टूटा बाजा आज आप से आप बज उठा है। जो जीवन अभिशाप की अग्नि-वृष्टि से गतिहीन हो गया है—निरासक्त, निर्लिप्त निरुद्देश्य होकर स्थिर सीमाबद्ध कोल्हू के बैल की तरह कंधे पर त्याग और अपरिग्रह के जुए को लेकर घूमा करता है वह ऐसी बातों को सुन कर एक बार चौंकता जरूर है। लेकिन प्राणों की पुँजीभूत शून्यता, अवसन्नता, आत्म-ग्लानि और अवसादी निरुत्साह जैसे जीवनोन्मुख लालसा के इस कंपन को टिकने नहीं देता। शांति को सारी गीता कंठस्थ है। संसार माया है— कर्मत्याग और आत्मनिःसंगता मुक्ति है—भगवान के प्रति पूर्ण विश्वास और परिपूर्ण आत्म-दान को छोड़ मनुष्य की कोई गति नहीं। जीवन तुच्छ है, भक्ति से उपलब्ध मोक्षलाभ परम लक्ष्य है। निरूद्वेग निविड़ प्रशांति के लिए प्राणों के पूर्ण विश्राम के लिए वासनाओं को निग्रह की ज्वाला में जला जला कर क्षार कर देना पड़ता है। शांति ने अभी तक यही समझा और जाना है। ऐसे विरोधी अनामी स्वर उसने जीवन में सुने नहीं।······पर रात बीतती जा रही है। भैया को अब सो जाना चाहिए। उनसे बातें करते समय उसे थकान नहीं लगती···कितना बोले···बोलती जाय······बराबर······जैसे उसके बोलने की सीमा नहीं। पिछले पहर की चाँदनी जैसे रस से भींग गयी है। क्षितिज पर माधुर्य्य की नयी रेखाएं ज्योतिशिखा सी विकसित हो गयी हैं। बिमल उठ कर छत पर टहलने लगा था। शांति अपने मुँडेर पर वैसी ही प्रशान्त अकुंठित खड़ी थी। विमल कुछ क्षणों के लिये उसे भूल गया था।

जिस अतीत के भीतर से शांति अपने को जीवित रखने की चेष्टा करती थी उसी में जैसे वह खो गया है। अपनी आँखों के नीचे सीधे वह देख रहा है। थक कर शांति ने अपनी गोल गोरी बाँहें मुँडेर पर टेक दी हैं। खड़ी वह अब भी है। अधिक चुप नहीं रहा जाता। भैया को इस तरह अपने आप में खो जाने की आदत है। वह क्या जानती नहीं? अब चुप रहने से काम न चलेगा। भैया को सुनाना ही पड़ेगा।

बोली—'मेरी ओर देखो। सो जाओ। क्या सोच रहे हो? क्यों मेरी जीवन को लेकर इतना सोच-विचार करते हो? जीवन के पर्दे के पार न जाने कितनी वाष्पाच्छन्न विस्मय की बातें अज्ञात रह जाती हैं। तुम उन्हें लेकर कहाँ-कहाँ सत्य-असत्य का निर्णय करते घूमोगे। अब सो जाओ'।—कहते कहते शांति का स्वर गीला हो गया। विमल के चेहरे की अनहोनी कठोरता और फूट-फूट पड़ने वाली अन्तर्मन्थन की भेदक पीड़ा रात की अँधेरी-उजेली में मिल कर बड़ी वेदनापूर्ण थी। शांति से यह सब देखा न जाता था। उसकी आत्मा उसी उत्कंठित आकुलता से छटपटा उठती थी। विमल ने कुछ सुना नहीं। सिर उठा कर शांति की ओर आँखें कर बोला—जिसे तुम अपनी शक्ति की प्रचुरता मानती हो उसे मैं कमजोरी और आत्म-उन्माद समझता हूँ। तुम उस पर जीभर मुग्ध होती रहो—मैं उससे घृणा करता हूँ। तुम पर श्रद्धा करता हूँ तो इसका यह मतलब नहीं कि तुम्हारी गलतियों को स्वीकार करूँ। अनुष्ठान की इतनी कमजोर बंशी के सहारे तुम सदा के डूबे सत्य को सरिता के अतल से ऊपर खींच लाना चाहती हो। आसमान से लेकर जमीन तक फैली जीवन की आरक्त परिपूर्णता तुम कुछ नहीं देखतीं! सारे जीवन को अधिकार की पोथी बना कर फिर उसमें आलोक की आभा खोजोगी! न न! शांति! अपने कीमती जीवन को इस प्रकार नष्ट न करो। जीवन के तुमुल ज्वार को सुनो। केवल नियति के दीर्घ विराम को न

देखो। मैं बलिदान की गति के गौरव की पूजा करता हूँ पर वह बलि-दान झूठी परिपूर्ति की भावना के लिए न हो। प्रवृत्ति की फुलवारी में आओ। जीवन इतना कुरूप और सुना न लगेगा जैसा आज लगता है। नयी नयी शक्तियों के विद्युत कणों से प्रणोदित तुम्हारी निराधार अपंग आशाएं फिर उठ खड़ी होंगी। तुम्हें मेरी बातें बुरी लगती हैं।

जिनका जवाब दे पाती हूँ वे जरूर बुरी लगती हैं। जिनका जवाब देने में अपने आप को लाचार पाती हूँ वे कैसे बुरी लगेंगी ? जाने दो इन बातों को। भाभी की नींद कितनी गहरी है। घंटों से खड़ी बातें कर रही हूँ पर कान पर जू न रेंगी। मैं अब जाती हूँ। खड़े खड़े मेरे पैर दुखने लगे। तुम सोओ।

सोने की बात छोड़ो। जिसे सोना है वह सो रही है। जिसे जागना है वह जाग रही है। मेरे लिए दोनों एक से हैं। मैं झूठे निष्फल आत्मनिग्रह को ठुकरा देना चाहता हूँ। तुमको मेरी बातों से चोट पहुँचती होगी। पर एक दिन समझोगी—यदि तुम्हारी सोचने की क्रिया चलती रही तो—मेरे मनोभावों में कोई विजातीय धृष्ठता नहीं। अवि-नाशी जीवन का संगीत है उनमें। अपने संस्कारों और आदर्शों में जो मंगल और सुन्दर हैं मैं सब मानता हूँ। लेकिन पुरानापन—युगों से चले आते रहने की स्थिति ही किसी बात को सही नहीं बना सकती। मेरी बातें तुम्हें उग्र लगती होंगी। तुम्हें चोट पहुँचाने की प्रवृत्ति मेरी नहीं। स्वयं अविजानित चोट से विद्ध हो जाता हूँ तब अपने को रोक नहीं पाता। विवाह को मैं अर्थहीन अनुष्ठान नहीं मानता। पति-पत्नी के एकनिष्ठ प्रेम का मैं कायल हूँ। तुम्हारी भाभी से मेरे स्वभाव का कितना कम मेल है तुम जानती हो। पर मैं उनका आदर हार्दिक श्रद्धा करता हूँ—अधिक से अधिक उनका ख्याल रखता हूँ। ऊँची ऊँची तोंद लिए नारी के आगे जब पुरुष को स्वामी बन कर चलते देखता हूँ तो घृणा से जल उठता हूँ। विधवा कह कर

आजीवन बोझ बना देने वाले इस झूठे विधान से मुझे नफरत है। भारतीयता का नाम लेकर समाज द्वारा समय समय पर छोड़ी गयी केंचुलों को हम चिपटाये घूमते हैं उन्हें आज मैं असंयम और अनाचार कहता हूँ। आध्यात्मिकता के लिए मैं नशेबाजी के अतिरिक्त कोई शब्द नहीं कह पाता। आचरण और जीवन-दर्शन की ऐसी अस्वाभाविकता आदमी के विकास को 'स्टन्ट' कर देती है—उसे बौना और कुबड़ा कर डालती है। ईश्वरता के वाहक सपने मुझे सदियों के शोषण का बोझ लादे लगते हैं। जिस स्वाभाविक मानवीय मार्ग पर चल कर आदमी बना जाता है उसे हम भूल गये हैं। हम हिन्दू हैं—मनुष्य नहीं—भारतीय हैं—इंसान नहीं। यही कारण है विदेशों से वास्तविक श्रद्धा हम वसूल नहीं कर पाते। कल्याण और मुक्ति, आदर्श और संस्कृति के नाम पर हम अपने को कितना छलते हैं! मेरे एक परिचित हैं जिन्होंने जिन्दगी में सब अपकर्म और पाप किये होंगे। दुराचार जिनकी साँस में बसा है। तुम्हारे घर आकर बैठेंगे और तुम शाम को बत्ती जलाओगी तो दो चार मिनट एकाग्रचित्त हो, आँख मूँद कर न जाने किसकी प्रार्थना करेंगे। ईश्वर के प्रति भक्ति होती है ऐसों के मन में? अपने पापों के अहसास से—जिस प्रकार वे सामाजिक श्रम और धन का शोषण करते रहते हैं उसकी चेतना से वे प्रतिक्षण अपने चेतन अवचेतन मन में डरते रहते हैं। त्याग और वैराग्य निर्वेद और निवृत्ति की उपासना करते करते हम पेट का अन्न और बदन के कपड़े तक दे बैठे। प्राप्ति का आनन्द, सौख्य का सुख, जीवन को लेकर जीवित रहने की आत्मतुष्टि, हम जानते ही नहीं। तुम इस अकिंचनता से ऊपर उठो। अपने भंडार को पहचानो। इसकी ताली किसी जीवन्त कामना के हाथों सौंप दो जो सृजन की सार्थकता से परिचित हो। नारी कैसे इतनी भयावनी अनुर्वरता को लेकर अस्वीकार के दलदल के बीच चलती है?

शांति चुपचाप नीचे उतर आयी। विमल ने सामने देखा वह जा

चुकी थी। उज्जवल चन्द्रालोक में उसके खुले घने बालों की छाया तक शेष न थी। अकल्पित सुन्दरता बिखेरने वाली प्रशान्त आँखों की सजल स्निग्ध सकरुण आर्द्रता अब दिखायी न देती थी। चुपचाप विमल चारपाई पर लेट गया। शांति ने अपनी छत पर सोने की लगातार कोशिश की पर सो न सकी। उसका केन्द्र-विमुख उद्भ्रान्त चित्त जैसे बहुत दिनों से बन्द अभिलाषा के खिलौना-घर को खोल रहा था। विमल थोड़ी देर बाद सो गया पर शांति को जैसे किसी दिशा से नींद का अनुमोदन प्राप्त न हो रहा था। ऊपर इतना बड़ा आकाश निर्मम परिहास और परिवाद की तरह फैला है। नीचे उतनी ही बड़ी पृथ्वी जो केवल फैलना और बिखेरना जानती है—सिमटना और धारण करना नहीं। सामने शेष जवानी का भूधर मुँह बाये विकराल भाव से खड़ा है जिसके निगलने की क्रिया सृष्टि के प्रथम दिवस से चली आ रही है। भगवान का ही भरोसा है जो सबकी लाज रखते हैं। वे भी इस समय सो गये हैं जब वह जाग रही है—बेचैन दर्द की तरह जागती जाती है। और भैया सो गए होंगे। उसको जगा कर क्यों न सो गये होंगे। जरूर सोते होंगे।

तीन

विमल की पत्नी का नाम उषा था। तेरह वर्ष की अवस्था में विमल के साथ उनका विवाह हो गया था। उनके सोलह वर्ष के विवाहित जीवन में न जाने कितने चढ़ाव-उतार थे। विवाह के समय विमल एफ० ए० का विद्यार्थी था। उस समय कैसा भरापूरा घर था। सास-ससुर, विमल के चाचा-चाची और एक छोटा भाई भी था। भारी उत्साह के साथ नववधू का स्वागत हुआ। पर विमल के एम० ए०

पास करते-करते कैसे वज्रपात हुए। माता पिता, चाचा और छोटा भाई एक एक कर चल बसे। विमल की अभी नौकरी करने की इच्छा न थी। पिता सरकारी दफ्तर में हेडक्लर्क थे। चाचा घर पर रह कर व्यापार करते थे। सब प्रकार की आर्थिक निश्चिन्तता थी। पिता और चाचा की मृत्यु एक वर्ष के अन्दर हो जाते ही विमल के सामने पैसे की समस्या अपना विकराल मुँह खोले आ खड़ी हुई। विमल पढ़ने में शुरू से तेज था। कानपुर के एक कालेज में जगह खाली थी। विमल के प्रोफेसरों के प्रयत्न से तुरन्त वह जगह मिल गयी। लखनऊ से चाची और पत्नी को लेकर विमल कानपुर चला आया। छोटे भाई की मृत्यु उस समय तक नहीं हुई थी पर वह क्षय से ग्रस्त, सेनीटोरियम में पड़ा था। कानपुर में आये विमल को एक वर्ष भी न हुआ था कि उसकी मृत्यु हो गयी। चाची के कोई सन्तान न थी। घर के विभीषिकामय एकाकी वातावरण से ऊब कर चाची अपने मायके चली गयीं। विमल की पत्नी उनके लिए पहले जितने प्यार दुलार की पात्री थी उतनी ही अब निन्दा और उठते बैठते कोसने की चीज बन गयी। कैसी अभागिन बहू आयी कि आते-आते घर उजड़ गया। इसी विरक्ति और घृणा के कारण वे आज वर्षों से मायके में पड़ी दिन काट रही थीं। विमल ने उन्हें कई बार घर लाने की चेष्टा की पर वे न आयीं। प्रति मास उन्हें विमल ने खर्च देना चाहा पर उन्होंने स्वीकार न किया। बराबर मनीआर्डर लौटा दिये। उषा को विश्वास था, यदि वे आ जाँय तो अपनी सेवा से वह उन्हें प्रसन्न कर लेगी। पर उनका आना ही कठिन था। विमल की आचारनिष्ठा की कमी भी उन्हें खलती थी। बहू को सद्गृहस्थ के घर में जितनी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए उससे कहीं अधिक विमल ने दे रक्खी थी। चाची को यह सब न भाता था। विमल की मा से वह बड़ी थीं। विमल की मा स्वभाव से जितनी स्वल्पभाषिणी और लज्जाशील थी—बहू उतनी वाचाल और फारवर्ड है। जो कमी थी वह विमल की अंकुशहीनता

ने पूरी कर दी। किसी के सामने पर्दा नहीं करती। विमल का पत्नी को शुरू से नाम लेकर पुकारना भी उन्हें अच्छा नहीं लगता। इन्हीं सब बातों से ऊब कर वे चली गयीं थीं।

विवाह के सोलह वर्ष हो जाने पर भी उषा के सन्तान नहीं हुई। चाची को लगता था वंश सदा को डूब जायगा। अब तक संतान नहीं हुई तो क्या होगी। पौत्र को गोदी में लेकर खिलाने घुमाने की लालसा उनके भीतर भीतर घुटती रहती थी। संस्कारों से जड़ और गँवार होने पर भी उनका मातृहृदय बड़ा कोमल था। आरंभ से संतानहीन होने के कारण उन्होंने विमल और उसके छोटे भाई को अपने निराश कातर हृदय की सारी ममता दे दी थी। विमल के भाई कमल की मृत्यु के बाद उस पतिगतप्राण नारी के हृदय में अवर्णनीय यंत्रणा हुई। एक नारी ही उसे अनुभव कर सकती है। कमल के ऊपर उनका विशेष स्नेह था। उनकी अनुगता देवरानी विमल की मा ने अपनी दोनों संतानें उन्हें अर्पित कर रक्खी थीं। कमल की चाल-ढाल बोल-व्यवहार और आदर-भक्ति के कारण चाची उसे अपने पेट की संतान से अधिक मानती थी। वही कमल क्षयग्रस्त होकर फिर अच्छा न हुआ। चाची के जीवन का सब से गहरा आधार सदा को टूट गया।

पर अब चाची के लिए मायके में रहना असंभव हो गया है। विमल की चिट्ठी आयी है। सोलह वर्षों के बाद परमात्मा ने चाची की मनोकामना पूरी की है। विमल की पत्नी को बच्चा होगा। चाची ने पत्र सुनते ही जमीन पर सिर रख कर अपने अलक्ष्य कुलदेवता को प्रणाम किया। कभी की कभी उनके मन में आता था विमल से दूसरी शादी करने का आग्रह वे करें। पर विमल के स्वभाव से वे परिचित थीं। अपनी पत्नी को कितनी तल्लीनता से वह प्यार करता है वे जानती हैं। अधिक पढ़ी-लिखी वह नहीं—विद्या बुद्धि का उसमें अभाव है। पर अन्य देहाती औरतों की तरह निरक्षर होते हुए भी विमल ने कभी

उसका अनादर नहीं किया। विमल के माता पिता के जीवन काल में ही घूँघट काढ़ने के प्रश्न को लेकर विमल से तकरार हुई है। विमल ने कह दिया—बहू घर की लड़की है। माता-पिता चाची चाचा के सामने लड़की का घूँघट काढ़ना व्यर्थ ही नहीं अनुचित भी है। ऐसी ही न जाने कितनी छोटी बड़ी बातें थीं जिन्हें लेकर विमल ने अपनी पत्नी की बात का समर्थन किया है और माता पिता चाचा चाची का विरोध। आज चाची को वे सब भूल गयी हैं। उनके सामने कितना बड़ा सुख है। कृतज्ञता के आँसुओं से उनका मुख भीग गया। निराश नेत्रों में आशका-मिश्रत भक्ति के आँसू छलक रहे थे। सारे घर को सुखसंवाद सुना कर वे भतीजे के पास जल्दी से जल्दी पहुँचने की तैयारी करने लगीं। विमल की पत्नी का तारिका-चित्रित स्तब्ध आकाश की तरह गंभीर निर्दोष प्रसन्न मुखमंडल उनकी आँखों के सामने घूमने लगा। आज उन्हें उसमें गुण ही गुण नजर आ रहे थे। आठ वर्षों से वे इतने लायक लड़के और बहू को छोड़ कर यहाँ भाई भतीजों के पास पड़ी हैं! इतनी आजाद ख्याल की होते हुए भी बहू कभी उन्हें कोई काम न करने देती थी। सुबह कितने तड़के उठ कर घर गृहस्थी के काम में जुट जाती थी। जिस समय वे और विमल की मा उसे कड़ी बातें सुनाती थीं उस समय किस शालीनता से वह नीची दृष्टि कर मुस्कराया करती थी। विमल के मना करने पर भी तुलसी के चबूतरे को अपने हाथ से लीपती थी। उन्हें और उनकी गता देव-रानी को प्रसन्न करने के लिए पति की कितनी बातें वह न मानती थी। गोबर से लिपे आँगन में शरद के प्रातःकाल की धूप की तरह जगमगाती परिपूर्ण नारीत्व और यौवन की मूर्ति सी अपनी तिरस्कृत अवहेलित पुत्रबघू की सुधि आज उन्हें कितना चंचल और अशान्त कर रही थी। दूसरे ही दिन वे अपने भाई के बड़े पौत्र के साथ कानपुर के लिए चल पड़ीं। उनके मन के सुख की जैसे थाह न मिलती थी।

आठ वर्षों बाद चाची घर लौटी हैं। विमल और उसकी पत्नी

की सेवा श्रद्धा की सीमा नहीं है। चाची ने विमल की पत्नी को छाती से लगा लिया। उषा ने शर्मा कर उनकी गोद में मुँह छुपा लिया। सामने तखत पर शांति बैठी थी अपने शांत सुन्दर मुख में मौन की समुज्ज्वल छवि लिये। सामने आँगन है। आँगन के पार बरामदे पर कुर्सी पर विमल बैठा है। चाची के नेत्रों से जल की अविराम धार बह रही है। लज्जा से आरक्त उषा का मुख चाची की गोद से उठाये नहीं उठता। जिनको सुखी करने का प्रबल आग्रह मन में होते हुए भी उषा कभी प्रसन्न नहीं कर पायी—आठ वर्ष के दुर्भाग्य के बाद आज वही सुयोग मिला है। बातें दिवसों की अश्रुहास मिश्रित बातें दोनों के हृदय में सुई की तरह चुभ रही थी। स्वभाव से धीर गंभीर विमल के हृदय में भी आघात की वेदना हो रही थी। माता-पिता, पिता से भी बढ़ कर अगाध स्नेहशील पुत्रहीन चाचा और सबसे बढ़ कर अभिन्न छोटा भाई एक एक कर सभी चले गये। शांति ने सामने देखा—भैया का चेहरा कठोर अनहोनी वेदना से पीड़ित हो उठा है। यही शांति के लिए सबसे कठिन घड़ियाँ होती हैं। भैया का मलिन मुँह उससे देखा नहीं जाता। स्मृतियों का दाह रह रह कर भैया को जला रहा है। यहाँ बैठे रहने पर उन्हें ऐसी ही व्यथा होती रहेगी। शांति ने मृदु स्वर से कहा—डाक इकट्ठी हो गयी है। उत्तर लिखा दीजिये न! चलूँ?

विमल ने शून्य दृष्टि से शांति की ओर देख कर कहा—चलो ऊपर। मैं आया।

शांति ऊपर विमल के कमरे में आयी। पीछे-पीछे विमल अपने में खोया सा विसुध और उद्ग्रीव! चाची ने बहू का मुख कोमलता पूर्वक उठा कर सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—यह लड़की कौन है? विमल के साथ ज्यादा उठती बैठती है? बेटे को तनिक देर मेरे पास बैठने न दिया। उठा ले गयी।

उषा ने शांति के विषय में सारी बातें बता दीं। चाची ने सुन कर

कड़े स्वर में कहा—और तू! तू रोकती नहीं? क्यों ज्यादा आती जाती है?

उषा ने मुस्करा कर कहा—अब तुम आ गयी हो चाची! तुम्हीं रोकना। मेरी बात से तुम्हारी बात का ज्यादा असर होगा। मैं कहूँ क्या? चिन्ता की बात नहीं है मा। लड़की बड़ी भली गंभीर है।

चाची कुछ नहीं बोली। शांति की जीवन-निशा के उजाड़, श्यामलताहीन; शोभाशून्य यात्रा-पथ में सेवा की किस गहरी प्रवृत्ति को मन-वाणी-काया में लेकर यह व्यापिनी निष्ठा चल रही है वे कैसे जानतीं। देर तक सास-बहू में इधर-उधर की बातें होती रहीं। उषा को विश्वास न था चाची केवल पत्र लिख देने से आ जायँगीं। एक युग बाद उसे मातृत्व का गौरव प्राप्त होने जा रहा है। चारों ओर उसे अंधकार दिखता था। उसके मायके में एक प्रकार से कोई न था। नाते रिश्ते में भी कोई स्त्री न थी। उसके या विमल के बहन न थी। यों शांति की मा का उसे सहारा था। पर चाची का आना उसके हृदय की सारी आशंकाओं को बहा ले गया! सजीव प्रसन्नता और अमल आनन्द का अनुभव वह करने लगी। चाची ने कहा—आज से तू पूरा आराम कर। मैं घर का काम देखूँगी। रसोई वगैरह से तुझे मतलब नहीं।

ऊपर विमल बैठा शांति से चिठ्ठियाँ लिखा रहा था। दो घंटे तक लगातार लिखने के बाद शांति ने कलम रख कर कहा—मैं नीचे जाती हूँ भैया! बाकी कल लिख दूँगी। कल खत्म हो जायँगी।

विमल ने कहा—जल्दी क्या है लल्ली! बैठो न!

लल्ली ने कहा—जल्दी कोई नहीं। मैंने सोचा आप शाम को घूमने जायँगे······

बैठो। अब तक क्लर्क की तरह काम लेता रहा हूँ। कुछ देर बैठो बात करो। इतने दिन बाद आयी हो। चाची न आतीं तो क्या तुम इधर चलतीं। मैंने तय कर लिया है। किसी को खुद पत्र न लिखूँगा।

पत्र लिखने वालों के भाग्य में उत्तर बदा होगा तो तुम मेरे यहाँ आओगी। क्या हो गया है जो तुम इतना कम आती हो ? पहले तुम रोज आती थीं। कालेज से आते समय रोज तुम्हें खिड़की खोल झाँकते देखता था। अब क्या हो गया है मुझे या तुम्हें। घर में किसी ने मना कर दिया है ? अम्मा दादा ने कहा कुछ ? या तुम्हीं को मेरे पास अधिक आना अब अच्छा नहीं लगता। आखिर पहले में अब में क्या अंतर आ गया ?

शांति कुछ बोली नहीं। आँखें नीचे झुकी रह गयी। कैसे बताये क्यों नहीं आती उसके सामने। दोपहर भर आकर भाभी के पास बैठी रहती है। उसके कालेज से लौटने का समय होते ही भाग निकलती है। क्यों ऐसा होता है शांति खुद नहीं जानती। क्यों भैया का स्वप्न और उसका जागरण उठते बैठते साथ रहते हैं। वह कौन सा अन्तर्निहित कारण है—कौन सी हृदय के अतल गह्वर तक भिद जाने वाली डगमगाहट है जो उसके हृदय की उन्मुक्त उद्धत धारा को अविदित आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तित कर देती है। हृदय भैया के चरणों पर लोट-लोट जाना चाहता है पर वह क्यों नहीं उनके सामने आती। दूर-दूर भागती है। विमल ने कहा—तुमको ईश्वर की आलोचना कष्ट देती थी। मैंने छोड़ दिया। पर अपने अन्य विश्वासों को कैसे बदलूँ। जब मैं प्रेम, सृजन और सौख्य में विश्वास करता हूँ तब कैसे अन्याय विधावापन को मानूँ। मुक्ति का विश्वासी मैं कैसे बन्धनों को जानूँ। तुमको लेकर मेरी जितनी भी वेदनाएं हैं पूँजीभूति होकर वर्षणोन्मुख मेघों-सी काली पड़ जाती हैं। जी भर जो बरस नहीं सकते पर वेदना से जिनका सम्पूर्ण हृदय भारी बना रहता है। कैसा असह्य बोझ है यह......तुम जानती नहीं ?

इसीलिए भैया ! इसीलिए मैं नहीं आती—शांति ने काँपते स्वर से कहा। जानती हूँ मेरी समीपता न जाने कितने दूर-दूर की व्यथा उड़ा लाकर तुम्हारे हृदय के ऊपर समेट कर जमाये रखती है। क्यों

तुम्हारा हृदय इस प्रकार जलता है जिससे मुझे जूझना चाहिये उससे तुम जूझते हो। इसीलिए मैं नहीं आती। दूरत्व के व्यवधान से तुम्हारे स्वरूप की छबि अधिक उज्जवल और प्रशान्त हो जाती है। मुझे दूर ही रहने दो! मुझे इससे अधिक की न लालसा है—न अधिकार।

यह तो पलायन है लल्ली! इससे इतर किसी ऊर्ध्वलोक में जीवन की सार्थकता है। इस प्रकार के अर्थहीन असामाजिक संस्कारों को लेकर स्वप्नचारी लोग रह सकते हैं—हाड़-मांस की ममत्वमुखी वत्सल तृष्णा के अनुगत मानव नहीं। अपनी अतृप्ति और पराभव को लेकर तुम शुचिता के एक आभास से फूली-फूली फिरती हो।

नारी जीवन की पूँजी यही छोटी-छोटी बातें हैं। इन्हीं को लेकर वह पहाड़ जैसी जिन्दगी झेलती है—उसकी चट्टानें छाती पर सहती है। उस बोझे से मैं तुम सरीखे पुरुष के जीवन को ढकने आऊँ। क्या विधवा की सारी पवित्रता केवल आचारगत है? लोकाचार के बदलते ही क्या यह पवित्रता की भावना बदल जायगी—उपहास-प्रद हो जायगी। क्या निवृत्ति और निग्रह के वास्तविक गौरव को तुम केवल आत्म-विस्मृति मानते हो? मेरे जीवन के लिए वही चेतनाधार है। मुझे लगता है तुम्हारी बातचीत तुम्हारे आवेगों के पीछे छिपी ज्वाला उसे झुलसाने लगती है।……कहते-कहते शांति ने अपनी अचंचल काली पुतलियाँ ऊपर उठायीं। उनमें तैरती सिक्तता से विमल का तनमन भींग चला।

विमल ने कहा—सामाजिक रूढ़ियों के क्रीतदास—विधि-निषेधों के आगे अपने को बेंच कर खा जाने वाले प्रवंचक आत्मा के जीवित धर्म को सैकड़ों कठोर बंधनों से बाँध कर जीवन को संकुचित कर लेते हैं। युग युगों से ऐसी बातें करते आए हैं। पाप पुन्य के वैचारिक दमन की कोई सीमा नहीं रही। वे लोग आत्मविकास और जीवन की वास्तविक परिणति की रीति क्या जानें। वे तो मिथ्या बात को बड़े से बड़े रूप में चित्रित करना जानते हैं। पर जीवन में कैसी हूकभरी

आमरण निर्विरोध निष्क्रियता यह निवृत्ति आकर भर जाती है। मुझे आखिर क्या समझती हो ? तुम्हारी एक-एक निश्वास से मेरी प्राण-वायु भारी हो जाती है। तुम मेरी बहन हो—तुम्हारा दुख जुड़वे भाई की तरह मेरा चिरसंगी बन गया है। मैं तुम्हें कुपथ की ओर ले चलूँगा ? तुमको लेकर मेरे मन में कोई वासना नहीं है तुम जानती हो। पर तुम्हारे लिए—तुम्हारे जीवन बसंत की बाट के लिए मैं व्याकुल हूँ। तुम्हारे जीवन की कठोर निश्चल, बर्फीली, मरुभूमि को मैं नए दीपक की आभा से जगमगाता देखूँगा। तुम्हारा वैराग्य इस नयी आग में जल कर छार-छार हो जायगा। उस नवीन आनन्द के माधुर्य को एक बार तुम उपलब्ध कर लोगी तो तुम्हारी आत्मा युग-युग तक मुझे आशीर्वाद देगी। तुम्हारी प्रेरणा के दोनों पंख खुल जायँगे। मुक्त विहगी की भाँति तुम आकाश में अजेय और अखंडित स्वर से प्राणों की अभिलाषा का संगीत गुंजित करोगी। एक बार इन बंधनों को खोल-कर फेंक दो कभी वे तुम्हारे पास फटक न सकेंगे···

कैसे फेंक दूँ ? कहाँ फेंक दूँ ! कहीं बाहर से दिखायी भी नहीं देते। ये साँस-साँस अणु-परमाणु में भिदे हैं—जैसे फूल की पंखड़ियों में सुगंध। कहना सरल है—सुनना आसान है पर करना। वहीं विवश हूँ मैं। तुम जिन्हें शृंखला की कड़ियाँ कहते हो वे नारी की मर्यादा के रक्षक हैं। मैं तुमसे इस बात को लेकर बहस नहीं करूँगी। कर नहीं सकती—करना नहीं चाहती। मेरी आत्मस्थ कामना तुम्हारी बातों से मतवाली हो उठती है। तुम्हारे चले जाने के बाद भी तुम्हारी बातें अभिशाप की तरह पीछा करती है। दिन रात मेरा मन आँखें मूँदे जिस ध्यान में तन्मय रहता है क्यों नहीं उसी में उसे खो जाने देते ? क्यों नहीं उसे कानों में गूँजने देते—आँखों के भीतर नाचने देते—क्योंमेरी कल्पना विभ्रान्त करते हो ? मेरी जन्म भर की कामना सफल होने दो—कहते कहते शांति की आँखें चमक उठीं। उसके कंठ का गहरा आर्त्तनाद उसके विडम्बना-भोगी हृदय के स्तर-स्तर को काट-

काट कर विमल के सामने रखने लगा। विमल के हृदय में क्षोभ अभिमान, वेदना और सहानुभूति की लहरें एक साथ उठने लगीं। गहरी अभिभूत दृष्टि से शांति की ओर देखता रहा।

शांति ने फिर कहा—मान लीजिए, मैं अपराध कर रही हूँ। विपरीत स्थिति में पड़ कर मनुष्य कैसे-कैसे पाप करता है। मैं तो कुछ नहीं कर रही' ' 'कुछ भी नहीं कर रही। युग युग से जो ढाँचा चला आ रहा है उसी में अपने को ढाल रही हूँ। क्यों मुझे अभिमान में अंधी कर रहे हो? मेरे अहं का सर्वनाश हो जाने दो। उसे क्यों जगाते रहते हो? उसका जलकर क्षार हो जाना ही अभीष्ट है। मेरा हृदय एक ओर चले—बुद्धि दूसरी ओर यह द्वैत का अभिनय मुझे मंजूर नहीं। आप मुझे आदमी बनाना चाहते हैं। मैं वैसी बन नहीं सकती। मैं पशु जैसी जड़ और अनुभूति-शून्य बनना चाहूँगी। ठोकर पर ठोकर खाकर मैं अधिकाधिक विनत और कृतज्ञ होती जाऊँगी। मैं जहाँ हूँ, वहीं मुझे पड़ी रहने दो। मेरे बाहर न आने से दुनिया का क्या बनता बिगड़ता है—

दुनिया की बात छोड़ो। मेरा बिगड़ता है। अपने आँख के नीचे कौन जीवन का इस प्रकार तिल तिल छीजना देख सकता है। कौन निर्दय हृदयहीन पशु होगा जो फूलों की जीवित वाटिका को इस प्रकार अकारण भस्म होते सहन करे? मैं यहाँ दुनिया की बात भी करता हूँ। दुनिया यह अधिकार किसी को देती नहीं। यह उससे लड़ झगड़ कर लिया जाता है। दुनिया की अजेय, अविनाशी जीवन-शक्ति जैसे मेरे द्वारा यह आह्वान कर रही है। मैं उसका प्रतिनिधित्व करता हूँ। प्रत्येक नवयुवक आज के जाग्रत युग में सामाजिक स्वतंत्रता के लिए लालायित देश की विद्रोही शक्ति का अवतार है। तुमसे मेरा बारम्बार यही कहना है। न जाने कहाँ किसके अमर प्रेम-मंदिर में एक ऊँचा स्थान तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। अपने भीतर के अहं की चिनगारी सुलगाओ। जिसके अहं का स्रोत सूख गया वह सूखे तालाब

जैसा बेमानी बेमसरफ हो गया। मनुष्य का अहं उसका जीवन-देवता है जिसके इंगित पर उसकी जययात्रा का अभियान चलता है। इस अहं को कभी न नष्ट होने देना—कभी इसे तिरस्कृत न करना। किसी भी मूल्य पर उसे अक्षुण्ण रखने की चेष्टा करना। उसकी पूर्ति के पीछे कितने बलिदान नहीं हुए—अनादिकाल से मानव उसका अनुपातहीन मूल्य देता आया है। मैंने तय कर लिया है। मैं तुम्हें इस अनुर्वरता में न सड़ने दूँगा। जिसे तुम शक्ति-संपन्नता समझती हो उसे मैं मन की कमजोरी—निष्फल अर्थहीन आत्मपीड़न। जो उसकी निस्सारता जान गया है वह उसे बर्दाश्त नहीं कर सकता। ऐसा कर तुम प्राण की उस विद्युतधारा का अपमान करती हो जो सृष्टि के एक सिरे से दूसरे सिरे तक प्रवाहित है—जिसकी लय पर मंत्रमुग्ध सृष्टि चंचल और पुलकाकुल होती है—उसके कोटि कोटि प्राणों की कंपन-शिखा और एक प्राणता नष्ट नहीं होने पाती। वैरागी इसे माया का बंधन कहते हैं। सुख की वास्तविक गहरी अनुभूति को मिथ्या मानते तथा भ्रमपूर्ण समझते रहे हैं। आत्मछलना और आत्म पराभव है उनका। जीवन की प्रवृत्ति सृजन की अजस्रता और अविरलता—अपने जैसे अनेक को जन्म देकर जिन्दगी के शाश्वत क्रम की परिचालना ही सत्य है। शेष सब बालू की भीत की तरह गलत है। नास्तिकता अनास्तिकता का यहाँ प्रश्न नहीं। जीवन के अबाध अनवरत क्रम को संदिग्ध मानने वाला सब से बड़ा नास्तिक है। जीवन की धन-शक्ति (Positive Force) पर अ-विश्वास करने वाला कभी ईश्वर का भक्त हो पाता है? दिन रात मन के मरघट में घूमने वाला कितना बड़ा आत्मप्रवंचक होगा! चिता के धुएँ और हड्डियों की आग में चिटखने की आवाज़ को ही जो बुद्धि का प्रतीक और विवेक का लौह दंड माने बैठा है। इस अवसादी निराशा से मुक्ति के लिए संघर्ष करना होगा। तभी तुम उस जीवन शक्ति को उपलब्ध कर पावोगी जिसमें अनन्त कर्म और ज्ञान की सम्भावना भरी पड़ी

है। जो अपनी अभिव्यक्ति में निरंतर सचेष्ट हैं—जिसकी अभिव्यक्ति का प्रवाह कभी रुकता नहीं। जिसकी आत्मा पूर्णतया निर्बाध होती है। यह अन्तर्प्रेरणा होती है। इसे कोई राग-द्वेष कलुषित नहीं कर सकता। तभी तुम इस प्रतीकमान जगत के द्वैत और द्वन्द्व से ऊपर खिंच कर विश्व के सत्य स्वरूप की ओर जा सकोगी।

कुछ मिनट चुप रह कर विमल ने फिर कहा—शांति! मैं कालेज में दर्शन पढ़ाता हूँ। मुझे पढ़ाते वर्षों हो गए। पढ़ाया कम है, पढ़ने मनन करने की चेष्टा अधिक की है। पर जो दर्शन कर्त्तव्याकर्त्तव्य, विवेक और सौन्दर्यानुभूति पर आग्रह नहीं करता—जीवित कर्मयोग के आंशिक सत्यों का जो वैज्ञानिक समन्वय नहीं करता उसे दर्शन कहलाने का अधिकार नहीं। केवल निष्क्रिय निग्रह और मौत के गीत गाना आध्यात्मिकता का दर्शन नहीं। विधवा होने से नारी का सुख-पूर्वक जीवित रहने का अधिकार कहीं नहीं चला जाता। उसे मानसिक शारीरिक अकर्मण्यता की दीक्षा देना कहाँ से आया? ज्यों-ज्यों हमारा दर्शन जीवन से दूर होता गया त्यों-त्यों मनुष्यत्व का शोषण करने वाली असंख्य असत्य अधिकारों की व्यवस्था बनती चली गयी। मुझे हैरत होती है। कभी-कभी घृणा से रोम-रोम जलने लगता है। उससे सौ गुना विषाद होता है यह देख कर कि युग-युग से विधवा कही जाकर— पुरुष के मर जाने के बाद उसके सम्मान मर्यादा के नाम पर साँप के केंचुल की तरह छोड़े गए सतीत्व की परिपूर्ति के नाम पर नारी न जाने कितनी शताब्दियों से यह वीभत्स समर्पण सहती आयी है। उसके भीतर प्रतिहिंसा नहीं—बदले की होंठ कटवा देने वाली—क्रोध से उन्मत्त कर देने वाली भावना नहीं। कितना अधः पतन है। कैसी भयावनी नपुंसकता है! हम जैसे अपदार्थ हो गए हैं। मुर्गी के पर की तरह जो किसी को किसी प्रकार की चोट कभी नहीं पहुँचा सकता। मैं तुम्हें इस अंधेपन से आजाद करूँगा।

ईश्वर के नाम पर—'काँपते-काँपते शांति ने कहा—' इस तरह

की बातें न किया करो। जिस आग को उठते बैठते चलते फिरते मैं दबाया करती हूँ, उसे तुम क्यों भड़काते हो ? तुम्हें कुछ नहीं मिलता। मैं जानती हूँ तुम्हारे अंदर किसी 'कुछ' की लालसा नहीं। मेरा सब कुछ खोने लगता है। मेरी सारी शंकाएं मर जाती हैं—आप से आप अपनी मौत। तुम क्यों मुझे धर्म के पथ पर अविचल धीर नहीं रहने देते। उस जन्म में जो पाप किए थे उसका फलभोग रही हूँ। इस जन्म में ऐसी बातें सोचूँगी तो कहाँ टिकूँगी। मुझे और बल दो शक्ति की जीवन-व्यापिनी क्षमता दो जो मुझे पल भर के लिए चंचल न होने दे। तुम उल्टा मुझे सताया करते हो। जब मैं नहीं आती तो उलाहने देते हो। तुम नहीं जानते मैं कितनी यातना सहती हूँ। तुमसे दूर रह कर तुम्हारे पास न आकर। पर······मुझे अपने रास्ते छोड़ दो·······

विमल की पत्नी चाय नाश्ता लेकर आ गयी। चाची के आने की खुशी और व्यस्तता में विमल चाय की सुधि भूल गया था। शांति ने लपक कर ट्रे हाथ से ले ली। उषा सामने कुर्सी पर क्लांत बैठ गयी। विमल ने चाय पीते पीते पूछा—चाची क्या कर रही हैं—उनका कमरा ठीक कर दिया। उषा ने कहा—तुम पर नाराज हो रही हैं। कहती हैं, पड़ोस की सयानी लड़की के साथ क्या बातें करता रहता है ? मैंने कहा—मैं क्या जानूँ ? किवाड़ के पीछे खड़ी हो कान लगा कर सुना नहीं।

विमल के चेहरे पर मुस्कान फूट पड़ी। पर शांति को लगा जैसे किसी ने एक घड़ा पानी ऊपर से डाल दिया हो। उसके और भैया के मिलने की घटना को लेकर कोई ऐसा सवाल कर सकता है उसकी कल्पना के बाहर था ! बोली—क्यों भाभी ! मेरा भैया के पास बैठना अनुचित है ? क्या तुम भी ऐसा सोचती हो ? जरूर सोचती हो वर्ना चाची को जवाब न देती।

भाभी ने दग्ध आत्मा के हिल उठे अहं—गरज पड़े गौरव की यह हुँकार सुनी। उन्हें लगा उन्होंने इस सदा के लिये खंडिता मानिनी के सामने ऐसी बात कह कर भूल की। उठ कर शांति के पास के कुर्सी

पर बैठ गयी और बोली—पगली है ! भैया के पास बैठने के सम्बन्ध में भला मैं क्या सोचूँगी ? आज सगी बहन होती तो क्या न बैठती ? वह तो गोद में बैठ जाती। मैं क्या कर लेती उसका ? मेरी तरफ से तेरे मन में यह भाव कैसे उठा ? चाची की बात का मैं क्या जवाब देती ? तेरह साल की उम्र से उन्हें जानती आ रही हूँ। मुझे बोलने की जरूरत क्या थी। आठ साल बाद आयी हैं। कहतीं—आज से ही लड़ना झगड़ना शुरू कर दिया। तेरे भैया मेरे जैसे नहीं। ये जबाब दे लेंगे। तुझसे यही कहना है कभी वे ऐसी वैसी बात करें तो ध्यान न देना। तेरी दादो की उमर की हैं। बड़े बूढ़ों की बात का ख्याल न करना।

विमल ने कहा—तेरी भाभी ठीक कहती हैं। वे पुराने विचार की हैं। नहीं जानती दुनिया कितना आगे बढ़ गयी है। तुझे मुझे लेकर जो ऐसी बात सोचे वह नादानी का पुतला है। भाभी की तरफ से तू निश्चिन्त रह। दुनिया में असंख्य लोग हैं। हर एक के मन का संदेह हम कहाँ तक दूर करेंगे ? लल्ली आज सिनेमा चलेंगे। हरी चलेगा। (पत्नी से) तुम भी चलोगी न। खाना जल्दी बना लेना। चाची को भी ले चलना। वे अँग्रेजी क्या समझेंगी। कोई पौराणिक फिल्म उन्हें दिखा दूँगा। जल्दी करना।

उषा ने कहा—मैं न जाऊँगी। चाची से बात करूँगी। तुम लल्ली हो आओ। हरी जायगा ही। अंग्रेजी के फिल्म मुझे अच्छे नहीं लगते।

अच्छा फिल्म है। रूस जर्मनी की लड़ाई का हवाला है। बहुत सी नयी बातें मालूम होंगी। तुम क्यों न चलोगी। चाची से मैं पूछ लूँगा। तुम्हें डर लगने लगा। पहले दिन से यह हाल है।

मैं न जाऊँगी। लल्ली के साथ क्यों नहीं चले जाते।

भाभी ! तुम चलो मैं चलूँ। भैया ! मैं न जाऊँगी अगर भाभी न चलेंगी।

विमल की पत्नी नहीं गयी। विमल, शांति और हरी गये। चाची

ने देखा तो और चकरायीं। उषा से बोली—तू क्यों न गयी। रसोई का भार अब मैंने ले लिया अपने पर। तुझे चिन्ता क्यों? तू चली जाती। परायी औरत के साथ अपने पति को इस प्रकार छोड़ना भला नहीं।

उषा ने मृदु स्वर से कहा—ऐसी बात नहीं चाची। मैं ताकना चाहूँगी तो कहाँ तक ताक सकूंगी। कालेज की कितनी लड़कियाँ आती रहती हैं। उनका काम ही पढ़ाने का है। लल्ली बहुत अच्छी लड़की है। तुम दो-चार दिन में जान लोगी। उस समय ऐसी बात न कहोगी। भगवान ने बचपन में बिगाड़ दिया। बेचारी पति का मुँह न देख पायी।

चाची ने चकित स्वर में कहा—विधवा है? देखने में छोटी है।

"चौबीस साल से कम नहीं। लगने को जो लगे।"

चाची मन ही मन लज्जित हो उठीं जैसे उन्होंने किसी देव मूर्ति का निरादर किया हो। विधवा हिन्दू परिवार में देवी की तरह वंदनीय है। पर उनके मन के नीचे गहरे में आशंका थी वह आमूल न नष्ट हो सकी। रास्ते में शांति विमल में कोई बात न हुई। शांति घर के बाहर प्रायः कम निकलती थी। पिता के या विमल के साथ। विमल के प्रति उसके माता पिता का इतना विश्वास था जितना आज के संशयवादी युग में पड़ोसी पर कम होता है। शांति लड़की ऐसी थी। उसके किसी व्यवहार को लेकर किसी प्रकार की आपत्ति या शंका की भी न जा सकती थी। ताँगे पर जाते समय शांति इधर उधर सड़क के दोनों सिरों पर बने बँगलों की कतारें देख रही थी जिनमें आमोद-प्रमोद क्रीड़ा-उत्सव हास-विलास, जीवन और जाग्रति की लहरें उठ रही थीं। पति पत्नी, प्रेमी प्रेमिकाओं के जोड़े फुटपाथों तथा लानों पर घूम रहे थे। चारो ओर जीवन······अखंड······ अवदात जीवन। विमल जाने क्या सोच रहा था। आगे घोड़े के पास बैठा हरी पैर से घोड़े की दुम को कुरेदने की चेष्ट करता था। सिनेमा

हाल में बैठ कर विमल ने कहा—लल्ली ! चुप क्यों है ? जब से चली एक शब्द भी नहीं बोली। भाभी के बिना इतनी उदास हो जायगी। मैं जानता तो उसे न छोड़ता। अब कोई उपाय नहीं। कुछ बोले न !

"क्या कहूँ भैया !" शांति ने घनी श्यामल आँखों को उठाते कहा—फिल्म देखने में मुझे कोई उत्साह नहीं। तुम्हारी बात टाल न सकती थी इसलिए चली आयी। मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता। भाभी के बगैर और भी।

भाभी मैं यहाँ कहाँ बनाऊँ। सामने सुन्दर-सुन्दर औरतें बैठी हैं। जिसे तू चाहे यह पद दे ले। मैं कुछ न बोलूँगा।

शांति हँस पड़ी—आप मज़ाक करते हैं। अपनी भाभी के लिए मैं सौत का इंतजाम करूँ !मैं उसे घर से भगाऊँगी या खुद बुलाऊँगी।

विमल ने कहा—हमेशा के लिए नहीं लल्ली ! दो ढाई घंटे यहाँ रहना है। तब तक के लिए जिसे चाहे बुला बैठा ले। मैं कुछ न बोलूंगा। तेरी दिलबस्तगी कैसे हो। तेरा उदास मुँह मैं कैसे देखूँ ?

हरी बैठा भैया की बातें गौर से सुन रहा था। ठीक सामने तीन पंक्ति आगे एक अत्यन्त सुन्दर बालिका रेशमी साड़ी पहने अकेले बैठी थी। हरी को 'ब्रेन-वेभ' आया ! बोला—उस रेशमी साड़ी वाली को बुलाइये। हमारी भाभी बनने लायक है। जाऊँ बुला लाऊँ। क्यों लल्ली······नहीं दीदी······जाऊँ। जाता हूँ— कह कर हरी खड़ा हुआ। विमल तथा लल्ली जोर से हँस पड़े। इतनी जोर से कि कुछ लोग उस अंग्रेजी—सिनेमा की नीरव लौकिकता, जबानी जमा-खर्च एवं अन्तः सार-शून्य विनय एवं भद्रता की वातास को चीर कर छा जाने वाली इस सम्मिलित हँसी से चौंक पड़े। लल्ली का हँसते-हँसते पेट फूल गया। उसे हँसी आती है तो ऐसे ही आती चली जाती है। जैसे किसी भूले जीवन की भूली बात हो······। हरी झेंप कर बैठ गया। भैया बहन की हँसी से अपनी बात के अनहोनेपन और असम्बद्धता का परिचय उसे मिल गया।

विमल ने कहा—देखता हूँ भैया का घर बसाने का असाधारण आग्रह इस बालक में है। हम लोग न रोकते तो अपनी नयी भाभी को लाकर हम लोगों के सिर पर बिठा देता। क्यों रे हरी! तू सच-मुच उसे ला सकता है? कैसे लाएगा?

भैया के गंभीर स्वर से हरी को कुछ उत्साह मिला। उसके निर्जीव चाव में नयी जान पड़ गयी। बोला—कह भर दो भैया। मैं घसीट ले आऊँगा। क्यों दीदी? जाऊँ! घरवाली भाभी डाटेगी तो नहीं।

खाली डाटेगी नहीं—चप्पलों से मार-मार कर तेरा सिर गंजा कर देगी। सारी शोहदई भूल जायगी। सामने देख! खेल शुरू हो रहा है।

एक रूसी फिल्म था। किस प्रकार असाधारण मनोबल और संगठित शौर्य के साथ सोवियत् ने नाजी जर्मनी को नष्ट-भ्रष्ट किया—यह दिखाया गया था। विमल शांति को एक-एक दृश्य समझा रहा था। शांति के मन की सारी अवसन्नता और उदासी दूर हो गयी? उसे लगा—रूस गरज रहा है······तमाम दुनिया में गरज रहा है। अनिर्वचनीय तन्मयता के साथ वह फिल्म देख रही थी। छोटे-छोटे किशोर किशोरियों का आत्म-त्याग और शत्रु की गोलियों में उनका दुधमुँहा बलिदान! इन्टरवल में शांति ने कहा—बहुत अच्छा फिल्म है। भाभी आती तो उन्हें कितना मज़ा आता!

विमल ने शरबत का गिलास शांति और हरी को देते हुए कहा—उसे मेरी बात काटना। मैं जो कहूँ उसका उल्टा करना। मैं कहता—मैं और लल्ली जाऊँगा तो खुद चलने का प्रस्ताव करती।

ऐसी बात नहीं। मेरी भाभी देवी है। सगी भाभी होती तो इतना प्यार न करती। आप अकेले मेरे साथ कहीं चलने की बात करें भाभी कभी अपने को पेश न करेंगी। बड़ी ऊँची आत्मा है उनकी! इसीलिए उनके सुख-सौभाग्य की सीमा नहीं।

खेल समाप्त होते समय विमल ने कहा—लल्ली। कुछ खरीदना तो नहीं। वर्ना बाहर निकल चलें। बाजार होकर क्यों चलें? हरी तुझे कोई चीज न चाहिए?

शांति ने कहा—न मुझे कुछ चाहिए न हरी को। सीधे घर चलें। हरी ने बहिन के कान में धीरे से कहा—कैरमबोर्ड मुझे चाहिये दीदी! भैया कह रहे हैं। तुम क्यों इंकार करती हो।

शांति ने भाई को डाँट कर विमल से कहा—घर चलो भैया। कुछ नहीं लेना है। हरी की बात में न आना। यह बदमाश है।

विमल ने हँस कर कहा—'कैरम-बोर्ड' कल आ जाएगा हरी! आज सीधे घर चलेंगे। शाम को मेरे साथ चल कर ले लेना।

शांति बैठी-बैठी फिल्म की बात सोच रही थी। उसके सामने एक नया संसार खुल गया था। उसने बहुत से अंग्रेजी के फिल्म विमल भैया के साथ देखे हैं। आज जो देखा वह अपूर्व है। हँस-हँस कर अबोध बच्चों का इस प्रकार प्राण देना—शहर की एक-एक दीवार—एक-एक खिड़की दरवाजे का—एक-एक ईंट का सजीव होकर दुश्मन से लड़ना उसे यह सब अकल्पनीय और अतिमानवीय लगता है। बहुत-सी किताबें और पत्र-पत्रिकाएं उसने पढ़ी हैं। उस महादेश के भीतर इतनी बिजली है—ऐसा तूफानी बलिदानी संघर्ष वहाँ चलता है उसे पता न था। किस तरह स्त्रियाँ घर और बाहर का काम करती हैं उसने देखा है। बोली—भैया! जितने भी देश लड़ाई में फँसे हैं उन सबकी ऐसी दशा होगी या रूस में केवल ऐसी दशा है।

केवल रूस में लल्ली! वे लोग एक आदर्श के लिए लड़ रहे हैं। बंधन के खंडन का मार्ग उनके सामने है। जनगण की यात्रा में नित नए-नए मुहूर्तों का निर्माण रूस ने किया है। उसके नवादर्श—जनहित संचालक है। उसकी संपूर्ण शासन-व्यवस्था संसार के लिए संदेशवाहिनी है। वहाँ की सब बातें जीवन और जागृति की अनुवर्तिनी हैं। हमारे वैरागी देश की तरह वहाँ मृत्यु की स्तुति नहीं होती।

शांति चुप हो गयी। रास्ते में विमल ने फुटपाथ पर पड़े अर्धनग्न भिक्षुक परिवार को इधर-उधर के सूखे पत्ते बटोर आटा भूनते देख कर कहा—रूस में तुम्हें कहीं ऐसा देखने को न मिलेगा। वहाँ से भिक्षुक-वृत्ति, कंगाली अपाहिजपन सब उठ गये हैं। वहाँ शोषण अनय और धन का दानवीय वितरण नहीं। वहाँ लोग मानव का मूल्य जानते हैं। सब को भरपेट खाना—भर-तन-कपड़ा मिलता है। तुम्हारी तरह की असाधारण नवयुवती को विधवा कह कर वहाँ समूचे जीवन के लिए विफल और विपथ नहीं कर दिया जाता। धर्म के नाम पर वहाँ सामन्तवाद और पूँजीवाद का पोषण नहीं होता। पौरोहित्य के नाम पर मानव के स्वाभाविक सुखों का हनन नहीं किया जाता। ईश्वर के नाम पर, कर्मवाद के नाम पर पुरानी व्यवस्था के गर्भ से नयी व्यवस्था के जन्म के मार्ग में बाधाएं नहीं डाली जाती। व्यवस्था के परिवर्तन में जीवन की रक्षक और पोषक शक्तियों को अधिकाधिक अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान की जाती हैं। एक आदर्शभूमि है वह—जीवित और जीवनप्रद!

चार

शांति की ससुराल में उसके सास-ससुर के अतिरिक्त दो छोटे देवर थे जो उसके ब्याह के समय बहुत छोटे थे। विवाह के उपरान्त स्वामी की मृत्यु के समय तार पाकर वह पिता के साथ वहाँ गयी थी। दुर्भाग्यवश पति की मृत्यु होने के बाद पहुँची। वहाँ से वह पिता के साथ तीसरे दिन चली आयी। सास-ससुर शोक में अंधे हो रहे थे। उन्होंने उसे रोका नहीं। आज अनेक वर्ष हो गए हैं। शांति फिर ससुराल नहीं गयी। कभी सास-ससुर को चिट्ठी भी नहीं लिखती। वहाँ

से कोई संबंध वह अनुभव नहीं करती। जिसको लेकर नारी एक बिल्कुल अपरिचित अविजानित परिवार से सम्बंध जोड़ती है वही जब न रह गया तो शेष नाते-रिश्ते बेकार हैं। पति की मृत्यु के बाद शांति उस परिवार से कौन सा सम्बंध रक्खे ? उसके माता-पिता भी वहाँ की ओर से उदासीन रहते थे। जानते थे पुत्री को उनके पास आजीवन रहना है। वहाँ उसकी गति नहीं। लेकिन एकाएक शांति के ससुर आज उसे बिदा कराने आ पहुँचे हैं। शांति की सास कई महीने से बीमार है। अब तक जैसे तैसे बच्चों को सँभाला और घर का काम किया। अब उससे नहीं होता। अत्यधिक दुर्बल होकर चारपाई से लग गयी है। बहू की याद ऐसे मौके पर आना जरूरी है। इसलिए बिना पूर्व सूचना के शांति के ससुर आ गये हैं। सबसे बड़ी कठिनाई उस छोटे बच्चे की है जो सास की गोद में है—जिसके उत्पन्न होने के बाद से ही सास बीमार पड़ी है। शांति के पिता उलझन में पड़ गए। शांति उनकी आँख की पुतली बन गयी है। उसे कहीं जाने देने की उनकी इच्छा नहीं होती दूसरी ओर उसके ससुर का आग्रह भी है। उसे कैसे टाला जाय ? शांति ने दृढ़ स्वर में कहा—दादा ! मैं यहाँ से कहीं न जाऊँगी। आप उनसे साफ कह दीजिए। कोई और प्रबंध कर लें। आपको लिहाज लगे तो मैं कह दूँ।

मा ने कहा—चली जा—ऐसी क्या बात है। वही तेरा असली घर है। वहाँ जाने में नहीं करने से पाप लगता है। बेचारे मुसीबत में हैं।

शांति ने मन ही मन कहा—पाप लगता था जब लगता था। जिसको लेकर हाँ ना करने में पाप-पुण्य का अस्तित्त्व था वह नहीं रह गया। अब उसके लिये जो भी पुण्य है यहीं है। इससे अधिक उसे न चाहिए। विमल की चाची उस समय शांति की माँ के पास बैठी थीं। शांति का ससुराल जाने से नहीं करना उन्हें कतई पसन्द न आया। बोलीं—लड़कियों के मन से काम नहीं करना होता। तुम

उनकी बात मत टालो। जब से यहाँ आयी तब से उन्होंने कभी विदा की इच्छा नहीं की। आज पहले पहल कह रहे हैं। बिना भेजे काम न चलेगा। लड़की की जिद में पड़ कर तुम्हें कोई अनुचित काम नहीं करना चाहिए। जाती क्यों नहीं लल्ली! वहाँ कोई तकलीफ न होगी। अगर कुछ हो तो अपने पिता को लिख भेजना। वे बुला लेंगे। चली जा।

शांति ने वैसे ही दृढ़ स्वर में कहा—चाची! मैं तय कर चुकी हूँ। उस घर में कभी न जाऊँगी। यहाँ दादा के घर जब ठौर न रहेगा तब कहीं और चली जाऊँगी। उस घर में नहीं। आठ वर्ष हो गये। उन्होंने कभी पूछा नहीं बहू जीती है या मर गयी। उनका एक पैसा मैं नहीं जानती। आज जब घर में जरूरत है नौकरानी के बजाय विधवा बहू को विदा कराने आये हैं। भैया भी मेरी बात को उचित कहेंगे। उन्हें कालेज से आने दो। चाहो उनके सामने बात कर लेना। मैं ऐसे स्वार्थी और मतलबी लोगों से कोई संबंध नहीं रखना चाहती। तुम लोग कुछ मत कहो। अवसर पड़ने पर मुझे जगह की कमी न रहेगी। मेरे भैया......

चाची इस थोड़ी सी बातचीत में भैया का नाम सुन कर चौंक पड़ी। पर मन ही मन। उन्हें आये अभी अधिक दिन नहीं हुए। ज्यों-ज्यों वे इस लड़की का व्यवहार और विमल के प्रति तन्मय एक-निष्ठता देखती हैं त्यों-त्यों उन्हें यह सब बड़ा विचित्र लगता है। उन्होंने ऐसा देखा नहीं—कहीं सुना नहीं। आरती समाप्त हो गयी—देव-मन्दिर में शंख-घटा आदि की मंगल ध्वनि न जाने कब थम चुकी थी। पर देवता ने पुजारिन की किस्मत का लिखा सभी कुछ टेढ़ा-तिरछा कर दिया। चाँदनी उदित होते-होते सुख का उत्सव—पूजा का चाव उजड़ गया। सारी सभा सूनी हो गयी—केवल रूप और यौवन—मान और ममत्व की बत्ती सारी रात जलती रही। विधवा हो जाने पर नारी के लिए अभिमान और दर्प का कौन अन्य आश्रय हो सकता

है यह चाची की समझ में न आता था। विमल उसका कितना आदर स्नेह करता है यह बात उनसे छिपी न थी। विमल के अपनी कोई बहन नहीं। वर्षों से एक मकान में रहते-रहते शांति के प्रति उसका आकर्षण और अनुराग समझ में आ सकता है। पर यह बाल-विधवा! इसे पर-पुरुष के साथ इतना घुलते-मिलते संकोच नहीं होता। यह क्यों उठते-बैठते अपने दुर्भाग्य को भूली रहती है। क्यों इसकी प्रदीप्त दृष्टि की सारी करुणा विमल को देखते ही गायब हो जाती है और उसकी चितवन इतनी ऊँची और अभिमानवती हो जाती है। इसके मुख की निराशा की मलीनता जैसे अविजित प्रेरणा में परिवर्तित हो जाती है।

दिन के तीसरे पहर विमल के कालेज से लौटते ही शांति ने रोज की तरह पीछे-पीछे जाकर कमरे में पहुँच सारी बात बतायी। विमल ने कपड़े उतारते-उतारते सब सुन कर कहा—तब? तुम क्या जा रही हो? उन लोगों ने आज तक खोज खबर ली है? आज स्वार्थवश तुम्हें ले जाने आये हैं। ऐसे खुदगर्जों से कैसे तुम्हारी निभेगी। मैं नहीं समझता तुम्हें जाना चाहिए।

शांति मन ही मन पुलकित हो उठी। उसने जो सोचा अनुभव किया भैया ने ठीक वही कहा। बोली—मैंने दादा अम्मा से पहले ही कह दिया है। मैं कदापि न जाऊँगी। मुझे अब उनसे क्या लेना देना? जीवन में जो था वह चला गया। अब अपने मन का संतोष और संपूर्ति मैं किसी तरह खोना नहीं चाहती। तुम्हारे पास यहाँ रहूँगी। तुम्हें छोड़ कर लगता है कहीं न जा सकूँगी। मुझे जाने कैसा लगता है यह सोचना ही तुमसे दूर जा रही हूँ। भैया......तुम्हें कभी यहाँ से जाना पड़ा तब......

विमल टाई खोल पायजामा पहन कर आराम कुर्सी पर लेटा था। पास खड़ी शांति बात कर रही थी। विमल लहरों से भरी नदी के वक्षस्थल जैसी भीतर-भीतर हिलती-डुलती इस कुसुम किशोरी की बात

सुन कर उसके मेघमंडित आकाश से मुखड़े को देखने लगा। बोला—मैं कहीं न जाऊँगा लल्ली! तुझे छोड़ कर कहीं जा न सकूँगा। किसी यूनिवर्सिटी का बड़ा से बड़ा 'आफर' पाकर भी मैं कानपुर न छोड़ूँगा। तू चिन्ता न कर। मुझे खुशी है तूने ऐसे जानवरों के यहाँ जाने से इंकार कर दिया। न किया हो अब कर दे। जिनमें मनुष्यत्व नहीं वे अपने सगे होने पर भी त्याज्य हैं। उनसे कोई सम्बंध न रखना चाहिए।

शांति ने आँखों से सशक्त स्थिरता का जलता तार जोड़ते हुए कहा—मैंने तुरन्त कह दिया था। जानती थी—प्राण की तलहटी में छिपा अर्धज्ञात किन्तु अखंड विश्वास कहता था—तुम मेरी बात का समर्थन करोगे। इसीलिए मेरे हृदय की कैसी भी हलचल हो शांत हो जाती है। तुम बैठो। चाय लेकर आती हूँ। कहती-कहती चंचल चिड़िया सी शांति अपनी उन्मादक श्यामलता भरी आँखों की छाँह में नाचती-नाचती नीचे उतरी। चाची और भाभी उसी के घर बैठी हैं। शांति ने खुद चाय तथा नाश्ता बनाया। बना कर ऊपर ले चली तो भाभी और चाची दिखीं। भाभी ने मुस्करा कर कहा—बड़ी जल्दी में मालूम होती हो। उन्हें आये देर हुई? मैं मा के पास बैठी-बैठी समय का अंदाज न लगा पायी। चलो सब लेकर। मैं आयी।

चाची परिपूर्ण यौवन से लदी इस सप्रतिभ युवती की संकोचहीन आत्मीयता और विमल के प्रति जाग्रत सेवा-वृत्ति को लख कर एक प्रकार से बड़ा जब्र करती थीं जो कभी कुछ उससे न कहती थीं। इस समय उनसे न रहा गया। शांति के सीढ़ी पर जाते ही बोलीं—ससुराल में यह आजादी कहाँ मिलेगी। वहाँ बहू बन कर बंधन में रहना होगा। यहाँ चाहे जो करे—जैसे रहे। कोई कहने सुनने वाला नहीं। विमल ने खूब मुँह लगा रक्खा है। परायी लड़की को इतना सिर चढ़ाना ठीक नहीं। तू अपनी आँख के नीचे सब होने देती है। मैं समझती थी तुझे कुछ बुद्धि आ गयी होगी। भगवान ने पहले कृपा

की होती तो अब तक तेरे बहू आने की घड़ी आ जाती। तू वैसे ही भोंदली बनी है। जा ऊपर—जा न!

उषा की हृदय-वीणा के किसी अलक्ष्य तार में सिर से पैर तक डुबा लेने वाला स्वर बज उठा। जो सोचना उसके लिए निषिद्ध है वही उठते-बैठते चाची कहती हैं। पति के चरित्र और सदाशयता पर उसे गहरा विश्वास है। उत्साह आनन्द और उत्कट सुख में डूबी उषा को अब ऐसी छोटी बातों के लिए अवकाश कहाँ। पहले भी न था। सोलह वर्ष के लम्बे अतीत का स्वप्न नवीन रूप से उसे उल्लास से पागल बनाने के लिए प्रत्यक्ष उपस्थित होने जा रहा है। कुछ महीने की देर है केवल। क्यों वह ऐसी छोटी अवांछित—असत्य बात अपने मन में लाकर अपने को छोटा करे। अपने वैभव और उपलब्धि की गंधोज्ज्वल मादक घड़ी में किसी वंचिता—चिरवंचिता का ऐसा निर्मम उपहास उड़ाये! बोली—चाची! तुम कैसी बात करती हो! मुझसे यह सब कहने से लाभ! जो कहना हो अपने लड़के से कहो। मैं जानती हूँ तुम्हारी स्नेह-दृष्टि अक्षय कवच की तरह मेरी रक्षा करना चाहती है। पर तुम्हें भ्रम है। मुझे कभी इस प्रकार की आशंका नहीं हुई। जो मेरा है और एक युग से मेरा चला आ रहा है उसे कोई छीन न लेगा। मैं इतना अधिक पा चुकी हूँ कि अब मुझे किसी के प्रति कोई दुर्भावना नहीं रह गयी है। छलनापूर्ण सतर्कता मैंने कभी उनके साथ नहीं बर्ती। जितना मेरे भाग्य का होगा वह कहीं न जाएगा। जो न होगा वह चौकसी चौकीदारी करने से प्राप्त न होगा। मैं बिल्कुल निश्चिन्त रहती हूँ।

ऊपर पत्नी के पहुँचने के पहले चाय पीते-पीते विमल कह रहा था—तुम्हारा जीवन सार्थक और सुखी हो सकता है। समाज और तज्जनित परिस्थितियों ने ऐसा होने न दिया। व्यर्थ निष्फल जीवन को लेकर तुम प्रेम की महानता और भव्यता का स्वप्न देखती हो। यह प्रेम नहीं प्रेम का शव है—जिसके सिंदूर की खूनी लालिमा तुम

अपनी निष्ठा के मुँह पर मलती रहती हो। आज तुमने जो किया उसके लिए मुझे संतोष है। क्या होगा इतने से......क्या होगा... अभी सब बाकी है।

शांति ने कहा......कुछ-कुछ असह अधीरता से पुलकित होते-कहा—चाय पी लो भैया! फिर वही बात जिससे मैं भय खाती रहती हूँ। डरती रहती हूँ—काँप उठती हूँ......

प्रकाश का स्पर्श ही ऐसा होता है लल्ली! सीमाहीन समुद्र की अथाह जलराशि भी प्रभात-कालीन प्रकाश के स्पर्श से काँप उठती है। तुम्हारे जीवन की छाती पर कुहेलिका की धूम्रवर्ण यवनिका हिल रही है। उसके दूसरे छोर पर सपनों—जीवित, यथार्थ, हाड़-माँस के वत्सल शरीर सपनों की जो मायापुरी है उसी का द्वार मैं खोल देना चाहता हूँ। जीवन की यह नवीनता और विचित्रता उसकी विशेषता है। जीवन के अविश्रान्त तरंग-गर्जन के भैरव राग में जो अपूर्वता है वह तिल तिल कर मौत से भिक्षा माँगने में नहीं। तुम कहोगी तुम्हें जो वर्जित है, उसकी ओर आकर्षित करता हूँ। मैं तुम्हारे जीवन की दबी कामनाओं को जाग्रत नहीं कर रहा—तुम्हारे प्रताड़ित पीड़ित जीवन को मनुष्यत्व के विवेक का अवलम्ब दे रहा हूँ। बेबसी के संसार से तुम्हें निकाल रहा हूँ जहाँ कदम-कदम पर रुकावटें हैं—मजबूरी की ऊँची दीवारें हैं। वहाँ से मैं तुम्हे वास्तविक सोद्देश्य—यथार्थ सार्थक संसार में खींचना चाहता हूँ। तुम्हारे प्रतिकूल संस्कारों से लड़ते-लड़ते मैं एक दिन अवश्य सफल होऊँगा। इस थकावट झुँझलाहट और कुंठा पैदा करने वाले प्रतिवाद को नष्ट करूँगा।

विमल की पत्नी ने प्रवेश किया। अनुगता शांति कोने में खड़ी सब सुन रही थी। न जाने कैसी प्रतिक्रिया उसके मन में हो रही थी। भाभी को देख कर बोली—भैया ने मेरी बात मान ली। मुझे शक था वे मेरी बात न मानेंगे मुझे वहाँ जाने को कहेंगे तो जाना पड़ेगा। भैया क्या मेरे मन की बात जानते नहीं! उनसे मेरी कौन मनु-हार—

कौन वर्जना—कौन प्रवृत्ति विरक्ति छिपी है। उनका मत पाकर मेरी अक्षमता जाती रही। मुझे कोई शक्ति वहाँ जाने के लिए मजबूर नहीं कर सकती।

उषा ने कहा—भाई-बहन में कभी मतभेद नहीं होता। इन्हें तुम्हारे रहने में सुख है। चाय-नाश्ता समय पर मिलता है। तुम्हारा यौवन के ज्वार से परिपूरित सुन्दर मुख देखने को मिलता है। तुम चली जाती तो वह कहाँ मिलता? ये भला तुम्हें जाने देंगे! तुम जाना चाहती तो भी न जा पाती। हाथ की चिड़िया कौन जाने देगा। फिर तुम सी अचंचल अवदात!

शांति चुपचाप भाभी की ओर देखने लगी। इस तरह का मजाक कैसे वह सह सकती? भाभी के गले के आवेग में कोई मलीनता न थी इतना वह समझ पायी। उसके संतोष के लिये काफी है। जवाब दिया विमल ने—बोला—तुम्हारे खानदान में चिड़ीमारी का पेशा होता रहा है। तभी तुमने ऐसी बात कही। अगर मछली मारने का पेशा होता तो लल्ली को मछली बनातीं। हमारी लल्ली इन बातों की परवाह नहीं करती। वह तुम्हें जानती है—तुम्हारे खानदानी पेशे को जानती है। चाची ने फिर कुछ कहा क्या? तुम्हारी बात में उन्हीं का स्वर लग रहा है। लल्ली! तुम्हारी भाभी पहले तो ऐसी बात करती न थी।

कभी नहीं भैया! आज न मालूम क्यों नाराज हैं मुझ पर......मैं निरपराध हूँ भाभी! तुम्हें ऐसी बात मन में न लानी चाहिए।

मैंने मज़ाक किया था लल्ली! इतना अधिकार भी मुझे नहीं। कहते-कहते उषा ने अर्ध-लज्जित अर्ध-शंकित दृष्टि से उसकी ओर देखा।

तुम्हें सब अधिकार है भाभी! मैं डर रही थी कहीं चाची की तरह तुम तो नहीं सोचने लगी। जिस दिन तुमने उनकी आशंका पाल ली। उस दिन मैं कहाँ रहूँगी? कहाँ जाऊँगी। भैया के पास उठने बैठने को तरस जाऊँगी—कहते कहते एक अनहोना गीलापन

उसके शब्द-शब्द से छलक उठा। उषा के अन्तर का कोना-कोना, चप्पा-चप्पा इस सिक्तता से भीग गया। उसे अपनी बात पर अफसोस हो रहा था। उसने मज़ाक में यह बात कही थी। पर लल्ली और मज़ाक! दोनों में कोई मेल ही—कहीं से नहीं। जैसे एक प्रज्ज्वलित विरोधाभास है दोनों के बीच में—जलता हुआ आग और धुआँ देता हुआ। कैसे वह इस महान यथार्थता को—इसे छिपे अहं को भूल जाय। कैसे कौतुक और विनोद का लोभ उसके भीतर जाग उठा। रह रहकर मन में कचोट उठने लगी। पति की उसे चिन्ता नहीं। वे उसके हृदय को जानते हैं। जानती लल्ली भी है पर उसे पीड़ा होती है। कैसे वह इस मजाक की तीक्ष्णता को भूले? उन्हें अब बात बदलनी चाहिए। विमल ने पत्नी के मन की द्विधा और ग्लानि को समझ लिया। बोला—लल्ली! बात तेरी भाभी ने ठीक ही कहीं। मेरे लिए यह कल्पना असंभव है कि तू थोड़े समय के लिए ही सही मुझे छोड़ कर चली जायगी। मैं कल्पना स्वप्न आशा की दुनिया में रहने-वाला आदमी हूँ। यहाँ कुछ न पाकर भी सुख की आशा प्रतिकूलतम परिस्थितियों के बीच चक्कर काटती रहती है। तेरा जाना मेरे लिए बहुत अर्थ रखता है। जिस दिन तू नहीं आती—लगता है दिन भर काँटेदार तार की बाड़ी में घिरा रहा। मैं समझता हूँ तू मेरे मन की जान कर ही नहीं जा रही। तेरी भाभी क्या कभी चाहती थी तू जाय। तुझसे उसे कितनी मदद मिलेगी—कितना भरोसा रहेगा तू कितनी सेवा उसकी न करेगी। चाहते सब हैं कि तू न जाय पर कहते सब अपने-अपने ढंग से हैं।

शांति की आँखों में आँसू सचमुच छलक आए पर बह न सके। ऐसी भी स्थिति आ जाती है जब छलकना हाथ लगता है। बहना बिल्कुल रुक जाता है। भाभी ने सूत्र को सँभाला—लल्ली चली जाती तो मैं मन ही मन मन दुश्शंका और ग्लानि में डूबी रहती। तुम्हारी चिन्ता—तुम्हारे आराम की फिक्र हमें उठते बैठते सताती। अब मैं

बेफिक्र हो जाऊँगी। मेरे सँभालने को चाची काफी हैं। तुम्हारे काम लक्ष्मी देखती रहेगी।

विमल ने कहा—गोया मेरी तुम्हारी सूरत एक है। तुम्हारी तरह क्या मैं एक महीने के लिए अकर्मण्य हो जाऊँगा। यह तो नयी बात मालूम होती है। छुट्टी लेनी होगी।

शांति के चेहरे पर परिहास की हल्की नारंगी छाया खेलने लगी। भाभी जोर से हँस पड़ी। शांति ने कहा—भाभी की बात का अर्थ सब नहीं समझ सकते। आपने बिल्कुल ठीक समझा। इनका यही मतलब था।

विमल ने गंभीरतापूर्वक कहा—मैं इनकी बात को बुरा नहीं मानता। बुद्धि से इनके परिवार से कभी घनिष्ठ सम्बंध नहीं रहा। जो औरत अपने पति—परमेश्वर का मज़ाक उड़ाती है......ऊपर चोट कर सकती है उसकी बात का क्या ठीक। वह जो मन में आवे ज्यों का त्यों कह दे सकती है। उसे क्रोध और विरक्ति का नहीं दया का पात्र मानना चाहिए......

विमल की पत्नी यह देख कर संतुष्ट हो रही थी कि शांति धीरे-धीरे प्रकृतिस्थ होती आ रही है। शांति बोली—ये गँवार नहीं बड़ी घुटी हुई है। भीतर-भीतर इनके बुद्धि विवेक की सीमा नहीं। इनके परिवार के विषय में जो मैं जानती हूँ वह भी साधारण नहीं। आप कालेज में पढ़ाते हैं। आपको कालेज की लड़कियों को छोड़ कर कोई पढ़ा-लिखा बुद्धिमान् जँचता नहीं। मेरी भाभी की सरल गम्भीरता, सहज कमनीयता और मार्जित शिष्टता वे सब कहाँ पावेंगी। वे तो एक साँचे में ढली एक नमूने की रंग-बिरंगी अनुकृतियाँ होती हैं। नदी का मार्ग तो वहाँ होता है पर दोनों किनारों को छाप लेने वाला निर्मल जीवन का प्रवाह कहाँ—बूँद-बूँद जोड़ कर सरसता बरसाने वाला हृदय का उच्छ्वास वहाँ कहाँ।

क्या जानूँ! मेरा काम है क्लास में पढ़ा देना। मुझे बैठ कर

उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने का अवकाश नहीं। मुझसे ज्यादा तुम जानती हो यद्यपि तुमने कालेज का मुँह नहीं देखा। देखती हो लक्ष्मी को। एक तुम हो उस पर छींटेबाजी करती हो। एक वह है तुम्हारा इस प्रकार मुक्तकंठ से गुणगान करती है। चाहो तो इससे शिक्षा ग्रहण कर सकती हो।

तुमको पाकर मुझे कोई शिक्षा नहीं चाहिए। शिक्षा-विभाग के पदाधिकारी को ग्रहण कर लिया—बहुत है। लक्ष्मी ! तुम्हें कालेज की लड़कियों का यह अनुभव कहाँ हुआ ? सुनी-सुनायी बातों को लेकर अपनी जाति के लोगों पर ऐसे आक्षेप न किया करो। मेरी समझ में 'अच्छाई' और 'नारी' पर्यायवाची शब्द हैं। नारी किसी दशा में जीवनहीन अनुकृति बन कर रह नहीं सकती। उनके भीतर प्रसरणशील अहंका का दाह जो होता है। अपने को मिटा कर दूसरे को बनाने की आग......।

मेरा यह मतलब नहीं था। वे भी बाद में शादी करती हैं। संतान का पालन करती हैं। पर ममता की वह सर्वपालक—लोकरंजक स्निग्धता उनमें नहीं होती जिससे तुम्हारी पहचान है। अपनेपन की यह सर्व-प्रिय अन्तर्शिखा उनमें नहीं होती। मैं आरोप नहीं करती। आज की शिक्षा ही ऐसी है। आदमी को यंत्रचालित और जड़ बना देती है। तुम भी भाभी स्कूल में पढ़ी होती तो बिल्कुल वैसी बन जातीं। मेरी भाभी तुम तब न रहतीं।

नीचे से चाची की आवाज सुनकर उषा चली गयी। शांति का मुँह अब भी पहले जैसा उत्फुल्ल नहीं था। उसके हृदय की व्यथा जैसे मुँह पर लज्जा के लाल रुधिर से लिखी हुई थी। पत्नी की बात उसे अब तक कष्ट दे रही है यह विमल से छिपा न रहा। विमल ने विधाता द्वारा सदैव के लिए अनाहता इस बालिका के लिए गहरी सम्वेदना अनुभव की। बोला—अभी तक तेरे मन से भाभी की बात का मलाल नहीं गया। अपने को मुझे लेकर तू इतनी छोटी-छोटी

बातों में क्षुब्ध होने लगेगी तो कैसे इतनी बड़ी दुनिया—इतना कठोर जीवन झेलेगी। यह तो कोमल परिहास था—निष्ठुर व्यंग नहीं। अभी चाची ने कुछ कहा नहीं। उनकी बात पर तो शायद तू मेरे सामने निकलना छोड़ दे। इतनी भावुकता औरतों को भी शोभा नहीं देती। यह भी चित्त की भ्रांति है।

शांति कुछ न बोली। एक बार आँख उठा विमल की ओर भर नज़र देख कर रह गयी। मन में आया भैया की गोद में अपने को डाल कर एक बार रोले। दूसरे ही क्षण उसने अपनी आँखों को नीचे कर लिया। कुछ मिनटों तक सन्नाटा रहा। शांति ने निस्तब्धता भंग कर कहा—चाची की बात से मैं विचलित न होऊँगी। पर भाभी के लिए मेरे मन में अगाध श्रद्धा है उसे भगवान जानते हैं। आज तो मैं समझती हूँ इन्होंने यह मजाक में कहा था। पर मजाक बे-बुनियाद नहीं हुआ करता। हृदय के किसी कोने में जो रहता है उसी की प्रतिच्छाया मजाक में आ फूटती है। भाभी के दिल में यह बात आ गयी तो मेरा कहाँ ठिकाना लगेगा। कैसा अपना पाप-कलुषित मुँह लेकर उनके सामने निकलूँगी—किस अधिकार से तन कर उनके सामने खड़ी होऊँगी।

विमल का हृदय भर आया। नहीं नहीं लल्ली! तुम स्वप्न में भी ऐसा मत सोचना। पाप और तुम! असंभव है। तुम्हारे पास आते आते पाप पुण्य का प्रतिरूप हो जायगा। अपना पवित्र मन लेकर तुम साक्षात अपवित्रता के सामने भी अत्यंत निर्मल भाव से खड़ी रह सकोगी। इस बात को अपने हृदय से निकाल फेंको वर्ना मुझे कष्ट होगा। ऐसी बात सोच कर अनुभव कर तुम प्रकारान्तर से मेरे ऊपर आक्षेप करती हो। समझीं! दुनिया मुझ पर प्रहार करे पर तुम! तुम करोगी तो मैं दुःसाध्य चेष्टा करने पर भी टूट जाऊँगा। ऐसी बात करने का अर्थ तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं। उषा मेरे ऊपर अविश्वास कर सकती है। चाची बचपन से करती आयी हैं। तुम करोगी

मैंने न सोचा था......। मैंने अपने आदर्श की रक्षा के लिए अपने को कभी छोड़ा नहीं। तुम्हीं मुझे ऐसा असंयत मानती हो !

शांति की समझ में कुछ आया...कुछ न आया। भैया क्या कह रहे हैं ? जिनकी विद्या की ख्याति देश में छायी है—जिनके असाधारण तेज के सामने सारा शहर सिर झुकाता है ऐसे देवोपम भाई पर अविश्वास। जिसको पहचानने में उसे एक क्षण की देर न लगी थी......जिस पर विश्वास करने में उसे आत्मा का स्वर्गीय आह्वान सुनायी दिया था···जिसको उसने आदर्श का अवतार माना था। जिसकी उज्ज्वल दृष्टि में उसने युग-युग के लिए खोयी अपने प्राण की दीप्ति पा ली थी उन्हीं का यह कहना ! ठीक कहते हैं भैया ! इस तरह की बात पर ध्यान देना सचमुच उन पर अश्रद्धा और अविश्वास करना है। हाथ जोड़ कर बोली—अब ऐसी बात न करना भाई ! मैं कुछ न कहूँगी। जिसे जो कहना है कहता फिरे। तुम्हारे प्रकाश में मैं कभी छोटी न दिखूँगी। एक उल्लसित व्यथा से शांति को रोमांच होता आता था। वेदना-कातर हृदय से जी जी भर पुकारने के बाद भगवान ने मेरी पुकार सुनी। तुम मिले। तुमसे बे-पहचान युग के दुर्दिन आये और चले गये। जीवन में अनिर्वचनीय सुख और ममता की सृष्टि हुई। तपस्या सफल हुई—मेरी आत्मा शुद्ध हो होकर तुम्हारे शोधक साहचर्य से अधिकाधिक अमिताभ होती गयी। तुमसे दूर अब जा नहीं सकती। कहने वाले यदि तुम्हारे प्राण की छाँह का स्पर्श पा जाते तो...जो पा चुके हैं वे कभी कुछ न कहेंगे। वे भी मेरी तरह आँख मूँदे भीतर भीतर तुम्हारे ध्यान में तन्मय होते रहेंगे। अनन्य पूजा की परिपूर्ण निष्ठा—आत्मनिवेदन का अखंड आलोक उन्हें भी मेरी तरह पंथदान देगा। मेरी तरह वे कृतार्थ हो जायंगे।

विमल चुप बैठ सब सुन रहा था। कोमलता स्नेह-सहानुभूति और करुणा का जाग्रत उच्छ्वास उसके चेहरे पर आकर्षण की झलक उद्भासित कर रहा था। शांति ने एक बार आवेगहीन दृष्टि से देख

कर फिर कहा—जिस अलौकिक तीर्थपथ पर चली जा रही हूँ उसमें पाथेय चाहिए—महाप्रस्थान के इस अनंत पथ में मुझे बंधुत्व, प्रेम, वात्सल्य, माया-मोह का पुण्य संचय चाहिए। मेरे जागरण और स्वप्न में तुम इन सबके प्रतीक हो। तुम्हारे इसी रूपातीत रूप की मैं उपासिका हूँ। यही मेरे जीवन की परितृप्ति है। समूचे जन्म की ज्योतिर्मयी अंतिम प्राप्ति। यही मेरा आत्मदान है......प्रति प्रभात को तुम्हें देख कर जैसे नव जन्म लेती हूँ। चिरकाल में इस देवतीर्थ की यात्रिणी हूँ। जन्मजन्मान्तर पार कर ऐसी ही आत्मांजलि देती जीवन का अतिक्रम करती चली जा रही हूँ।......कहते कहते वाष्पाकुल उच्छ्वासित हो कमरे से भागती नीचे चली आयी। सामने की बड़ी दालान में चाची बैठी तरकारियाँ बना रही थीं। शांति का इस प्रकार चंचल हिरनी की तरह दौड़ना उन्हें तनिक न भाता था। इतनी सयानी लड़की! विधवा होकर इस तरह बच्चे की तरह भागती है। बोली—क्या है लल्ली! क्यों दौड़ती आ रही हो। दब कर और नत होकर चलना चाहिए। यह चंचलता तुम्हें शोभा नहीं देती। बैठो यहाँ आकर।

भाभी अपने कमरे में पड़ी चाची की बात सुन रही थीं। लल्ली के दिल पर चोट लगने की सम्भावना थी। इसीलिए तुरन्त बाहर निकल आयी। लल्ली ने चाची के पास एक पीढ़े पर बैठ कर कहा—क्षमा करना चाची! मेरी आदत जल्दी चलने की बरन दौड़ने की है। भैया, भाभी कई बार कह चुके पर छूटती नहीं। आगे से ध्यान रक्खूँगी। भैया से खड़ी बात कर रही थी। एकदम से क्या सूझा भाग पड़ी।

चाची ने मीठी विषाक्त हितैषिता से कहा—देखो बेटी! विमल विमल के पास अकेले घंटों बैठना तुम्हें शोभा नहीं देता। न जाने कहाँ कब जीवन राह भूल जाता है। दुनिया को कलंक लगाते देर नहीं लगती। संसार देखने नहीं आता तुम दोनों कितने भले हो कितने पवित्र हो! तुम्हारी भावनाएं कितनी पवित्र हैं! वह हमेशा

भीतर के छेद देखती है। बहू अब तक अल्हड़ है। चाहिए था, विमल तुम्हें दोनों को समझा देती।

शांति को आश्चर्य नहीं हुआ। चाची का मनोभाव वह जानती थी। चाँदनी की छाँह में मुस्कराते फूल सी अपने चपल श्वास-प्रवाह को यथासंभव संयत कर बोली—कोई बात नहीं चाची ? दुनिया हर जगह पाप और कलंक सूँघती फिरती है। कुतिया जैसी मनोवृत्ति है उसकी। भैया मुझे जानते हैं—मैं उन्हें जानती हूँ। भाभी हम दोनों को जानती हैं। तुम भी दो-चार महीने में पहचान लोगी। तब तक कुछ न कहो इस सम्बंध में। मेरे भी मा-बाप हैं। उनके नाक, कान, आखें हैं। अधिक से अधिक सोचने—समझने की विचार-शक्ति उनमें अभी है। हर एक के साथ कोई जवान विधवा लड़की को घूमने-फिरने, उठने-बैठने की अनुमति नहीं दे देता। मेरी भाभी देवी नहीं हैं। उनके मन में कहीं संदेह की खिड़की खुल जाती, शंका का एक झोंका भी स्पर्श कर जाता तो इस मकान को छोड़ और कहीं जाने में उन्हें देर न लगती। रह गयी मैं—मेरा अब होने को क्या बाकी है ? जो हो चुका उससे अधिक क्या होगा......? मुझे किसी के कहने सुनने की, परिहास उड़ाने की परवाह नहीं। जिस दिन भैया अपने पास बैठने से मना कर देंगे उस दिन से मुझे अपने घर में पैर रखते न पाओगी...समझीं !

भाभी ने बीच में बोलना उपयुक्त न समझा। पति की चारित्रिक दृढ़ता और शक्ति पर उसे विश्वास था। विरली भाग्यवती को ऐसा प्रणम्य पति मिला करता है। उनके पोर-पोर से उनका दर्पी विश्वास बोलता रहता है। पति का ध्यान करते ही उसका मानस पारावार उछलने लगता है। यह सच है कि उसकी दुनिया में नये-नए सपनों का साज नहीं—प्रतिक्षण साकार होकर सामने खड़ा रहने वाला भोग-विलास और रम्य रास नहीं। विमल को कभी समय नहीं मिला कि वह पत्नी के प्रसाधनों की, पतित्व की माँग करने वाली कोमल

लालसाओं की पूर्ति कर सके। विद्यार्थी-जीवन में पत्नी का पक्ष लेकर वह माता-पिता, चाचा-चाची से लड़ता जरूर रहा है पर उसने उसे सदा दूर-दूर रक्खा है। अध्ययन में किसी प्रकार का विकल्प न पड़े। पर उसके मौन और अवज्ञा में प्राण के स्वर की जो पीड़ा और प्यास छिपी रहती थी उसे ऊषा ने कभी समझने में भूल नहीं की। सर्वस्व-समर्पिका पत्नी को पति की इस बाह्य अवहेलना का दुख—वेदना कहाँ ? अक्सर वह सास और चाची की ज्यादतियों को पति से न बताती। पर उनकी भनक पाते ही विमल लड़ने को आमादा हो जाता। उसके जीवन का आरम्भ ही विद्रोह में हुआ था। पिता के स्वभाव में सनक थी। विचार—विवेचना और सामाजिक व्यवहारवाद से उन्हें मतलब न था। उनके अन्यायपूर्ण संशयवादी कौटुम्बिक शासन की कठोरताएं झेलते झेलते, संघर्ष करते करते सब तरह के अन्याय के विरुद्ध एक तीव्र असहिष्णुता उसके स्वभाव में आ गयी थी। उषा पढ़ी-लिखी विशेष न थी पर पिता के घर में सौतेली मा का कठोर उत्पीड़न और शुरू से ही मानसिक यंत्रणा सहते सहते उसकी बुद्धि में शोधक कुशाग्रता आ गयी थी। पीड़ा से बड़ी कोई शिक्षा नहीं होती। यातना में बुद्धि को पैना कर देने की शक्ति होती है। भोगी हुई वेदना मेधा को केवल विकसित नहीं करती उसकी जड़ों में नव जीवन का पोषक रस सींचती है। उषा में यह सब था। इसीलिए वह शांति की अपलक निष्ठा को सम्मान देती थी। जीवन की सबसे बड़ी चोट भोक्ता के मन को अवाध्यता की ओर झुका देती है। शांति के कंठ-स्वर की अहं-मंडित निस्संग स्पर्द्धा ने उसे भीतर-भीतर संतोष दिया। पर चाची इतनी जल्द कैसे हार मान लेंगी। उन्होंने तरह तरह की बातें शांति से करनी शुरू की। उसे भाँति भाँति से समझाया—ऊँचा-नीचा दिखाया। शांति के मन में सोया विमल के प्रेम का देवता जाग पड़ा। विमल के सामने वह जो न कह पायी थी वह सब चाची के सामने कहने के लिए व्याकुल होने लगी। भाभी भी सुन लें। क्यों वह अपने

अगम सत्य को छिपाने पर अपने को राजी करे। बोली—चाची! मुझसे बात करने की आवश्यकता नहीं। जो कहना है मेरे भैया से कहो। मुझे यह सब न सुनाओ। भैया मेरे लिए वैसे हैं जैसे शबरी के लिये राम थे। उनके लिये मेरे हृदय में थोड़ी भक्ति नहीं पूरी सरिता है। उनके पास बैठ कर मैंने कभी नहीं जाना जीवन में ऐसी मलीन वृत्तियाँ भी होती हैं जिनके लिये तुम इशारा कर रही हो। लहर किनारे से आ आकर लिपटा करती है। उसकी लगन का गीत बराबर चलता रहता है। पर वहाँ ये कुत्सित प्रतिध्वनियाँ नहीं उठतीं। मैं विधवा हूँ—इसलिये यह सब तुम आसानी से सोच सकती हो। इसका कोई आधार नहीं। इसकी विकलता को अमृत-के प्रकाश से सींचने वाला साकार सम्बल नहीं। मुझे भगवान का सहारा है। उनसे बड़ा भरोसा कौन हो सकता है? वे समुद्र जैसी शक्ति दे देते हैं। जिस शक्ति से अगणित शंकाएं सदैव के लिये बह कर दूर... बहुत दूर, मानव-सीमा से परे हो जाती हैं। जिसे वासना की बिजली जला कर क्षार नहीं कर पाती...यह वह शक्ति है। मुझे उनसे कोई नहीं छुड़ा सकता।...मैं जब संसार छोड़ूँगी तभी वे छूटेंगे। पहले नहीं। कहते कहते टप से एक आँसू की असाधारण बड़ी बूँद उसकी आँख से गिरी। शेष को भीतर-भीतर घुटकते हुए शांति ने कहा—एक संतापी उद्देश्यहीनता—बुझ जाने की—अविरल मरण की माँग लिए मैं जीवन की गलियों में अन्धी, कातर घूम रही थी। अपनी तड़पती चाहभरी यथार्थता से परिचय हीन थी। उन्होंने मुझे ज्ञान दान दिया—पथदान दिया—मनुष्य बनाया। जीवन के पहाड़ी बर्फ से अन्धी हो गयी मेरी आँखें खोलीं। मैंने देखा आगे गति है—प्रगति है। अनुकूलता और प्रतिरोध के परे भी मन की ऐसी निःशब्द गति होती है जो मेरे हेतु संसार के लिए अदेय थी। केवल भैया उसे दे सकते थे। मैंने उसे उनसे पाया। आजीवन पाती रहूँगी। मैं जी उठी। नारी का सबसे अभिन्न अवदात अभिप्राय मुझे मिला। मैं कहाँ थी? कहाँ आ गयी? जैसे असीम मरु की प्यास

को अगम सिन्धु की जलराशि मिली हो। किसी के कहने से मैं यह सुख छोड़ दूँगी...मेरी पीर को कौन समझेगा ? न तुम ! न भाभी !! न दुनिया !!! उसे समझने के लिये मुझ सा होना पड़ेगा। भगवान न करे कोई उसे समझे। अपने साथ उसे लायी...अपने साथ किसी को समझाये बिना लेती जाऊँगी। उसी जीवन-देवता के चरणों से मुझे दूर करना चाहती हो...असंभव है...असंभव...असंभव...मैं उनसे न मिल सकूँगी तो क्या उन्हें खो दूंगी...क्या वे छूट जायँगे।

विमल घूमने जाने के लिये नीचे उतरा। लल्ली का उद्वेलित कंठ आवेश से तमतमाया मुख देख कर उसे आश्चर्य हुआ। ऊपर के कमरों में नीचे की बातचीत को आवाज नहीं पहुँचती। उसे कुछ पता न था। चाची के पास शांति को गर्वोन्नत ललाट ऊँचा किये बैठे देख कर वह कुछ कुछ समझ गया। चाची सिर झुकाये बैठी तरकारी भून रही थीं। बोला—तू यहीं बैठी है अभी ! ऊपर से इस तरह भागी थी जैसे घर जाने की बड़ी जल्दी है। यहाँ तरकारियों की खुशबू ले रही है। देख ! हरी क्या कर रहा है। बुला ला।

शांति चली कि चाची की बात याद आ गयी। चुपचाप धीरे-धीरे चलने लगी। भाभी चाल का परिवर्तन समझ गयीं और हल्की सी मुस्कान उसके होंठ के कगारों पर फूटने लगी। विमल ने चाची से पूछा—क्या बात थी ? तुमने लल्ली को कुछ कहा क्या ? बहुत खिटपिटायी बैठी थी।

चाची के क्षोभ की सीमा न थी। शांति की बातें उन्हें जलाने के लिए पर्याप्त थीं। बहुत सी न समझ पायी थीं पर जितना समझी थीं उनके अन्दर अन्दर बौखलाहट पैदा कर रहा था। कल की छोकड़ी कैसी बढ़-बढ़ कर बात करती है। विमल और बहू ने सिर चढ़ा रक्खा है। वर्ना इतना कड़ा जवाब देने की उसकी हिम्मत पड़ती ! उनका द्वेष और घृणा असंगति की सीमा पर पहुँची जा रही थी। बोलीं—मुझे क्या कहना है ? थोड़े दिन के लिए आयी हूँ। भगवान

हँसी खुशी के साथ काम पूरा कर दे। चली जाऊँगी। तुम लोगों की जो तबियत हो करना। न बहू पर बस है—न तुम पर।

विमल ने आग्रहपूर्वक कहा—हुआ क्या यह बतलाया नहीं तुमने। दुनिया भर की बातें करने लगीं। अब हमें छोड़ कर कहाँ जाओगी। इतने दिन घर से अलग रह कर जी नहीं भरा। कौन ऐसी बात हो रही है जो तुम्हारे मन की नहीं? क्या दोष है हम लोगों में?

चाची ने कहा—मैंने कहा था भले घर की विधवा लड़की को इतनी आज़ादी शोभा नहीं देती। उछलना, कूदना, तेरे पास एकान्त में बैठना, घंटों तक बात करना, घूमना-फिरना। दुनिया क्या कहेगी? मुझे कहाँ मालूम था इतना सब? नहीं क्यों कहती? किसी की भक्ति में बाधा देने वाली मैं कौन होती हूँ। बड़ी फर्राट है लड़की। बाप रे बाप! अपने कर्म नहीं देखती...फूटा भाग्य नहीं देखती। तरकार करती है।

शांति हरी को लेकर आ गयी। विमल ने कहा—तुम्हारा कैरम का सेट नानावती की दूकान पर आ गया है। जाकर ले आना। मैंने कह दिया है। लल्ली और भाभी कभी खेलना चाहें तो तुम इंकार न करना। यही कहने को बुलाया था।

उषा ने कहा—हरी जाने उसके दोस्त जाने। झगड़ना छोड़ थोड़े दिया है। बराबर लल्ली से लड़ता है। उसे मारा पीटा करता है। बड़ा नटखट है।

हरी जा चुका था। विमल ने शांति की ओर देखा जो दूर खड़ी चाची की ओर देख रही थी। एक तनाव उसके शरीर में जाग कर उसकी आँखों में पूँजीभूत हो रहा था। विमल ने सब कर भी कहा—लल्ली! चाची ने तुमसे कुछ कहा था। मैं जानना चाहता उन्होंने क्या कहा था। तुमने उत्तर दिया। मैं उत्तर भी नहीं सुनना चाहता। चाची को तुमसे शिकायत है। तुमने उन्हें उचित आदर नहीं दिया। तुम्हें

मालूम है, मैं कितना आदर करता हूँ उनका! तुम मेरा आदर करती हो। इस नाते तुम्हें उनका अधिक आदर करना चाहिए। तुमने यह नहीं किया। तुम्हें अपनी भूल का परिमार्जन करना होगा। तुम्हें उनसे माफी माँगनी होगी यही नहीं, आगे से उनके प्रश्न का धृष्टता पूर्वक उत्तर न देने का प्रण करना होगा। तुम जानती हो इन मामलों में मैं कठोर हूँ। न विश्वास हो तो अपनी भाभी से पूछ लेना। वे बता देंगी। बोलो? चुप क्यों हो?

शांति सिर झुकाये खड़ी रही। उस जड़ता में भी संतोष था। भैया ने ऊपर बैठे-बैठे सब बातें सुन लीं। नीचे की बातचीत ऊपर सुनायी तो नहीं देती। संभव है सीढ़ी पर खड़े रहे हों। उसे अपने ऊपर, मन ही मन, लाज लगी। उनके सामने जो-जो कहा वह ठीक है। पर नीचे चाची से जो कहा अगर भैया ने सुना होगा तो कैसी निर्लज्जा उसे समझा होगा। अपने को ही मरोड़ने वाली आन्तरिक प्रतिकूलता से उसका चेहरा कँटीला हो आया। भैया जो करने को कहेंगे उसकी करणीयता असंदिग्ध है। उसे करना होगा। वह सहर्ष करेगी। प्रीतिपूर्वक गौरव मान कर करेगी। भैया की आज्ञा उसके लिए अपरिहार्य होती है। पर यह लाजों मर-मर जाने वाला मन! भैया ने उसके सारे अंगीकरण को कितना नापसंद किया होगा। विमूढ़ हतबुद्धि पाषाण सी वह कैसे इस लज्जा का निराकरण करे? भैया ने सब सुन लिया है। विमल ने कड़े स्वर में कहा—क्या बात है लल्ली? चुप क्यों हो? तुम्हें चाची से माफी माँगनी होगी। आगे के लिये वचन देना होगा। उन्हें कभी कोई कठोर बात न कहोगी। मेरी ओर देखो! मुँह ऊपर उठाओ।

शांति ने गर्दन ऊपर करते हुए कहा—मैंने कोई ऐसी बात चाची से नहीं कही। आप उनसे पूछ कर देख लीजिए। वे कह दें......

मैं पूछना नहीं चाहता। मेरा कहना नहीं मान सकती तो फौरन उत्तर दो। व्यर्थ की बात मैं नहीं सुनना चाहता। मुझे मीटिंग में

जाना है। तुम्हें कुछ हतक मालूम पड़ती है ? बोलो !

शांति वैसा ही अडिग अकंपित मुँह लिए चौके में आकर, चाची के पैर पर सिर रख कर अधलेटी-सी बैठ गयी। चाची ने हड़बड़ा कर उसे उठा लिया। बगल से लगाते हुए बोलीं—मुझे क्यों पाप में घसीटती है। लड़की और विधवा होकर मेरे पैर पर सिर रख दिया !

शांति ने अनदेखती निस्पंद आँखों को ऊपर कर कहा—मैं अपनी बात के लिये क्षमा माँगती हूँ। तुम बड़ी हो—हर प्रकार से मेरी पूज्य हो। मैंने तुम्हारे समक्ष अपराध किया है।

चाची स्नेहपूर्वक किसी अदृश्य अन्धड़ के द्वारा झकझोरी जाती शांति की दुबली-पतली देह को अपनी देह से लगाये सिर पर हाथ फेरने लगी। शांति लपक कर विमल के पैर पर उसी भाँति सिर रख कर बोली—तुमसे भी माफ़ी चाहती हूँ, भैया ! तुम्हारे निकट भी कम कसूर नहीं किया है। जो बात जबान पर न लानी थी उसे मैंने बड़े दर्प के साथ कह डाला। मेरे अपराध का अन्त नहीं। तुम्ही माफ करो तो मैं उसके दंशन को भूल सकती हूँ।......सचमुच शांति रोने लगी। विमल ने वैसी ही अविचल मुद्रा से कहा—उठो ! जाओ भाभी के पास ! वही तुम्हें माफ करेंगी। तुम्हारे प्रति जो आरोप होगा—उसे होगा। न मैं किसी पर अपराध लगाता हूँ—न माफ़ करता हूँ।

उषा के लिये संकेत पर्याप्त था। आकर उसने मृदुतापूर्वक शांति को उठा लिया। शांति ने बार-बार उसके पैरों पर सिर रखने की कोशिश की पर उषा बलपूर्वक उसे हृदय से लगाये रही। विमल बाहर जा चुका था। चाची उसी प्रकार बैठी रसोई बना रही थीं। शांति देर तक भाभी की गोद में सिर डाले पड़ी रही। बीच-बीच में जब अश्रुधार बहने लगती थी तो भाभी की धोती न भींगे यह सोच कर आँचल से आँखें पोंछ लेती थी। उषा की छाती एक अज्ञात आवेग के बादल से फूल-फूल आती थी।

पाँच

इसके बाद कई दिन तक शांति दिखायी न पड़ी। चाची को सारा व्यापार अद्भुत और रहस्यमय लगता था। विमल को एक दो दिन शांति का न आना खला पर धीरे-धीरे वह सहता गया। हरी जरूर आकर उसके साथ एक दो गेम कैरम खेल गया। शांति के ससुर निराश होकर जा चुके थे। ऊषा की वेदना की सीमा न थी। वह बराबर शांति के कमरे में जाकर घंटे दो घंटे बैठ आती थीं। चाची भीतर-भीतर सन्तुष्ट रहती थीं। पर यहाँ भी उन्हें अपनी हार का बोध था। जहाँ से उन्हें न हारना था वहीं से हार गयी। जहाँ से उन्हें न टूटना था वहीं से वे टूट गयीं। शांति की आँखों के जल में धुला-धुला अपनी पराजय का आत्मबोध उन्हें बराबर होता रहता था। विमल पर जैसे इसका कोई असर नहीं। वह उसी प्रकार असंलग्न अनात्मभाव से सब काम करता है। इस बीच एक नयी घटना हो गयी। विमल के कालेज के अङ्गरेज प्रिंसिपल के अन्दर ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के ज़माने की सल्तनतशाही की बू थी। विमल के भीतर ज्वलंत राष्ट्रीयता थी। इसीलिए उसके प्रत्येक कार्य में बाधा पहुँचा करती थी। कालेज में तिमाही परीक्षा चल रही थी। विमल देर में पहुँचा। प्रिंसिपल ने कुछ कह दिया। विमल ने भरे हाल में उसे जितना फटकारते बना फटकारा 'कामनरूम' में आकर, स्तीफा लिख कर चपरासी के हाथ भेज दिया। शाम को ऊषा से विमल ने सारा हाल बताया। वह आगत कष्टों और असुविधाओं की कल्पना से सिहर कर बोली—अब क्या होगा? ताव में आकर तुमने लगी लगायी नौकरी छोड़ दी।

आत्मसम्मान का खून कर मैं प्रोफेसरी क्या बड़ी से बड़ी नौकरी नहीं कर सकता। रोज हाय-हाय हुआ करती थी। खद्दर न पहनो... लड़कों को क्लर्क बनाने वाली पढ़ाई चलाओ......उन्हें क्रान्तिवाद,

गौरवपूर्ण आत्मत्याग, कष्टसहन-बलिदान की शिक्षा मत दो। मुझे प्रिंसिपल वेतन नहीं देता। मैं जनता का पैसा खाता हूँ। उसके और उसकी सन्तान के प्रति अपने कर्त्तव्य कैसे भूल सकता हूँ। मामला आसानी से शांत न होगा। कल 'स्ट्राइक' होगी। विद्यार्थी अपने कर्त्तव्यशील अध्यापक को इतने जल्द न छोड़ेंगे। पर इससे क्या ? मैं लौट कर वहाँ न जाऊँगा। इस बदमाश के नीचे काम न करूँगा।

पत्नी ने कहा—अब तक जो निश्चिन्तता थी वह गयी। फिर इधर-उधर दौड़ना पड़ेगा। मैं घर में बैठी रहूँगी। कमा कर तुम्हीं खिलाओगे—पर जब तक तुम्हारी नौकरी नहीं लगती, तब तक हमें शांति नहीं। जरूरी नहीं कानपुर में ही मिले। बाहर मिलेगी तो पूरी गृहस्थी लाद कर ले चलनी होगी। नयी चिन्ता पैदा हो गयी।

तुम चिन्ता बिल्कुल न करो। इतना मैं घर बैठे अपने लेखों और पुस्तकों से कमाऊँगा। अपने अमर विश्वास को—हृदय में वेगवंत जलधि-सी बहती आत्मसम्मान को अबाध उद्याम लहर को कहाँ ले जाऊँ। पेट पशु भी पाल लेता है। पेट किसी न किसी प्रकार भर जायगा। यह अभिमानी ऊँचा मस्तक अन्याय के सामने न झुकेगा। वहाँ यह और तनेगा......तनता जायेगा। आत्म-गौरव का यह तनाव मानव का अहं है जो कोई उससे छीन नहीं सकता। उसके आँसुओं की लड़ियों में तुम इसी की चिनगारी पावोगी—उसकी कोमलतम मुस्कान के भीतर इसी ज्वाला का दाह मिलेगा। सुन्दरता से गीत के पीछे इसी विद्रोह के अंगार तुम पावोगी। यही वह प्राणवान अहं है जो दीपक को तूफान में अविरल गति से जलने का बल देता है। जिसके सहारे नाविक उठती गिरती ज्वारान्दोलित लहरों पर अपनी क्षुद्र तरी लेकर बढ़ जाता है। तुम मेरे उल्लास की कल्पना नहीं कर सकती। किसी प्रकार की लाचारी मैं अनुभव नहीं करता। मुझे निराशा डिगा नहीं सकती। संघर्षों के पथ पर मेरे पैर

रुक नहीं सकते। तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं, उषा! मैं अपनी शक्ति समझता हूँ।

पत्नी ने फिर कुछ न कहा पर चाची को बड़ी वेदना हुई। मध्य वर्ग के रोज कुँआँ खोदने वाले और पानी पीने वाले व्यक्ति के परिवार में ऐसी स्थिति आने पर आशंका और अस्थिरता की लहर आना कितना स्वाभाविक है यह भुक्तभोगी जानते हैं। उषा ने चाची को शांत किया पर स्वयं उसके भीतर दुश्शंकाएं उठ रही थीं। बचपन से लेकर लम्बे युग तक संघर्ष करने के बाद सुख के दिन आये थे। जीवन संतोष की तरंग-भरी लय के साथ आगे बढ़ रहा था। अब क्या होगा? नारी कैसी हो यथार्थ पर उसकी पकड़ छूटती नहीं। उसके सामने हमेशा जीवन की असंगतियों की लड़ी घूमती रहती है। लेकिन यह एक दिन होना था। एक वर्ष से विमल का संघर्ष चल रहा था। बीच-बीच में कई बार यह स्थिति आते-आते बची थी। कब तक वह उससे बचने की कामना मन में रखती।

दूसरे दिन विमल कालेज गया पर घंटे भर के अन्दर लौट आया। अपने कमरे में आकर देखता है, शांति और उषा बातें कर रही हैं। विमल को देख कर कुर्सी पर बैठी शांति यंत्र-संचालिता से उठकर खड़ी हो गयी। विमल ने देखा—उसका चेहरा गहरी वेदना सी विवर्ण है। बोला—क्या बात है लल्ली। तुमने यहाँ आना छोड़ दिया। आज आयीं तो ऐसा दुखी चेहरा लेकर। चाची ने तो फिर कुछ नहीं कहा? तुम क्यों नहीं आयी? मेरी बात यहाँ तक बुरी लग सकती है मैं न जानता था......

शांति ने कहा—मैं रोज आती थी भैया!

आती रही होगी—हिसाब लगा कर जब मैं कालेज में रहता था। मेरे आने का समय जान कर फौरन लौट जाती थी। छोड़ो यह चर्चा। कोई किसी से नहीं मिलना चाहता तो जबरदस्ती क्या है। तुमने

सुना—मैंने कालेज से स्तीफा दे दिया। बहुत पहले दे देना था। इतने दिन तक निबाहता रहा।

शांति ने कहा—आपने जो किया उन स्थितियों में वही उचित रहा होगा। आप कानपुर से चले तो न जायंगे ? मैंने जब से सुना मेरे सामने अँधेरा छाया है। भाभी को भी लगता है; अब कानपुर में आपको नौकरी आसानी से न मिल सकेगी। तब क्या होगा...... मेरा क्या होगा......

कुछ न होगा लल्ली ! तुम हफ़्ते-हफ्ते भर सामने नहीं पड़ती। मेरा यहाँ रहना—न रहना बराबर है। तुम्हारे लिए मैं कर ही क्या पाया हूँ जो तुम मुझे लेकर इतनी चिन्ता करो। लोग आते जाते रहते हैं। यह जीवन है। तुम्हारे पड़ोस में दूसरा किरायेदार आ जायगा। कुछ दिन में उसके साथ घनिष्ठता हो जायगी। संसार का यही नियम है। कोई किसी को लेकर अधिक शोक नहीं मना सकता ! (पत्नी से) एक गिलास पानी पिलाओ। डाक देखने कालेज जाना पड़ा। कोई काम न था।

लपक कर शांति पानी लेने चली गयी। उषा ने कहा—आज कोई नयी बात हुई ? साहब ने कुछ कहा ? स्तीफा मंजूर कर लिया।

हाँ। मेरे ऊपर लड़कों और दूसरे प्रोफेसरों की ओर से बड़ा जोर पड़ रहा है मैं स्तीफा वापस ले लूँ। लेकिन मैंने रिहर्सल तो किया नहीं। बार-बार निर्णय बदलना मुझे पसंद नहीं। हिन्दी अंग्रेजी में लेख लिखूंगा—महीने भर में मैं इतना कमा लूँगा। प्रोफेसर न कहलाऊँगा—न सही। मन पर किसी का अधिकार न रहेगा। स्वतंत्र रहूँगा। दुनिया इसे मेरी मूर्खता कहेगी—हार कहेगी। मैं जानता हूँ यह मेरी विजय है। मेरे पौरुष की अजेय विजय है।

शांति ने पानी का गिलास लाकर दिया। विमल ने कहा—लल्ली ! फिक्र न करो। मैं कहीं न जाऊँगा। मैंने निश्चय किया है नौकरी करूँगा ही नहीं। पढ़-लिख कर जो कमा सकूंगा—कमाऊंगा।

उसी में संतोष मानूँगा। जीवित रहने का जितना अधिकार औरों को है—कोटि-कोटि औरों को है—उतना मुझे है—रहेगा। क्या अधिकार है मुझे अधिक आराम के साथ रहने का जब इतनी बड़ी संख्या में लोगों का अमानवीय शोषण चल रहा है। पैसा कम पड़ेगा—तुझसे ले लूंगा। सुना है, तेरे पास बहुत पैसा है। देगी जरूरत पड़ने पर ?

शांति चुपचाप निष्कंप, मूक और कातर खड़ी थी। अपने भीतर ही भीतर गूँज रही थी। एक रन्ध्र-हीन सुख से सुखी अपने अस्तित्त्व को भूली-भूली सी। जबसे उसने यह संवाद सुना है उसकी परेशानी का आर पार नहीं। भैया की फिजूलखर्ची वह जानती है। इतना कमाते रहने पर भी उन्हें अभाव बना रहता है। जब कोई नियमित आय न होगी तब क्या होगा। कैसे यह खर्चीली जिंदगी अचिन्तित चलेगी। पर इस समय भैया के किसलय से कोमल अन्तर के भीतर के अपरास्त आत्म-विश्वास को देख कर वह हल्की हो गयी। भैया के भीतर जो प्रज्ज्वलित असाधारण उर्ध्व है, उसे वह जानती है। उससे मन ही मन डरती रहती है। जिस समय वह मुखरित होता है उस समय कौन सी कुर्बानी है जो उसका मुँहबोला भाई नहीं कर सकता ? अमिट दर्प की ज्वाला में उसे जला कर जो सोने की तरह निखारता रहता है। यह बात नहीं कि उनके भीतर सुख भोग की लालसा न हो—सपनों का जीवित संसार न हो। वाणी में अरमानों की उद्‌गार-पूर्ण पुकारें न हों। पर यह जो मौत से भी एक बार जूझ जाने का अपराजेय अभिमान है—पीड़ाओं का अधजला सिलसिला जो है, यह उन्हें कितना कठोर और क्षमाहीन बना देता है। एक-एक श्वासान्दोलन उसके ताप से दग्ध होकर कभी-कभी अंगार बन जाता है। आज उसे लगता है भैया के अधिकाधिक निकट पहुँचना है। अन्तर में एक अपरिचित करुणा की धार बह रही है। उनकी सुविधा के पीछे-पीछे चलने वाली शांति आज भैया के युद्ध में सबसे आगे—

जीवन की प्रेरणा बन कर टकराना चाहती है। उत्प्रेरणा का मेघ बन कर जीवन में मँडराना चाहती है। अवसर पड़ेगा तो वह अपने को उत्सर्ग कर देगी।

अपने भाई-भाभी को कोई कष्ट या संकट न झेलने देगी। उसके हृदय में कोई जाग-जाग कर अँगड़ाई ले रहा था। उसकी छाती उसकी याद में कभी ऐसी प्रचंड उन्मुक्तता के साथ नहीं फूली। आज वह अपने में नहीं है। बोली—मेरे पास रुपया है तुमसे किसने कहा? भाभी ने कहा होगा। उन्हीं को ऐसी झूठ बातें करना आता है। पर पैसा आवेगा। तुम्हारे लिए उसे आना होगा। तुम जैसों के उपयोग के लिए संसार में उसका अस्तित्त्व है। जिस दिन तुम जैसों से विमुख हो जायगा उस दिन सृष्टि के प्रकाश का तोरण-सज्जित द्वार बन्द हो जायगा। सिन्धु के धारासार प्लावन की गति बड़े से बड़े पाषाण नहीं रोक सकते। बड़ी से बड़ी बाधा की जंजीर तुम्हारी रगड़ से छिन्न-भिन्न हो जायगी।

विमल की चिट्ठियाँ इकट्ठी हो गयी थीं। शांति 'पैड' कलम लेकर बैठ गयी। चिट्ठियों का उत्तर लिखते-लिखते दो घंटे बीत गये। उषा चाची के पास चली गयी। विमल ने देखा—शांति की सधी पीठ के पीछे जीवन का गति पूर्ण-प्रवाह है—ऊपर नीचे होते रहने वाला। स्पंदनशील हिल्लोलित स्वस्थ आरोह-अवरोह। विमल ने कहा—बंद कर दे अब! पूरा लेख लिखाना है। आज 'दिगन्त' वालों का पत्र आया है वार्षिकांक के लिए लेख चाहते हैं। तू थक गयी होगी। अब काम अधिक होगा। एक क्लर्क रख लूँगा। तुझे मेहनत पड़ जाती है। भाभी से कह दे—चाय तैयार करें।

मैं खुद बना लाती हूँ। भाभी को तकलीफ देना आजकल......।

तुम यहीं बैठो। खाली कह दो ऊपर से। तुम्हें न जाने दूँगा।

शांति नीचे जाकर भाभी को चाय बनाने को कह कर ऊपर आ गयी। कलम 'पैड' लेकर फिर बैठ गयी। विमल ने कहा—उस दिन के

बाद तुम आयी नहीं। लगता है मेरा व्यवहार तुम्हें खराब लगा। उस समय चाची का समाधान करने के लिये दूसरा रास्ता न था। मैं जानता हूँ तुम संसार में किसी स्त्री का अपमान नहीं कर सकतीं। चाची का अपमान तुम क्यों करने चली? तुममें वह क्षुद्रता नहीं जो किसी को दुख पहुँचाकर सुख पाये। दाह की कोयल कभी किसी को अपने से छोटा नहीं समझती। धूप की एक लहर में सूख जाने वाली शबनम किसी का जी छोटा नहीं कर सकती। पर मैं क्या करता? चाची की आदतों से तुम परिचित नहीं हो। इतने दिनों बाद जब वे ऐसी आसाधारण स्थिति में यहाँ आयी हैं तब उनका ख्याल रखना......। तुमने मुझसे क्यों क्षमा माँगी? मेरे निकट तुम कभी अपराध के साथ आवोगी? तुम्हें मैं निरपराध की आत्मा समझता हूँ। तुम्हारे भीतर एक अभिमान जो फूल रहा है।

शांति ने पूछा—आपसे चाची ने बताया जो मैंने उनसे कहा था? आपने सुना था? मैंने सचमुच कोई अशिष्ट बात न कही थी।

मैंने नहीं पूछा—मैंने समझ लिया, तुमने चाची के रूढ़ गर्व को चोट पहुँचायी है। मैं नहीं चाहता था कि वे किसी बात को लेकर तुमसे या मुझसे असंतुष्ट बनी रहें। कोई बात नहीं लल्ली! अपने से बड़ों के आगे झुकना आत्मा को प्राणवानता देता है। उससे कभी किसी की अवमानना नहीं हुआ करती। तुम आयी क्यों नहीं? तुम्हें कौन व्यथा थी जो मेरे पास आने से रुकती रहीं तुम। बोलो?

शांति क्या बोले? ऐसी स्थिति में कौन नारी बोलती है? एक खिन्न लज्जा उसके चेहरे पर झल झला रही थी। बोली—चाय ले आऊँ! वर्ना भाभी को चढ़ना उतरना पड़ेगा। कहती कहती नीचे दौड़ी।

चाय की केतली भर कर प्याले लिये जब शांति लौटी तब विमल आँखें मूँदे कुछ सोच रहा था। शांति ने देखा—व्यापक धैर्यवान संतोष भैया के मुख पर उभर आया है। साधारण स्त्री-पुरुष के मुख पर यह सबल शक्ति की विभा नहीं देख पड़ती। यह तो आत्मिक

परिपूर्ति और परिव्याप्ति की छाया है......। बोली—चाय आ गयी। खाली चाय भाभी ने बनायी। खाने को कुछ नहीं।

खाने का कौन समय है। तीन घंटे पहले खाना खाया है—कहते कहते विमल ने चाय का प्याला हाथ में ले लिया। टेबिल पर केतली रख कर शांति फिर आँचल के सिरे को बल देने लगी। चाय पीते-पीते एका-एक विमल की दृष्टि स्नेह-माधुरी-परिपूर्ण वात्सल्य से चमक उठी। लल्ली! कितना कष्ट—कितनी गहन व्यथा तू अकेले झेला करती है। क्यों मैं बाँट नहीं सकता। मैं चाहता हूँ तू मुझे भी उसमें भागी बना लिया कर। शारीरिक कष्ट कोई नहीं बँटा सकता। लेकिन मानसिक कष्ट और अवसाद, ऐसा मेरा विश्वास है, बाँटे जा सकते हैं। तुम यह सब अकेले पानी चाहती हो। इतना कटु प्रत्यय एकाकी झेलना चाहती हो। मुझे कितना पराया समझती है तुम! मैं तुम्हें इस विभागीकरण के लिए प्रशंसनीय न मानूँगा। तुम मेरे जितने निकट आकर इस अंशीकरण को दूर करोगी उतना मैं सुख पाऊँगा। अपनी सारी तकलीफें—मानसिक ग्रंथियों क्यों नहीं मुझे बता जातीं। क्यों अपने विश्वास के देश से मुझे निर्वासित किये रहती हो। हृदय का भीतरी स्वर था यह। कहीं बनावट और मिथ्या का नाम न था। भीतर का सारा सम्बंध जैसे आह्वान-आकुलित हो उठा। कानों में संगीत के तन्मय घनीभूत आत्मनिवेदन का अन्तर्दाह लिये यह आवाज शांति के कानों पड़ती जाती थी। भीतर-भीतर उसकी आत्मा निरावरण होने के लिये तड़फड़ा उठी। पर जो नारी की संस्कारशीलता हैं अपने को प्रकाशित न कर पाने का युग-युग-व्यापी अभिशाप है वह कहाँ अन्तर्वेदना की उलझी ग्रंथियाँ खोलने देता है। भैया को बिना उत्तर दिये उसका मन न माना। केतली से प्याली में चाय डालते डालते बोली—तुमसे क्या छिपा पायी हूँ। जो न कहना चाहिए था—जिसका लघुतम आभास भी मुझे न देना था वही कह डाला तब बाकी क्या बचा? तुम क्यों ऐसा समझे बैठे हो? जीवन में सुख पाने

की मेरी स्थिति नहीं। मैं तो कह सुन कर सुख का संधान करती फिरती हूँ। तुमसे अलग ले जाकर मन के भीतर यह धुँआती कसक कहाँ रक्खूँगी। बाहर की तरह मेरे भीतर की छाया भी साँवली है। तुम्हारे विराट रूप के सामने आते उसे सङ्कोच लगना स्वाभाविक है। तुम इसी तरह दुलराते रहोगे तो वह अपना टेढ़ा क्रम छोड़ तुम्हारे सहारे जीवित रहती आयगी। मन का स्तूप कभी का ढह गया। केवल मिट्टी के ढूह हैं जो दूसरों की दया के सहारे हैं। तुमने एक बार मेरी सुध न ली। मैं छोटी हूँ—नालायकी कर सकती हैं। तुमसे रूठ कर अलग रह सकती हूँ। तुम भी वैसे पेश आवोगे तो मेरा क्या होगा? मेरी आँख अपनी स्वाभाविक ज्योति खो बैठेगी। तुमने भाभी से एक बार मेरा नाम न लिया। कम से कम पूछ लेते। मैं उनसे सुन लेती—मुझे संतोष मिलता। तुम स्वयं इतने कठोर हो जाते हो। बेलौस और दूरस्थ कि मैं साहस नहीं कर पाती। उल्टे मेरी शिकायत करते हो—धन्य हो।

यह बात नहीं। मैंने कई बार सोचा—तेरे पास चलूँ या मुझे बुलवाऊँ। पर—न जाने कौन भीतर कह उठता था "तूने देवता का अर्ध्य ठुकराया है। तूने पूजा और पुजापे की तन्मयता को निंद्य माना है। तू वहाँ जाने का—उसकी निकटता का अधिकारी नहीं। तेरे नाम का सूत्र पकड़े वह दो क्षण पा कहीं विराम पा ले यह भी तुझे गवारा नहीं। तू अधम है।" इसी कुंठा में मैं इतना चाह कर भी तुम्हें अपने पास न बुला सका—न तुम्हारे पास आ सका। और कोई बात न थी। ठीक कहती हो···। तुम मुझसे अभिमान कर सकती हो पर मैं तुमसे विमुख होकर कैसे आँखों में उतरती अनुकंपित ममता को रोकूँगा? मेरे सामने दूसरी द्विधा थी। मेरे सामने अनाकांक्षित अभिमान की रुक्षता का पश्चाताप था। तुमने स्वयं आकर उसे दूर किया।......

शांति ने कहा—आपकी राय लेनी है। राय क्या आज्ञा देंगे

तभी वह काम होगा। मैं सोचती हूँ, किसी कन्या पाठशाला में नौकरी कर लूँ। दिन भर बैठे-बैठे खाली ठाले न जाने कहाँ कितनी दूर मन चला जाता है। काम में लगूंगी तो मन की चंचलता शान्त रहेगी। आप रायसाहब को जानते हैं ? अपने मुहल्ले में रहते हैं। उनके स्कूल में मुझे आसानी से नौकरी मिल सकती है। उनकी बड़ी लड़की मेरी सहेली है। कई बार मुझसे कह चुकी—कोई काम हो बताना। सोचती हूँ—कह दूँ। दूर जाना न पड़ेगा। परीक्षा पास न होने के कारण और कहीं मुझे नौकरी नहीं मिल सकती आप आज्ञा दें तो कर लूँ......

मेरी नौकरी छूटते ही तुम्हें नौकरी करने की क्यों सूझी ? कमा कर खिलाओगी ? इरादा बुरा नहीं। नौकरी से बढ़ कर जघन्य कर्म जीवन में नहीं लल्ली ! यह मेरा अनुभव है। मैं तुझे इस कुरूपता में पैर रखने की सलाह न दूँगा। जरूरत क्या है ? मुझसे कहना। फिर वही अलगाव ? कुछ बताती नहीं। मैं ऊब गया हूँ। पहेलियाँ बुझाती रहती है। खुल कर कहती क्यों नहीं ?

क्या बताऊँ ? कोई बात हो बताऊँ। काम चाहती थी। यही बात है वर्ना मुझे जरूरत क्या ? मेरा मन अब चंचल होता जा रहा है। न जाने कहाँ-कहाँ चक्कर काटता है ? जिधर नहीं जाने देना चाहती उधर जाता है। इसे समेट कर एक ओर लगाना चाहती हूँ। तुम्हारे पास रहते रहते मुझमें योग्यता की कमी नहीं रही। डिग्री न होने से क्या होता है। कहूँ एक दिन जाकर ? तुम कह दोगे तो करूँगी। तुम समझते हो तुम्हारी सहायता करने के लिये नौकरी कर रही हूँ। क्यों ऐसा सोच कर मेरी याचना और अकिंचनता को लज्जित करते हो।

तुमने भाभी से चर्चा की ? उन्होंने क्या कहा। अम्मा दादा ने...

अम्मा दादा कुछ न कहेंगे। तुम्हारी और भाभी की राय दो नहीं हुआ करती। तुम इसे ठीक बताओगे तो सभी लोग ठीक समझने

लगेंगे। हर्ज क्या है? नारी की आर्थिक मुखापेक्षिता दूर होनी चाहिए।

वैसा कोई सवाल नहीं। तुम्हारी आर्थिक निर्भरता से तुम्हारे विचारों की स्वाधीनता में विघ्न पड़ता है या तुम्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध चलना पड़ता हो तो बात दूसरी है। यहाँ ऐसी विवशता नहीं इसलिए आर्थिक दासता का दोष अप ने ऊपर लगाना बेमानी है। मैं तुम्हें यह सलाह न दूँगा। पढ़ो लिखो, लेख, कविता, कहानी, किताबें लिखो। नौकरी करने जाना आज के युग में जब हमने नारी को केवल अश्लील मज़ाक और गंदे इशारों की चीज समझ रक्खा है, मुझे उचित नहीं जँचता। पश्चिम की बात जाने दो। वहाँ नारी का सम्मान करना—अपने से अधिक पावन मानना लोग सीख गये हैं। दोनों के बीच आर्थिक प्रतियोगिता होते हुए भी प्रतिद्वंदी असम्मान और विद्रूप का भाव दोनों के बीच नहीं आया। यहाँ अभी नारी को देख पुरुष केवल भ्रष्टाचार की कल्पना कर सकता है। ऐसी दशा में कैसे तुम्हें यह राय दूँ? मैं प्रगति-विरोधी नहीं। तुम्हारे उच्च भावादर्श की मैं श्रद्धा करूँगा पर अव्यवहारिक है यहाँ। तुम लोगों को मौका नहीं पड़ता। मैं देखा करता हूँ—सुना करता हूँ। बड़ी से बड़ी चरित्रवती त्यागिनी, देश के लिये अपना तन, मन धन स्वतः उत्सर्ग करने वाली राष्ट्र सेविकाओं के लिए जो सारे संसार में आदर पाती हैं—हमारे यहाँ के उच्च शिक्षित युवक कैसी अकथ्य बातें करते हैं। उनका 'टोन' उस समय कितना गिर जाता है। हमारी प्रवृत्तियाँ परिमार्जित नहीं हुईं......

होगा। मुझे क्या करना है। लोग थोड़ा अपवाद करेंगे—गंदी चर्चा के बीच मुझे याद करेंगे।—यही न? क्या होता है—क्या मेरा बिगड़ता है। मुझे कोई काम करना चाहिए। एक काम में मन को एकाग्र कर दूँगी। बहुत सी छलनाएँ आप से आप नष्ट हो जायँगी। इस उड़ने वाले मन के लिये दूसरा बंधन मेरी समझ में नहीं आता। तभी मेरे मन को विश्राम मिलेगा। अपने को अपनी अनुवर्तिनी बना

सकूँगी। तुम विश्वास न करोगे। मैं अपने अनुशासन में नहीं रह पाती......

उषा ने ऊपर आकर कहा—कोई तुम्हें बुला रहा है। नीचे दरवाजे पर खड़ा है। विमल उठ कर बाहर चला गया। ऊषा ऊपर बैठ गयी। शांति ने कहा—मैं स्कूल में नौकरी करना चाहती हूँ। तुम कहो तो......

उषा ने कहा—भाई ने नौकरी छोड़ दी है। बहन नौकरी की तलाश न करेगी तो हिसाब कैसे पूरा होगा? एक काम करो लल्ली! तुम ज्यादा पढ़ी-लिखी हो, तुम्हें अध्यापिका का काम मिल जायगा। मुझे घंटा बजाने या लड़कियों को घर से बुलाने का काम दिला देना। तुम्हारी सिफारिश से काम चल जायगा। बोलो! मेरी सिफारिश करोगी? भैया से न कहना।

शांति ने स्थिर स्वर से कहा—तुम मज़ाक करती हो। इतने बड़े प्रोफेसर की पत्नी होकर स्कूल में नौकरानी का काम करोगी? क्यों मेरी दरिद्रता का मज़ाक उड़ाती हो। मैं इसलिये कहती हूँ कब तक दादा—अम्मा पर भार रक्खूँ। नौ साल से तो उनके माथे हूँ। मैंने ससुराल जाने से इंकार कर दिया। उन्हें मन ही मन मेरी बात नापसंद लगी होगी। मेरे मनोभावों का ख्याल कर कुछ कहते नहीं। मैं उनको अपने भार से मुक्त कर देना चाहती। तुम्हें क्या जरूरत है कि ऐसी छोटी बात कहती हो।......

तुम्हारे लिये छोटी नहीं मेरे लिये छोटी हो जायगी। तुम्हारी महिमा मुझसे कम है क्या? मैं तुम्हें नौकरी न करने दूँगी। तुम्हें क्या कमी है! मा-बाप, भाई सभी तुम्हारे हैं। कोई बात हो तो यह घर तुम्हारे लिये सदा खुला है......

जानती हूँ भाभी! इसका मुझे अभिमान है। पर देखूँ मैं किसी लायक हूँ या नहीं। भैया को मना लूँगी, तुम मान जाना।

मैं नहीं मान सकती। मंदिर की प्रतिमा नौकरी करने जायगी ? पूजा की आत्मा चाकरी करने जायगी ? न लल्ली। ऐसी बात न सोचना। मेरी लड़ाई होगी अगर तुम्हें उन्होंने रोका नहीं।

दोनों कुर्सी से उठ कर खड़ी हो गयीं। विमल के पीछे-पीछे एक नवयुवक ने कमरे में प्रवेश किया। साँवला रंग, स्वस्थ शरीर तारुण्य की दीप्ति से आकर्षक मुख! विमल ने कहा—तुम लोग बैठी रहो। ये मेरे विद्यार्थी कमलाकान्त हैं। मेरी पत्नी उषा है......मेरी बहन शांति है। नौकरी की तलाश कर रही है। मेरा खर्च आखिर कैसे चलेगा ? समझदार है न। उषा! चाय न पिलाओगी। बेचारा ऐसी धूप में आया है। न हो शर्बत पिलाओ।

चाय पिलाइये। शर्बत मैं बहुत कम पीता हूँ।

चाय पीते-पीते विमल ने कहा—तुम लोगों को उत्पात नहीं करना चाहिए। मुझे लेकर कालेज में कुछ हुआ तो मैं तुम लोगों से कभी बात न करूँगा। इसके क्या मायने ? तुम लोग 'स्ट्राइक' करो—क्लास में न जाओ अगर एक प्रोफेसर नौकरी छोड़ दे। सब को समझा दो। यह सब मैं न होने दूँगा।

मेरे समझाने से क्या होता है। 'यूनियन' ने सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास किया है। तीन दिन के अन्दर प्रिंसिपल आपका स्तीफा नहीं वापस कर देता तो हड़ताल हो जायगी। हम लोग नहीं दब सकते।

तुम्हारे दबने उभरने का प्रश्न नहीं। मेरा मामला व्यक्तिगत है मुझे नौकरी की कमी नहीं। यहाँ न सही, कहीं और सही। घर में बैठ कर पोथी लिखूँगा। मेरा क्या बिगड़ा है, क्यों लल्ली।

शांति अब भी सोचती हुई, कुर्सी के पीछे खड़ी आगन्तुक की ओर ध्यान से देख रही थी। भैया का संबोधन सुन कर अप्रतिभ सी हो उन्हें देखने लगी। उसे ख्याल आया, भाभी कमरे में नहीं हैं। नीचे चाय बनाने गयी हैं। "अरे! मैं यहीं बैठी हूँ। भाभी चाय बना रही हैं।" कहती दौड़ती हुई जीने की ओर लपकी। उषा ने पानी चढ़ा

दिया था। बोली—क्यों यहाँ आ गयी। बना कर ला रही थी। इनको कैसी जल्दी मचती है। होटल तो है नहीं। घर में चाय बनते देर लगती है।

नहीं भाभी! भैया ने नहीं भेजा। मैं खुद चली आयी। बाहरी आदमी के सामने कब तक बैठी रहूँ? भैया न जाने मुझे क्या समझते हैं? हर बात में मेरी राय। क्या बताऊँ मैं। तुम जो ठीक समझोगे करोगे...।

उषा ने स्नेह कातर दृष्टि से देख कर कहा—बाहरी आदमी काहे को है? तुम्हारे भैया का विद्यार्थी है। उसके सामने संकोच क्यों? आ गयी हो तो भीतर से नमकीन निकाल लाओ। खली चाय क्या ले जाओगी। जाकर दे आओ—मुझे कहाँ दौड़ाओगी?

शांति सामान ठीक करने लगी। चाय का सामान लेकर जब ऊपर अर्ध-संकुचित अर्ध-प्रस्फुटित सी, पहुँची तब वहाँ विमल और आगन्तुक गंभीर मुद्रा में बैठे थे। वातावरण बिन बरसे बादलों की घटा से बोझिल सा था। आगन्तुक की आँखों में उदासी—चेहरे पर स्याही छलक रही थी। शांति ने 'ट्रे' सामने रख दी। विमल ने चाय बनाते हुए कहा—कमला! शांति को तुमने पहले न देखा होगा। नियमित रूप से स्कूल में शिक्षा न पाने वाली यह लड़की कहाँ से इतना जान गयी। लल्ली! तुम्हारी भाभी क्यों नहीं आयी। तुमने काम न करने देकर उसकी आदत बिगाड़ दी है। इतनी आरामतलबी लेकर जीवन में रहा नहीं जा सकता। मुझे नापसन्द है यह।

वे आ रही थीं। मैंने मना कर दिया। कोई काम कराना हो, मुझे बताइये। आपको क्या मतलब मैंने किया या उन्होंने—कहती-कहती शान्ति मुदित हो भीतर भीतर गड़ गयी। विमल की तारीफ से मुँह लज्जारुण हो आया था। झुकी पलकें और नीचे झुकी जा रही थीं। मन की मुस्कराहट आँखों में—होंठों पर फूटती आती थी। विमल ने चाय बना कर कमला को देते हुए कहा—इसकी नम्रता पर न जाना

तुम। ज्ञान और चिन्तन की खान है। कभी-कभी मुझसे ऐसे सवाल कर देती है कि मैं सोचता रह जाता हूँ। आँखों की नींद सपना बन जाती है—पूरी फिलासफर है।

कमलाकान्त चुपचाप नमकीन ले लेकर खाने और चाय पीने लगा। उसकी चेतना के सूक्ष्म तार एक अत्यन्त कोमल आघात पाकर आप से आप झंकृत हो उठे थे। वह एम० ए० का छात्र था। फिलासफी जैसा कठिन विषय लेकर वह कालेज की सबसे ऊँची कक्षा में पढ़ रहा था। एक बार अपने स्कालर प्रोफेसर द्वारा प्रशंसित इस अजनबी, देहात के कच्चे घर सी सीधी सादी युवती से बात करने उसकी जानकारी की जाँच करने की प्रबल इच्छा उसके भीतर जाग्रत हुई। विमल पर गहरी श्रद्धा रखता था। चुपचाप बिना बोले चाय पीता रहा। विमल ने कहा—मेरा लेख टाइप करके कल ले आओ। कहीं भेज दूँ। अभी तक शौक था—अब यही आय का साधन बनेगा। हिन्दी का सारा काम यह सँभाल लेगी। अंग्रेजी का टाइप वर्क तुम कर देना। मेरे अधिकांश लेख लल्ली लिखती है। मैं आराम कुर्सी पर पड़ा बोलता रहता हूँ। कुछ दिन में यह भी लिखने लगेगी। मैंने कई बार कहा—पहले कुछ बाल—विनोद और महिला—मनोरंजन लिखा कर पर सुनती नहीं। मालूम पड़ता है किसी गंभीर विषय से आरम्भ करेगी।.........

शांति ने अपनी चंचल प्रसन्नता में जलन अनुभव की। लज्जा और झिझक को एक ओर रख कर अकुंठित कंठ से बोली—आप मेरी तारीफ का पुल बाँधा करते हैं। आप नहीं जानते या जान कर भूल जाते हैं। मेरी प्रशंसा कर आप प्रकारान्तर से अपनी ही प्रशंसा करते हैं। मैं जो कुछ हूँ, आपकी सिखायी—बनायी हूँ। मगर मैं हूँ क्या? इतना जरूर है आपके साथ उठते-बैठते सीख जाऊँगी। मैं जाती हूँ।

बैठो कुर्सी पर! मेहमान के सामने इस प्रकार जाना अशिष्टता है। अपनी भाभी की आदत सीख रही हो।

शांति चुपचाप खड़ी रही। विमल ने सामने की कुर्सी की ओर इशारा किया। बोला—बैठ जा। मेरा कहना मान ले। क्या जल्दी है।

चाची का डर लगता है—शांति ने हँस कर कहा—वे नाराज़ न हो जायँ।

विमल जोर से हँस पड़ा। नहीं लल्ली! वे अब नाराज न होंगी। उस दिन तुम्हारी क्षमा...प्रार्थना ने उन्हें जरूरत से ज्यादा प्रसन्न कर दिया है। बैठ जाओ। क्यों खड़ी हो?

शांति विमल के कंठ स्वर से जान जाती है कब कौन सी बात उसे तत्क्षण मान लेनी है। वहीं तक वह इन्कार करती है जहाँ तक विमल के स्वर में भिंदी तीव्रता समझ नहीं पाती। इसके बाद उसका न मानना उसके लिये नामुमकिन है। चुपचाप कुर्सी पर बैठ कर पास टेबिल पर पड़ी अंग्रेजी की पत्रिका की तस्वीरें देखने लगी। उसके मन में न जाने कौन सी तस्वीर बनती आ रही थी। तपती हुई रेत में भी कभी न बुझने वाली प्यास की आकांक्षा जगमगा आती है। पर अपने मन की दशा को छिपाये रखने के लिये आवश्यकता से अधिक आत्म-शक्ति और मनोबल उसके पास था। न जाने ऐसी कितनी आहुतियाँ वह मन की आग में पड़ती अब तक देख चुकी थी। आँखों में एक सूनी रूखी निरानन्द भाव-प्रवणता है जिससे अधिक संसार की किसी भाषा का कोई शब्द उसके मन की दशा को प्रकट नहीं कर सकता। कमलाकान्त ने थोड़ी ही देर में उसकी वेश-भूषा से जान लिया कि वह विधवा है। हाथ में चूड़ी नहीं—माँग में सिन्दूर की मोदमयी ईंगुरी रेखा नहीं। व्यक्तित्व में वह सब नहीं जो नसों में खून बन कर मचलता है। आँखों में मस्ती बन कर भर जाता है। होठों में सिहरनकारी मुस्कराहट बन कर दौड़ जाता है। जो बिजली सा कौंध कर नारी की गंभीरता का खोल तोड़ कर चूर-चूर कर देता है।......

विमल ने आगन्तुक से कहा—यही मेरा आदेश है। तुम लोग क्लास में जाओ—किसी प्रकार का कोई प्रदर्शन न करो। मैं कालेज

से अलग हो गया इसका अर्थ यह नहीं मैं तुम लोगों से छूट गया। मेरा घर तुम्हारे लिये खुला रहेगा। जब जिस प्रकार की सहायता मैं कर सकूँगा सहर्ष करूँगा। यह सब न होना चाहिए। मैं 'ईशू' नहीं पैदा करना चाहता। स्तीफा मैंने वापस लेने के लिये नहीं दिया है। नौकरी से मेरे काम में विघ्न पड़ता है। मेरा किताबें लिखने का इरादा है। यूनियन पर तुम्हारा प्रभाव है। तुम मेरी ओर से सबको बता दो। किसी प्रकार मैं कालेज की बदनामी नहीं चाहता। कालेज से अलग हो जाने पर भी जो हूँ बना रहूँगा। मेरा कोई काम न रुकेगा। तुम लोगों की सम्वेदना का मैं आजीवन आभारी रहूँगा। बात बात पर अनावश्यक प्रदर्शन मुझे पसंद नहीं।

कमलाकान्त ने कुछ उग्र स्वर से कहा—आपकी सरासर ज्यादती है। एक ओर उठते बैठते अपने अधिकारों के लिये लड़ते रहने की दीक्षा देते हैं—कभी अन्याय के सामने न झुकने का निर्भीक प्रेरक संदेश सुनाते हैं—दूसरी ओर इतने बड़े अन्याय को आँख मूँद कर निगल जाने का उपदेश देते हैं। प्रिंसिपल ने अपने को क्या समझा है। हमारे देश में रह कर हमारे पैसे से पल कर वह कैसे हमारी भावनाओं का आदर करना न सीखेगा। हम गुलाम हैं—इसके ये मायने नहीं कि हमारे भीतर का विवेक ठंडा पड़ गया है। इसे जलने दीजिये गुरुदेव! अधिकाधिक इसे फूँकिए! हम जानते हैं आप निरपराध हैं। केवल अपनी साहबियत के अभिमान में उसने आपका यह अपमान किया है। हम उनके होश ठीक कर देंगे। उन्हें कालेज छोड़ कर भागना पड़ेगा या कालेज की ईंट से ईंट बज जायेगी। अभी हमारे संगठन और जाग्रति का उन्हें पता नहीं। पता लगते ही अपनी गल्ती पकड़ लेंगे।

छोटी बात को लेकर अपनी शक्ति का अपव्यय न करो। सिद्धान्त के आगे व्यक्ति का मूल्य नहीं। यह तुम्हारा लक्ष्य नहीं तुम्हारी दिशा नहीं। तुम्हारी आवाज समुद्र का सीना चीर कर निकले। मामूली स्रोतों से उसका कोई संबंध न रहना चाहिए। अवसर आने पर मैं

आकर तुम्हारा नेतृत्व करूँगा। समय आने दो। अकारण संघर्ष कभी फलीभूत नहीं होता। संगठन की जमी हुई शक्ति को नष्ट-भ्रष्ट करता है। समाज की अनहोनी कठिन क्षमताओं को छिन्न-भिन्न करता है, वह ! अब जाओ। सबको समझा बुझा दो। जब तुम्हारी इच्छा हो चले आया करना।

कमलाकान्त उठ कर खड़ा हो गया। दरवाजे तक उसे पहुँचा कर विमल ने कमरे में आ देखा—शांति वैसी ही संदिग्ध बैठी है। उसके भीतर की नारी रोमांचकारी नवीनता से घिरी थी—जैसे दिवा को धोकर—निदाघ के को परिवेष्टित कर रात आ जाती है। ऊपर से देख कर उसके भीतर की हलचल का पता पाना नामुमकिन है। पहाड़ की चट्टानी कठोरता के भीतर छिपे सनोवरों के जंगल की तारों भरी छाँह का अंदाज लगाना सरल नहीं। विमल ने कहा—चला गया। जो मैं कभी नहीं चाहता वही मनवाने आया था। मेरी राह अलग है। मैं के आन्दोलनों में अपने को बाँध नहीं सकता। प्रसिद्धता प्राप्त करने के लिए मैंने स्तीफा नहीं दिया। तुम कमला से बोली नहीं ? कोई अपने घर आवे तो उससे बातचीत की जाती है। ऊषा नीचे जाकर बैठ गयी। सोचता होगा, ये लोग आदमी को देख कर दूर भागते हैं। ऐसी गंभीर बन गयी जैसे सुबह से सूरज नहीं निकला। बाह री लड़की।

शांति ने अनुनय भरे स्वर में कहा—भाभी आराम करेंगी पड़ कर या इस तरह तुम्हारे मित्रों के पास बैठेंगी। उन्हें बाहरी आदमी के सामने निकलते संकोच होता है। मैं बोलती तो क्या बोलती। वे आपके पास आए थे। मैं बीच में टाँग क्यों अड़ाती ? तुमसे मैं चाहे, जितना बोल लूँ पर सबके सामने न बोला जायगा। तुम चाहे जितनी तारीफ़ करो मेरी। प्राण का तूफान हुक्म पर नहीं चलता। जीवन का प्राचुर्य उठते बैठते नहीं उमड़ता।

तुम्हारी बातें मेरी समझ में कम आती हैं। डर लगता है किसी बात से बुरा मान जाओगी तो फिर सप्ताह—दो सप्ताह के लिए फ़ुर्सत।

न नाराज होते देर लगती है न प्रसन्न होते। वासंती वायु सी अपने ही उच्छ्वास से कभी मर्मरित हो उठती हो। कभी बड़े से बड़े आग्रह पर भी कुछ न कहतीं।

शांति ने संयत हो कहा—मैं जानबूझ कर ऐसा नहीं करती—तुम विश्वास करो। अभी अपने ऊपर वह अधिकार नहीं जो जीवन की गति को—हृदय के आवेग को तुम्हारे जैसा वैज्ञानिक अनुशीलन दे सकूँ। जाने दो! जो है वह बदल नहीं सकता। बाहरी आदमी के सामने—भले वह तुम्हारा विद्यार्थी हो एक विधवा को इस प्रकार प्रगल्भ होना शोभा नहीं देता। मैंने ठीक किया जो बात नहीं की.........

विमल की पीठ पर चाबुक-सा पड़ा। उसके उल्लास का दिवा-लोक प्रगाढ़ कालिमा की छाया के अंधकार से घिर गया। जिस आघातकारी शक्ति को वह भूलना चाहता था...भूल भी जाता उसी की याद आ गयी। दूसरी ओर उसके भीतर वेदना और विद्रोह का मिश्रित अहं जाग उठा। वेदना अपनी पूरी पैनी धार पर चढ़ कर विद्रोह बन जाती है। रौंदा किन्तु सिर उठाता अरमान—कुचला किन्तु दब-दब कर बढ़ता हुआ प्रतियोगी अनात्म आकर्षण—मिटा किन्तु मिट-मिट कर बनता हुआ जाग्रत अन्तर्दाद सम्मिलित जीवनभूमि पर आकर विद्रोह कहलाता है।

विमल ने तेजी से कहा—यह मैं दूर करना चाहता हूँ। जिस चीज को मैं तुम्हारे अंतर से उखाड़ कर फेंकना चाहता हूँ उसी को तुम महत्व देती हो। विधवा...विधवा...विधवा कहते कहते क्रोधित उत्तेजना में विमल कुर्सी से उठ कर खड़ा हो गया...तुम्हारे जीवन की बुनियादें वोदी हो गयी हैं। तुम्हारा अहसास कुरूप मौत से मरा जा रहा है...किसी से बात करने में तुम्हें मनाही है! लात मार कर गिरा दो टैबू' के घरौंदे को...झूठी मर्यादा और दुराव की भित्ति को...दूसरा घरौंदा बनाओ। जिसमें दैन्य इतनी कंगाली—इतनी मजबूरी...कुत्सित एकाकीपन न हो। क्यों तुम किसी से दूर भागो...क्यों तुम अपने को

मार-मार कर कल्पित दूरी पर रखती हो। तुम्हें क्या भय ! कोई तुम्हारा मूल्य न आँक ले ? कहीं यह स्वस्थ, सुखद संतुष्ट जीवन-क्रम तुम्हारे लिये अभिशाप न बन जाय। यह शैतान का विधान है—देवता का नहीं। यह जीवन के शिव के विधान से बड़ा नहीं हो सकता। क्यों स्याही की छींटें गहरी करती हो। जिसे जीवन भर जोड़-जोड़ कर इकट्ठा किया क्या वह क्षण भर में विषैला हो जायगा। और यदि यह विषैला है तो अमृत क्या है ?—कैसा है ? तिहाई जिन्दगी तुमने जान कर भी अनजानी कर दी। अब होश में आओ—जिधर मैं ले चलूँ चलो। मेरे पीछे चलोगी या शैतान के पंजे में फँस कर आजीवन पिंजरबद्ध पक्षी की तरह फड़फड़ाया करोगी ? जीवन क्या एकाकी हिंसक जाल से अधिक तुम्हारे निकट महत्व नहीं रखता—कहते कहते विमल के आरक्त मुख की निद्रा कठोर हो गयी। हाथ की मुठ्ठियाँ बँध गयीं।

शांति का सारा शरीर झनझना उठा। कैसी शंका है यह जो निर्मूल करने पर भी निर्मूल नहीं होती। हर समय ठीक सामने आ खड़ी हो जाती है। हतबुद्धि हतज्ञान हो वह उसे बेमानी बना देना चाहती है। विधाता उसे कैसे बेमानी बनावे ? कैसी विस्फारित मानसिक प्रतिक्रिया है। उन्निद्र रोग का रोगी जब रात भर जागता रह जाता है—चेष्टा करने पर भी सो नहीं पाता तब ज्यों-ज्यों रात ढलती है त्यों-त्यों उसका दिल डूबने उतराने लगता है। शांति की दशा भैया की इस चुनौती—इस ललकार के सम्मुख वैसी हो जाती है। कैसे गहन अन्धकार से आच्छादित है इस ग्रह की क्रूर दृष्टि जो उसकी आशाओं पर तुषारापात करके भी चैन नहीं लेने देता। क्या पूरी जिन्दगी बेकरारी और निष्फल प्रतिरोध में बीत जायेगी ? प्राण खिंचने लगते हैं...आँखें फूटने लगती हैं...कान फटने लगते हैं। सुना करती थी... पढ़ा करती थी...हृदय में तूफान आते हैं—प्राण में बवंडर उठते हैं...। आज उससे अधिक कौन उसकी गति जानता है। बोली—नहीं ! नहीं !! मैं यह सब नहीं कर सकती। जहाँ हूँ—वहीं रहने दो।

संघर्ष की असहनीय यातना मुझे न दो। अधडूबे शराबी की सी दुर्गत मेरी न करो। मैं अब जिस योग्य नहीं उधर मुझे न खींचो। क्या करूँ अपने बुझे मन को! कैसे इसमें ज्योति जगे? प्रति निमेष में घटती बढ़ती रहनेवाली यह अस्थिर और चंचल विद्युत शिखा मेरे भीतर न फूँको! मैं जल कर क्षार हो जाऊँगी। मेरी राख भी न शेष बचेगी।...काली राख भी न मिलेगी।

यह दुनिया से दूर-दूर भागने की पलायन-वृत्ति, यह आत्मसंगोपन की अस्वाभाविक चेष्टा—यह आत्म-अस्वीकरण का झूठा आदर्श तुम्हें कहाँ ले जायगा—कभी सोचा है? अविरल नयी सृष्टि, कोलाहलापूर्ण संसार नाना गंधों से पूर्ण वायु और जीवन से पूर्ण रूप से दूर भागते रहने का अर्थ है आपसे दूर भागना। विश्व की एकरस अभिन्नता और प्राणता से विलग रहना। ये नाना वेशधारी मानव-मूर्तियाँ क्या तुम्हारी नहीं हैं? तुम्हें इनके साथ जीवनव्यापी मोह की अनुभूति नहीं होतीं? इनके प्रति अवहेलना और विरक्ति में तुम्हें क्या आनन्द मिलता है? यह आनन्द नहीं, आनन्द का विकृताभास है। मैं नहीं कहता—तुम जवानी की रंगीनियों में बह चलो—यौवन की उद्याम तरंगों में उतराओ। पर प्राणी मात्र के प्रति अगाध ममता का—अपनत्व का बोध तुम्हें होना चाहिए। इतनी पूजा और ईश भक्ति करके तुम क्यों मानसिक संताप झेलती हो। विश्व-देवता की आनन्दघन ज्योति के गीत गाओ। कर्म-समुद्र में कूद कर सृष्टि की सेवा करो। सारा ताप, जलन, असौख्य भूल जाओगी। तुम मानव के प्रति ऐसी अवज्ञा और दूरत्व का भाव अपने मन में रक्खोगी तो कैसे जीवन की सार्थकता उपलब्ध करोगी—कहते कहते विमल असाधारण रूप से उत्साहित हो गया।

इस सब का अंत कहाँ होगा। कब तक मैं करणीय अकरणीय की विभाजन-रेखा देख पाऊँगी। संसार के प्रति यह माया-ममता कब तक कर्त्तव्य पथ पर चलेगी। ननुष्य का मन कमजोरियों का आगार

होता है। नारी-जीवन असंगतियों का घर होता है। एक बार-पैर फिसलते ही क्या इस प्रचंड प्रवाह में रुकूँगी? वह भी न पाऊँगी। डूबती सड़ती उतराया करूँगी। तब मुझे कौन उबारेगा? तुम उबारने आओगे? मेरी गोहार पर दौड़ोगे?

तुम्हें किसी के सहारे की आवश्यकता न पड़ेगी। खुद दूसरों को सहारा दोगी। तुम्हें देख कर असंख्य मिट्टी के कोरे दीपकों में ज्योति जलेगी। केवल अपने को पहचानो। अपने भीतर संचित जीवन के बल का आह्वान करो। मेरी क्या बिसात है। मैं तुम्हें क्या उबारूँगा? मैं खुद अपूर्णताओं का विरोधाभास हूँ। इतना जानता हूँ जीवन-जगत से दूर-दूर भागते रहने की—रेशम के कीड़े की तरह अपने कोये में बन्द रहने की—बाहर न झाँकने की प्रवृत्ति पाप है। इसके विपरीत सबके साथ अपने को खपा कर सब में घुल मिल जाने की—विश्व की गति के साथ जीवन की अप्रतिरोध्य प्रवाह के साथ तल्लीन हो जाने की आकांक्षा शिव है। अपने साथ वह औरों को उठाती है। तुम्हारा खुद उठते जाना—औरों को अगति के पंक में बिलबिलाने के लिये छोड़ कर वैयक्तिक मुक्ति की कामना करना स्वार्थ है। बंधनों में लिपटी मुक्ति जीवन का साध्य होनी चाहिए। मंदिर के एकाकी कक्ष में जलने वाला दीप सीमित क्षेत्र में प्रकाश करता है। राजपथ पर जलनेवाली लालटैन अगणित राहगीरों को गिरने, पथ भूलने से बचाती है। यह सच्चा ज्ञान है—वह समाजवादी आलोक है जिसकी व्यापक प्रेरणा आज देश-देश, घर-घर को प्रकाशित कर रही है। दुनिया पीड़ित आहत और शोषितों के क्रंदन से काँप रही है। लोग जिधर रहे हैं—युग जिधर जा रहा है, तुम उस दिशा से उलटी जाती हो! क्यों जीवन मृत्यु के मध्य पंगु पड़ी हो? मानवीय करुणा कोमलता की उमंगों से परिपूर्ण बनो......

"मैं कुछ न बन सकूँगी। जैसी हूँ वैसी चली जाऊँ, बस! मुझमें अब कौन शक्ति है? कैसे दूसरों के काम आ सकती हूँ? मैं हतबुद्धि

हूँ। निश्चल शुद्ध सेवा की साधना मुझमें नहीं रही। किसी प्रकार अपनी अशांत बुद्धि को शान्ति दिया करती हूँ। यह भी न रहेगा तो पागल पराश्रित हो जाऊँगी।'

प्रवृत्ति में शान्ति मिलती है। उससे इतर जो शान्ति मिले है वह मरघट की शान्ति होती है—कर्म-भूमि में अपना कर्त्तव्य पालन कर रात को स्वार्जित विश्राम के भीतर से छन कर आने वाली वास्तविक शान्ति नहीं। पहले अपने को इतना व्यय करो—इतना थका लो—कर्म का पालन करते कि तुम्हें विश्राम का वास्तविक रस मिल सके। जो दिन-रात निष्क्रिय निश्चेष्ट पड़ा रहता है—शारीरिक मानसिक रूप से—उसे शान्ति और सुख की सच्ची परिपूर्ति कहाँ? यही मैं कहता हूँ। तुम जो चाहती हो वह शान्ति नहीं क्षय है। इस क्षयी परमुखोपेक्षिता को छोड़ो और कर्मवाद की शरण लो। यह जड़ता जो आज लुभावनी लगती है एक दिन पैशाचिक रूप ले लेगी। तब? तब क्या होगा। चारों ओर विकट अंधकार! केवल रौरवता के स्वर जाग्रत रहेंगे......पर तब तुम्हारी जीवन की पकड़ क्या इतनी गहरी रह पावेगी। अभी अवसर है! इस सड़ान से अपने को निकालो।

मैं कौन होती हूँ अपने को डालने वाली—कौन होती हूँ अपने को निकालनेवाली? जिन्होंने इस दुख-कुंड में डाल रक्खा है—वे निकालेंगे तब निकलूँगी। इसमें गिरते समय रोई नहीं—चीखी नहीं। शरीर कम्पायमान नहीं हुआ......। प्राणहीन हो लुढ़की नहीं। आज उस खड्ड से निकलने में इतनी वेदना क्यों होती है। लगता है, विराट बिस्फोटक आकाश-पिंड मेरे ऊपर आ गिरेगा।—कहते-कहते गहरी व्यथा से शांति पीली पड़ गयी। विमल ने देखा एक कँप-कँपी—न दिखाई देनेवाली न सुनायी देनेवाली उसके शरीर पर रह-रह कर दौड़ जाती है......दौड़ती जाती है...द्रुत गति से भागी जा रही है।

उस समय तुम्हें ज्ञान न था। तुम केवल सहना जानती थीं। अति भीरु और कृतज्ञ भाव से। तुम पर जो पड़ा तुमने देवता का

विधान समझ स्वीकार किया। आज तुम्हारा विवेक पुष्ट हो आया है। तुमने पहले जो समझा था वह अनुमान की वस्तु थी। आज तुम्हारे सामने तुम्हारी वेदना के शोधक अनुभव का प्रत्यक्ष प्रमाण है। जो उस दिन संदिग्ध था वह आज ध्रुव निश्चित हो गया है। नारी में सृजन की आदि शक्ति होती है वह समय के प्रवाह के साथ-साथ आन्तरिक आकर्षण से पूर्ण होती गयी। यह पूर्ण बनने का क्रम है। यह अभिनंदन की वस्तु है—आशंका-अपवाद की नहीं। छोड़ने में तो कष्ट होगा ही। सदियों पुराने रूढ़ संस्कारों की जन-जागृति-शोषक जड़ता आसानी से छूटती है ? हमारे यहाँ मृत्यु के पश्चात् भी बंधनों की दारुण विभीषिका चलती है। इससे निकास की कल्पना तक असंभव मानी गयी है। तुम जैसी साध्वी गतानुगति की उपासिकाएं अपनी दृष्टि में चाहे जितनी पूज्य हो जायँ, हैं वे पराजित और दासत्व-पूर्ण ही। पराजित और दास कभी सच्चे अर्थ में श्रद्धेय नहीं होते। अधिकार—मानवता की गति के साथ अविच्छिन्न बँधे रहने का अधिकार और सामर्थ्य—यही जीवन की सार्थकता है—मानवता की गति को अपनी सहनशीलता द्वारा अजेय रखना है। जीवन भर पराभव की रोमांचकारी भीति से आशंकित रहते हुए जीवित रहना—यह भी कोई अस्तित्व है। यह जीवन की कुरूपता का धड़कता व्यंगचित्र है—जीवन नहीं।

मुझे ऐसी बातों से डर लगता है। सामने ज्ञात अज्ञात कर्मों के फल की विडम्बना और विभीषिका छा जाती है। मेरे जीवन में कर्म करने का अवसर चला गया। मुझे अब पग-पग पर औरों का मुँह जोहना है। मेरे भीतर उमंगों की नवलतम सर्जना है जो फलों की जननी बनना जानती है। मेरा आकुल निराश हृदय किसी छिपी सजीवता का आश्रय ढूँढ़ता है जिसमें मैं अपने को अपनी नारी को जीवित पाऊँ। मैं जड़ निर्जीव हूँ। जो चाहती हूँ...पाती नहीं...पा नहीं सकती। नग्न ऊपर जैसी घनों की भिखारिन बनी मैं अपने साथ स्पर्धा

अवज्ञा कर अज्ञात अविजानित के साथ आत्मीयता स्थापित करना चाहती हूँ। पर पाती क्या हूँ ?...कुछ नहीं...कुछ भी नहीं। लेकिन मैं विवश हूँ ! मेरे भीतर वह बल नहीं। दिल, दिमाग, शरीर तीनों तीन अलग-अलग रास्ते जाते हैं। अपने जन्म के लिये दंडित होते मनुष्य को सुना था पर अपने समर्पण के लिए......आत्मदान के लिए यह तीव्र यातना नारी ही भोग सकती है......मुझसी पापिनी हतभागिनी विषाक्त कर्मोंभरी नारी......।

तुम सब कर सकती हो—तुम सब करोगी मेरी क्षुब्ध आत्मा को शान्ति दोगी......वही शान्ति जो तुम्हारे नाम में है......जो तुम अपने लिये चाहती हो। तुमने मेरी बात न मानी तो मैं सुखी न हो पाऊँगा। तुम देखती हो बाह्य दृष्टि से सुखी बनानेवाले साधन मेरे पास हैं। लेकिन मेरी आत्मा में दरार पड़ गयी है......मेरे हृदय में भ्रंश हो गया है। उसे दूर करना तुम्हारे हाथ है। मैं चाहता हूँ तुम विवाह करो—अपने को सार्थवती करो। मैं शपथ खाकर कहता हूँ......तुम्हारी असाधारण क्षमता की शपथ ! तुम्हारी वेदनाहत अन्त-लक्ष्मी की सौगंध !! तुम जीवन-सृजन का अनुवर्तन करो। मृत्यु और नाश का नहीं। नारी का माता बनने का अधिकार छीननेवाला किस शास्त्र साधना की दुहाई देगा ? सृष्टि की अखंड, काल स्थान से परे जलने वाली आलोकवर्ती परंपरा से इंकार करेगा वह ! यह शिथिलता और आत्ममरण मुझे दुःसह हो उठा है.......सात वर्ष से बराबर तुम्हारा आत्म-संतप्त रूप देखता आ रहा हूँ। अब देखा नहीं जाता। इतना अव्यवस्थित, उत्साहहीन अनुतप्त मैं कभी न था। चाहो मुझे सुखी बनाओ—चाहो मुझे यह शोषकशाकिनी वेदना भोगने दो। तुम्हें फैसला करना है......जल्द फैसला करना है।

मुझे कुछ नहीं करना है। तुम्हारे सहारे इस अथाह समुद्र में बहना है—बहते जाना है। तुमसे सांतवना की आशा थी। तुम उल्टे सोई आग भड़काते हो। मेरे जलते विवेक को ठंडा कर देना चाहते

हो। कैसा अन्तर्विरोध है यह ! मैं कौन-सा स्थान, नयी दुनिया अपने लिये बसा लूँ ? मृत्यु का भय मुझे बिल्कुल नहीं रहा। कभी-कभी सोचती हूँ, उसी से त्राण होगा। मेरा जीवन ही जब नहीं तब उसका अंत क्या होगा ? अनन्त वायुमंडल में दो फूँक प्राणवायु और सिहर कर मिल जायेगी। बस न ! अब जीवित रहने में भय मालूम होता है। कौन सी इच्छा पूरी होगी जीवित रहने की योजना बनाऊँ ? चलूँगी अब। कल आऊँगी।

मृत्यु के प्रति यह रहस्यपूर्ण आकर्षण फैशनेबुल वेदनावादियों को शोभा देता है। तुम्हारे जैसी कर्मशिखा की धौंकनी को नहीं। ये बातें सोचने कहने में पाप लगाती हैं। जीवन के लिये युद्ध करो। पराभूत जैसी बात कर तुम सृष्टि के अबाधक्रम को लज्जित करती हो। बिना विरोध किये मृत्यु के उपयोग में आना पशुत्त्व से छोटी हीनता नहीं। अपने को छलने का घणित रूप है। तुम जीवित रहोगी...... केवल जीवित रहोगी। हारोगी नहीं—झुकोगी नहीं......मरण के मुँह पर ठोकर देती हुई नित नए सृजन की ज्वाला-सी ऊर्ध्वमुखी उठोगी...

छः

कालेज में कमलाकान्त विमल के प्रिय छात्रों में था। उसकी योग्यता, मेधा विनम्र श्रद्धा पर विमल मन ही मन मुग्ध था। ऊपर से उसका व्यवहार अपने छात्रों पर स्नेहमय होते हुए भी एक गम्भीर दूरी बनाये रखने का था। उसकी हार्दिकता मौन रहती थी—उसकी करुणा विस्तारमयी होते हुए भी अपनी अद्रावकता न खोती थी। विद्यार्थी उसके घर कम आते थे पर कालेज के खाली घंटों में उसे अपने कमरे में शायद ही अकेले बैठने का अवसर मिलता था। छात्रों से घिरा रहता था, वह ! कालेज से अलग हो जाने पर उसके घर बराबर उन लोगों का

ताता लगा रहता था। विद्यार्थी उसकी आत्मअलिप्सा से उसके भक्त बन गये थे। कालेज से अलग शहर के एक सार्वजनिक स्थान पर उन्होंने उसे शानदार विदाई दी। प्रिंसिपल के गौरव की रक्षा के लिये कालेज-कमेटी को विमल का स्तीफा स्वीकार करना पड़ा। विमल के इस विदा-आयोजन में कालेज के सब अध्यापकों और छात्रों—क्लर्कों चपरासियों ने भाग लिया। भारी चन्दा करके शानदार प्रीति-भोज दिया गया। विमल की पत्नी शारीरिक संकोच के कारण न गयी पर विमल की ओर से विशेष आग्रह न हुए भी शांति उस आयोजन में गयी। यूनियन के सभापति के नाते कमलाकान्त की जो वक्तृता हुई उससे शान्ति प्रभावित हुई। उस दिन के बाद विमल के घर वह दो-तीन बार और आया था। मितभाषी और गंभीर होने के कारण विमल से न तो वह अधिक बहस करता न ज्यादा बात ही। एक दो बार अपनी बात कहने के बाद विमल ने जब जो कहा, उसने मान लिया। उस दिन के सम्मान के बाद शांति को बराबर एक बार विमल से किया अपना प्रश्न याद आता था—तुम्हारे कालेज के लड़के तुम्हें छेड़ते नहीं? बनाते नहीं! विमल ने बिना किसी गर्वोक्ति के इसका जो उत्तर दिया था वह भी उसे याद आता। ऐसे भैया की बहन होने का गौरव कितना विशाल है उसी दिन ज्ञात हुआ जब वह भी विमल के साथ फूलों से लद गयी थी। विमल ने अन्त में छात्रों को उनके स्नेह-आदर के लिये धन्यवाद देते हुए जो शांत आवेगहीन पर हृदय को अभिभूत कर देने वाली 'स्पीच' दी उसे उसने सुना। उसे यह सब स्वप्न जैसा लग रहा था। उस दिन आकाश उसे और नीला तथा विस्तृत जान पड़ने लगा। घर आने पर घंटे भर तक वह भाभी चाची को सारा वृत्तांत सुनाती रही। चाची को लड़के की नौकरी छूट जाने का दुख था ही परिवार के भविष्य को लेकर आशंका भी कम न थी। मन ही मन वे देवी देवताओं से विमल की दूसरी नौकरी लगने की प्रार्थनाएं किया करती थीं। शांति की बातें सुन कर

उन्हें उतना अच्छा नहीं लगा जितना शांति आशा करती थी। पर इससे क्या? उसकी छाती फूली आ रही थी। जैसे उसके प्राण-दीपक की बातियों में नया आवेश—इसी स्फूर्ति छायी जाती हों। उषा देर तक मुग्ध मन लिये सब सुनती रही। रह-रह कर उसे अभिलाषा होती थी वह स्वयं साथ में क्यों न गयी। पर...कैसे वह दुनिया की आँखों से अपना बढ़ता हुआ पेट छिपाती। उषा ने सुन कर कहा—तुम्हें कितनी मालाएं मिलीं।

बीसों भाभी! शांति ने उल्लसित स्वर से कहा—लड़कियों ने मुझे पहनायी—लड़के हाथ में दे देते थे। मेरा कंठ गद्‌गद् हो गया था। मैं ठीक तरह उन्हें धन्यवाद भी न दे पाती थी। क्या दृश्य था!

उषा ने मज़ाक करते हुए कहा—तुमने किसी लड़के को माला नहीं पहना दी? चुनाव करने का इससे अच्छा मौका कहाँ मिलेगा? पूरा कालेज उमड़ आया था। स्वयंवर कर लेती।

मज़ाक और छेड़छाड़ से दूर रहने वाली—अपनी झुकी पलकों को और झुका कर शर्म अनुभव करनेवाली शांति कुछ घंटों के लिये आज जैसे बिल्कुल बदल गयी थी। उसके जीवन की चिरसंगिनी कुंठा की कुहेलिका आज जैसे उसका साथ छोड़ कर चली गयी हो। चिड़िया जैसा उसका हल्का-फुल्का मन हवा में उड़ रहा था। बोली—मेरा लौटने का जी नहीं चाहता था। लगता था, यह सभा अभी घंटों चले। फोटो भी खिंचा, भाभी! मैं उसमें शामिल न हो रही थी। वे लोग भैया के पास की कुर्सी पर मुझे बैठाना चाहते थे। बड़ी लज्जा मालूम हो रही थी। मैं किसी प्रकार तैयार न हुई। लड़कियों ने ले जाकर मुझे अपने बीच खड़ा कर लिया। सब बड़े दुखी थे। भैया को कितना मानते हैं, वे सब। तस्वीर अखबारों में छपेगी? मेरी तस्वीर खराब आवेगी भाभी। बहुत लाचारी में मैं गयी थी।

उषा ने नदी तट की सान्ध्यकालीन निर्मल वायु जैसी हँसी हँस कर कहा—लड़कों के बीच में खड़ी होती तो एक बात थी। क्यों जाकर

लड़कियों के बीच तस्वीर उतरवायी ? तुमने बताया नहीं लल्ली ! किसी को वरमाला पहनायी या नहीं ? ऊपर से चाहे न पहनायी हो पर मन ही मन जरूर पहनायी होगी। आज खुशी नहीं समा रही है। सारे मुँह से छन छन कर झाँक रही है। लल्ली ! इतना खुश तुम्हें मैंने कभी नहीं देखा। तुम आज जरूर कुछ न कुछ पा गयी हो। बोलो। क्या पाया ?......किसे पाया ? बता दो रानी ! तुम्हारे भैया से कुछ न कहूँगी। कौन वह भाग्यवान है जिसे तुमने......

इसके लिये नहीं गयी थी भाभी ! तुम्हारी राय बिना यह महत्त्व-पूर्ण कार्य न होगा। सारा काम तुम्हीं करोगी......चुनाव से लेकर माला पहनाने तक। मैं हाँ में हाँ मिलाती जाऊँगी। तुम जाती तो अपने लिये दो-चार सिलसिले जमा आतीं। क्यों न हो ! अभ्यास से क्या नहीं हो सकता ! थोड़े समय में अधिक काम।

उषा के लिये नयी अनुभूति थी। सुखद और मनोरंजक। शांति बोली तो। पहले मजाक की बात कहते ही मुँह फुला देती थी। आज कैसा अलक्ष्य परिवर्तन उसके स्वभाव में हो गया। पर ज्यादा हँसी विनोद करना उचित न लगा। ऐसा न हो फिर भड़क जाय। जाल में फँसती चिड़िया को धीरे-धीरे परचाना होता है। जल्दबाजी खतर-नाक होती है। बाहर कमलाकान्त की आवाज सुनायी दी। विमल ने ऊपर से कहा—लल्ली देख कौन है ? दरवाजा खोल कर ऊपर भेज दे।

शांति ने दरवाजा खोला। मानपत्रों और उपहार की भिन्न-भिन्न सामग्रियाँ ताँगे से उतारते हुए कमलाकान्त ने शांति को देखा। बोला—आपने तकलीफ की। गुरुजी क्या कर रहे हैं ? मैंने कहा था—मैं सब लेकर पीछे आता हूँ। रास्ते में मुझे देर लग गयी ऊपर हैं न !

जी हाँ ! आप चलिए। हम लोगों को आये अधिक देर नहीं हुई। कुछ मुझे दे दीजिये। आप अकेले कैसे ले जायेंगे ? अधिक है।

सब ले जाऊँगा। आप देखती रहिये। ताँगेवाले को बिदा कर दूँ।

पहले शांति को लगा करता था—हृदय की उत्फुल्लता केवल तृष्णा है जो अन्त में मन को व्याकुल पराजय देती है। पर आज जैसी वास्तविकता किस दिन अपने अलग रूप में थी। तिनके-सी बहने वाली भँवर मारती लहरीले सुख की धारा। हृदय की सारी निस्संगता जिसमें वातचक्र बन कर घूमने लगती है। ऊपर पहुँचने पर लदे-फँदे कमला-कान्त को देख कर विमल ने कहा—क्या जल्दी थी आज सब लेकर आ जाने की। मैंने कहा भी था? तुम लोग कब मानने लगे। लल्ली! उषा से चाय बनाने को कह दे। ये सब सामने की अल्मारी में रख दे। तुम लोगों ने कितना पैसा खर्च किया? समझ में नहीं आता इन सोफियानी चीजों का मैं क्या करूँगा? तुम लोगों का प्रेम मेरा हृदय भरने के लिये काफी है। लल्ली! बत्ती जला दे। साँझ हो गयी है। तू गयी नहीं भाभी से कहने। मैं जाता हूँ—कहते कहते विमल तेजी से नीचे की तरफ चला। लल्ली को मुड़ने का मौका भी न मिला। कमलाकान्त ने सब चीजें बड़े बंडल को खोल कर बीच में रक्खे गोल टेबिल पर सजा दीं। शांति से बोला—आप अल्मारी में एक-एक कर सजाती जायँ। मैं देता चलूँगा। खुद सजा देता पर आप मुझसे अच्छा सजाएंगी। गुरुजी की रुचि से आप जितनी परिचित हैं उतना मैं नहीं।

ठिठकती-ठिठकती शांति अल्मारी के पास जाकर खड़ी हो गयी। गुच्छा ला ताला खोल सारी वस्तुएं एक-एक कर रखने लगी। सजाना क्या सहेज कर रखना था। 'टी' सेट, लिखने का सामान, चाँदी के शृङ्गार-दान, फाउन्टेनपेन, कलमदान, कालेज की भिन्न-भिन्न विषयों की समितियों द्वारा दिये गये 'अभिनन्दन-पत्र', अंग्रेजी-लेखकों की चमड़े से मढ़ी सुन्दर जिल्ददार पुस्तकों का सेट—क्या-क्या न था? रेशमी चादर में बाँध कर सब लाया गया था। रख चुकने के बाद शांति ने कहा—चादर! इसे आप ले जायेंगे न। लाइये तहा दूँ।

ले कुछ न जाऊँगा—सब यहीं रहेगा—कहते-कहते इधर-उधर

देखकर कमलाकान्त ने सिगरेट सुलगायी। कुर्सी पर आराम से बैठ गया। शांति अब तक अपनी अपरिवर्त मुद्रा लिये खड़ी थी। कमला ने कहा– आप खड़ी क्यों हैं? बैठ जाइये। हम लोगों को आशा थी—मिसेज शर्मा (विमल की पत्नी) हमारे 'फंकशन' में आयेंगी। वे नहीं आयी। आपने आकर 'फंकशन' में भाग लिया। उसके लिये मुझे कालेज—यूनियन और अपनी ओर से धन्यवाद देना है। उनके आने के अभाव की पूर्ति आपने कर दी। हम सब बड़े कृतज्ञ हैं...... भविष्य में कोई अवसर आवे तो आप कृपा करेंगी......

शांति को आगे सुनना असंभव जान पड़ा। चुपचाप जीने की ओर चली। कमलाकान्त धूम्रपान का आनन्द ले रहा था। जीने पर फुर्ती से उतरते शांति दौड़ने सी लगी। उषा ने थाली में सामान सजाते हुए कहा—क्यों दौड़ रही हो रानी! धोखा होने लगता है, कोई पीछा कर रहा है क्या? ले उपर ले जा। तेरे दौड़ने पर ही चाची नाराज होती हैं।

'तुम भी चलो' शांति ने बच्चों सी जिद करते हुए कहा—भैया कहाँ हैं? बैठक में कोई और बैठा है? भैया! भैया! मैं आऊँ?

विमल ने कहा—ऊपर चलो। मैं दस मिनट में आता हूँ। उषा! तुम भी ऊपर चलो। कह कर विमल आगन्तुक के साथ बात करने लगा। एक स्थानीय पत्र के संवाददाता थे। कालेज के मामले में उसका वक्तव्य लेने आये थे। विमल ने इधर-उधर की बात करके टाल दिया। जब ऊपर पहुँचा तो कमलाकान्त बैठा चाय पीने के लिये उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। एक ओर कुर्सी पर उषा बैठी थी। सामने सड़क की ओर पीठ किये खिड़की से टिकी शांति खड़ी थी। विमल ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—तेरे पैर नहीं थकते? अपने आप बैठने का नाम नहीं लेती अगर कोई न कहे। बैठ कर चाय पी सबके साथ। चल इधर।

कमला ने चाय बना कर विमल और उषा की ओर बढ़ा दिया।

विमल ने पीते हुए कहा—खूब 'लेवर' आया है। लल्ली एक बार का कहना नहीं सुनती। दोष है तुममें—। ये अखबारनवीस जान खा लेते हैं।

शांति ने शराबी के गले में शराब सी उतरती—हृदय की अनमनस्यता में घर बनाती चंचल नवीनता को सुकुमार पलकों के भीतर-भीतर घोंट कर कहा—चाय नहीं पियूंगी भैया ! पीती नहीं।

उषा ने कहा—यहाँ आकर बैठो। दूर-दूर क्यों खड़ी हो ? क्या बात है—चाय न पिओ, मिठाई खा सकती हो। कहना मान लो।

शांति चुपचाप आ बैठ गयी उसने खाया नहीं। कमलाकान्त ने उषा से कहा—आप आईं नहीं। हमें बड़ी आशा थी। आपका गुरुजी का हम अलग चित्र चाहते थे। अभी सेहत से आपको विदाई नहीं हुई। इतनी जल्द हम लोग कर क्या सकते थे।

उषा ने सिर झुका लिया। विमल ने कहा—इन्हें 'फस्ट कन्फाइनमेंट' है। मैंने आग्रह नहीं किया। लल्ली भाभी की संवेदना में नहीं आ रही थी। पर कहना मान लेती है—चली गयी। अब मैं इस प्रकार का आयोजन बर्दाश्त नहीं करूँगा। मुझे अच्छा नहीं लगता। तुम लोगों की खातिर चला गया। आइन्दा तुम लोग न कहना। मैं दिली संकोच अनुभव करता हूँ...।

देर तक कमलाकान्त विमल बात करते रहे। उषा और शांति नीचे जा चुकी थी। विमल ने छोटा-सा लेख अंग्रेजी में लिखाया। कमला लिख कर शाम को 'टाइप' कर लाने का वायदा करके चला गया। चलते समय इधर-उधर शांति को देखने की चेष्टा की। वह अपने घर में जाकर चारपाई में पड़ी कठिन चिन्ता लेकर घिरती अपने दिल की जलन देख रही थी। नारी का स्थिर, सौम्य, धीर, प्रशान्त मन कभी-कभी कैसा विक्षुब्ध, भीषण और संहार शक्ति-संपन्न बन जाता है। शान्ति के सामने जो कुछ आज तक कभी न आया था उसी को लेकर वह कितनी पीड़ा पा रही थी। नूतन के जन्म के लिए मानसिक पीड़ा आवश्यक है।

सात

नौकरी छोड़ देने के बाद विमल ने जैसा सोचा वैसा आसान जीवन न बन सका। कुछ लोग संसार में होते हैं जो उत्तरदायित्व से बँध जाने पर ही परिश्रम कर सकते हैं। बंधन न रहने पर वे अधिकाधिक आत्मनिष्ठ और चिन्तनशील होते जाते हैं। सोचना, मनन करना एक बात है—पुस्तकें लिख कर नियमित आय का जरिया निकालना बिल्कुल दूसरी। कालेज से बँधी आय लेकर वह पत्नी को दे देता था। घर के प्रबन्ध की ओर से निश्चिन्त रहता था। पहले दो-चार महीने विशेष कष्ट नहीं हुआ। चार छः सौ रुपया पास में था। कुछ लेखों और पुस्तकों की रायल्टी का पैसा आता रहा। पास का पैसा खर्च हो जाने पर जब केवल आने वाले रुपए पर निर्भर रहना पड़ा तब विमल की समझ में स्थिति की कठिनता आने लगी। पत्नी की 'डिलीवरी' के दिन आते जा रहे थे। शांति ने लड़-झगड़ कर मा-बाप के रोकने पर भी नौकरी कर ली। उन्होंने बहुत रोका आगा पीछा समझाया। पर शांति दृढ़ थी। उसने स्पष्ट कह दिया—तुम लोग मुझे प्रसन्न मन से नौकरी करने की अनुमति न दोगे तो मैं अलग जा रहूँगी। तुम्हारे मकान में न रहूँगी। रोते-रोते मा ने कहा—'नौकरी करना है, कर ले'। पिता ने सोचा स्कूल की अध्यापिका की नौकरी बुरी नहीं। विमल पर उनका बड़ा विश्वास था। वह भी उन्हें पिता तुल्य मानता था। विमल, विशेषकर उसकी पत्नी के व्यवहार से वे बड़े संतुष्ट रहते थे। विमल नहीं चाहता था—शांति नौकरी करे। जब उसने उसकी ज़िद देखी तो पिता को समझा दिया। वे तैयार हो गये। शांति आर्य कन्या-पाठशाला में वैतनिक रूप से पढ़ाने लगी। पाठशाला के मैनेजर रायसाहब रामप्रसाद उसी मुहल्ले में रहते थे। उनकी पत्नी, विशेष कर लड़की मनोरमा से शांति की मैत्री थी। शांति के चाल-चलन, शील-सौजन्य, बात-व्यवहार की

चर्चा मुहल्ले भर में होती थी। शांति ने न तो पिता से कहलवाया, न विमल से न खुद कहा। मनोरमा ने स्वयं पिता से कह कर भरे 'सेशन' में उसे नियुक्ति-पत्र दिला दिया। रायसाहब उसे और उसके पिता को जानते थे। स्कूल वहाँ से दूर न था। विमल की अब शांति से भेंट कम होती थी। शाम को कभी शांति आती थी। कभी नहीं। न जाने कौन सी सोई दुनिया जाग उठी थी—कौन सी खोई आवाज—खोये स्वरों का कौन सा आलाप उसने सुन लिया था जो पहले का सारा धुँधला संसार अब जाग्रत नजर आता था। उसके थके हारे प्राण में प्रेरक ललकार उठ खड़ी थी। वह खाली बैठ कर बात न करना चाहती थी। किसी न किसी काम में बराबर व्यस्त रहना चाहती थी। हृदय वही था पर उसकी सहिष्णुता बढ़ गयी थी। दीपक वही था पर ज्योति में एक नया विन्यास पैदा हो गया था। जीवन में जो गर्द-गुबार छाया था वह आप से आप दूर हो गया।

विमल की पत्नी के प्रसव के दिन निकट आ गये थे। उसका स्वास्थ्य धीरे-धीरे पीला पड़ता जाता था। एक रोमांचकारी आसन्न आशंका उसे घेरे रहती थी। अक्सर शांति की माँ से उसकी बातें होती थीं। वे उसे समझाती रहती थीं। चाची भी थीं। पर उषा को भीतरी सर्दी जैसा एक अन्तर्व्यापी भय बराबर कंटकित किये रहता था। ज्यों-ज्यों दिन नजदीक आते थे उसकी दहल बढ़ती जाती थी। ज्यादातर कमरे में पड़ी घबड़ाहटभरी बातें सोचा करती थी। शांति भाभी की मनोदशा से वाकिफ़ है। वह क्या समझाये...कैसे समझाये? जिस पीड़ा की कल्पना करने का उसे अधिकार न था उसी को लेकर वह भाभी से चर्चा भी क्या करे। बहू के संतान-प्रसव के उत्साह और उल्लास में चाची तरह-तरह के उत्सव और धूमधाम की कल्पना करती थीं। बाजे शहनाई के मृदु स्वर से सारा घर गूँज उठेगा। चारों ओर उत्सव वस्त्र उमंग की लहर आ जायेगी। विमल को इन बातों से सरोकार नहीं। उसे नौकरी की चिन्ता नहीं। अगले 'सेशन'

में उसे किसी न किसी कालेज में जगह मिल जायगी। अनुभवी और प्रख्यात अध्यापक के लिये नौकरी की कमी नहीं। पर अभी छः सात महीने काटने हैं। उषा पति की चिन्तित व्यग्रता को देख व्यग्र हो जाती थी। घर के वातावरण में उल्लास और दुश्चिन्ता का विचित्र मिश्रण था। जैसे मेघ और कुहरे से ढँका आकाश का, देश बीच-बीच में सूरज की रोशनी से प्रोज्ज्वल हो उठे...। फिर वैसा ही बरसाती शीत का धुँधलापन लेकर अँधेरे से ढक जाय। वही अविचल नीरव शून्यता। वही आनन्दहीन गतिहीन क्लांति। इसी अव्यवस्थित अनुक्रम में दिन—सप्ताह—महीना......सब बीत रहे थे। पत्नी के प्रति आदर सम्मान और सेवा सुश्रूषा में कोई कमी नहीं। शहर की प्रसिद्ध लेडी-डाक्टर को विमल बराबर उसे दिखाता रहा......फीस देता रहा...... उनकी निर्धारित दवाइयाँ लाता रहा। जो आवश्यक है सब लाता-खिलाता रहा। पर उषा को खाने-पीने में—पति का पैसा खर्च कराने में पहले जैसा उल्लास नहीं मिलता। पति की वर्तमान परि-स्थिति में वह मन ही मन उनके लिये चिन्ता और अतिरिक्त व्यय का कारण बन गयी है वह बराबर अनुभव करती है।

शाम को विमल बैठा चाय पी रहा था। उसके सामने सुबह से शुरू किया एक लेख पड़ा था जो खत्म होने न आता था। वह उसे समाप्त किये बिना शाम को बाहर न निकलेगा। शांति ने प्रवेश करते हुए कहा—मैं आ गयी। कल परसों आयी थी—आप थे नहीं। शाम को कहीं घूमने जाते हैं या किसी काम से......।

विमल ने आदर देते हुए कहा—तुम अब क्या आओगी। आओगी तो जान बूझ कर ऐसे समय जब मैं घर पर न होऊँगा। सुबह पूजा-पाठ—दिन भर स्कूल, शाम को लड़कियों का 'होम-वर्क' या काम-काज। रात को खाना-सोना। तुम्हें फुर्सत कहाँ मिलती है— मेरे पास आओ देखो—मुझ पर क्या बीत रही है। ठीक है। अँधेरे में मनुष्य की छाया भी उसका साथ छोड़ देती है।

मैंने साथ नहीं छोड़ा। तुम्हारे बताये पथ पर चलने का अभिमान मुझे है। तुम्हारा साथ कैसे छोड़ूंगी। छोड़ने पर भी छूटेगा? भाभी कह रहीं थी तुम मुझ पर नाराज हो। क्या अपराध पड़ा मुझसे? मैंने समझा था भाभी मज़ाक में कहती होंगी। तुम्हारी बातों से लगता है तुम नाराज़ हो। यह ठीक है, मुझे पहले की तरह समय नहीं मिल पाता। मिलता है तो काम उलझे पड़े रहते हैं। पर...... जब-जब मैं पिछले दिनों आयी तुम घर पर नहीं मिले। तुम अपनी नाराजी तो व्यक्त कर देते हो—मेरे मन का अभाव और परिताप कहाँ जाय प्रकट होने? भीतर-भीतर धुँधुवाया करता है। पहले संतोष कम से कम इतना था—तुम्हारी सेवा कुछ कर लेती हूँ। अब वह भी नहीं हो पाती। सोचती हूँ—कब तक इस प्रकार चलेगा। एक उलझन सुलझते-सुलझते दूसरी खड़ी हो जाती है......

कुछ नहीं लल्ली! व्यर्थ की बहलाने वाली बातें हैं ये। तुम लोगों को बात करने में कौन पा सकता है। ऐसी अफीम खिलाओगी कि बात करने वाला बीच में ही बेहोश हो जाय। बाद में......एक झटके में उसके ममत्व का तार तोड़ दोगी। तुम्हारे लिये कुछ कठिन नहीं। न मैं प्रसन्न हो सकता हूँ......न नाराज! मैं ऐसा ही जीवन-हीन......न नाराज......न प्रसन्न। वह मेरा कौन है जो मेरे पास नहीं......आता नहीं। जिसके न आने से मेरा एक भी काम नहीं रुकता। मैं उस पर नाराज कैसे होऊँगा? उषा ने मज़ाक में कहा होगा। उसे ऐसा न कहना था। जो यथार्थता से इतनी दूर की बात है उसे लेकर मज़ाक करना भी अत्याचार है। मज़ाक में कहीं किसी कोने से सत्य की संधि होनी चाहिए। जो बिल्कुल पत्थर है उसे लेकर मजाक करना प्रमाद है। स्कूल का काम ठीक चल रहा है? काम तुम्हें पसंद है? पहले कुछ दिन मन नहीं लगता बाद में रुचि बढ़ जाती है।

शांति को पैर के नीचे जमीन नहीं मिल रही थी। भैया उसे जो

कहें......जितना भी रोष करें—कम है। अपने प्रवंचक प्रमाद को लेकर उसने सचमुच उन्हें पीड़ित नहीं किया ? घर की दशा की टोह उसे भाभी की बातों से मिल जाती थी। जिस समय उन्हें उसके सान्निध्य की सब से अधिक आवश्यकता थी उस समय वह उनसे खिंची। भूल गयी वह उसे अन्यत्र शरण नहीं। लहर धारा से कब तक खिंची रहेगी। क्यों उनसे दूर-दूर भागने की उसकी प्रवृत्ति होती रही। अपनी पहुँच की सीमा के परे होने पर भी पहले उन्हें वह जैसा देखती थी इधर क्यों नहीं देख पाती ? लगता है उन्हें देख नहीं सकती क्योंकि देख कर अनदेखा करना चाहती है। चुपचाप खड़ी नीचे की ओर अपनी लज्जित दृष्टि गड़ाये रही। विमल के मुख की ओर आज उससे देखते नहीं बनता था। जिस समय उसे उठते-बैठते मौजूद रहना था उस समय वह नौकरी का उपक्रम कर दूर-दूर भागती रही। अपने को वह कहाँ ले जाय......किसकी चारो ओर से छिपा लेनेवाली घनीलिमा में लुप्त हो जाय।

विमल ने कुछ मिनट स्थिर दृष्टि से खिड़की के बाहर आकाश की फीकी-फीकी सान्ध्यकालीन नीलिमा को देख कर कहा—जीवन में व्यथा को सदैव मैंने असंदिग्ध अकंपित ढंग से ग्रहण किया है। जहाँ व्यथा की क्षति-पूर्ति की कोई प्रत्याशा नहीं होती वहाँ भी मैं कभी पीछे नहीं हटा। लेकिन....होता क्या है ? मौत की मंजिल के राही को जिन्दगी की छोड़ी कुटिया ज्यादा से ज्यादा समीप दिखायी देती है। मौत को स्थूल शारीरिक अर्थ नहीं ले रहा। एक जीवनव्यापी अवसाद और अविश्वास की क्रिया उसे मानता हूँ। पर......जाने दो...... इस वीराने में अकेले चलना अब उतना असंभव नहीं लगता। कुछ दिन में आठ वर्ष का अतीत पीछे छूट जायगा। कल्पना के रंगीन आकर्षण महल बनने में देर लगती है—गिरने में नहीं।......और मलवा......मलवा भी दो-चार महीने में हट जाता है। बैठो न ! खड़ी क्यों हो ? आयी हो तो बैठना पड़ेगा लल्ली !

विमल के वर्ण-वर्ण, से व्यथा की झंकार निकल रही थी। आज वह उसके पहली बार कहने पर ही कुर्सी पर बैठ गयी। कुछ कहना चाहती है......कहे क्या ? ऐसी आत्मिक पीड़ा के सम्मुख कहा क्या जा सकता है ? ऐसे में कहना क्या ? केवल सुनना ही सुनना है। पर इस सुनने के बाद ? यहाँ से चले जाने के बाद ? दिल पर क्या बीतेगी ? कैसे वह अपने को वश में रक्खेगी ? भैया का यह खंडित अहं—उनका विक्षुब्ध अभिमान ! कहाँ से यह पुरुष के अन्दर जाग उठता है। एक बार जाग उठने पर सोने का नाम नहीं लेता। जो फिर जागना ही जानता है......जागते रहना ही......

विमल ने कहा—तुमने बतलाया नहीं। स्कूल में काम करते तुम्हें कई हफ्ते हो गये। कोई कठिनाई पड़े बतलाना। काम मन का न जान पड़े छोड़ देना।

सब काम मन का है भैया ! जब मजदूरी करने निकली हूँ तो क्या मन की—क्या बे मन की। सच बात यह है कि मुझे बड़ी शान्ति मिलती है। जिस काम में मन को शांति मिलती है वह बे मन का होते हुए भी करणीय है। तुमने आज जो कहा है वह सब मैं 'डिजर्व' करती हूँ। तुमने बहुत कम कहा है। और कहो......मैं सिर झुकाए बैठी हूँ। जो कहोगे सुनूँगी। मैंने अपराध किया है......

विमल ने फिर कोई चर्चा न की। अपने लिखने में लग गया। लगभग दो घंटे तक लिखता रहा। रात को आठ बजे जब उसने लेख समाप्त किया और सिर उठाया तो देखा—वैसी ही, मूर्ति बनी शांति बैठी है। कुछ विस्मय के साथ बोला—तू गयी नहीं री ! तब से बैठी है ? मेरी आदत बड़ी खराब है। लिखते समय अपने में खो जाता हूँ। कोई कान पकड़ कर उमेठे तो होश आये। देख नीचे क्या हो रहा है ? उषा क्या कर रही है ? लेख मैंने खत्म कर दिया संतोष की बात है.......

शांति उठी नहीं। बैठे-बैठे स्थिर दृष्टि से विमल की ओर देखते-

देखते उसकी दृष्टि धुँधला गयी थी। सामने की दुनिया गुबार जैसी हो रही थी। पहली बार जितनी तत्परता से उसने विमल की बात मान ली थी और बैठ गयी थी उतनी तत्परता से इस बार नहीं उठी। उठना चाहती थी पर उठ न सकी। कुर्सी पर जड़ी बैठी रही। क्या करना चाहिये......क्या होना चाहिए जैसे जान न पा रही थी। केवल उसको जान रही थी—अनुभव कर रही थी दिल की हर धड़कन में सुन रही थी जिससे इतने दिन दूर रहने के कारण उसके जीवन और कर्मों का सारा सौन्दर्य, सारा आल्हाद आज मरा-मरा सा लगता है।

विमल ने उसकी ओर देखा......गौर से देखा। दुबारा उससे उठने के लिए नहीं कहा। शांति के भीतर चलने वाला द्वन्द्व उसके मुख पर बिम्बित था। संघर्ष के असंख्य काँटे उसके मुख पर उग आये थे जो उसको कँटीली झाड़ी की संज्ञा प्रदान कर रहे थे। विमल को लगा—उसने ज्यादती की है—उसने बड़े कोमल स्थल पर चोट पहुँचायी है। उस चोट की यातना—उस चीखभरे गहरे इरादे की दहक—यह मारात्मक मौन पूरे कमरे में फैल-फैल कर काना-फूँसी कर रहा था। विमल को यह सब अनजाना—बेसमझा और एक चुभती हुई बदनसीबी-सा लग रहा था। जैसे एक अभागे खूनी विषाद से गुंथे गीत की यंत्रणा—उसकी झंकार—भरी रह रह कर सिर धुनती वेदना सारे कमरे में फैली थी। विमल ने रेडिओ खोल दिया। शांति वैसी ही सुनसान बैठी रही......

विमल नीचे उतर गया। शांति को रेडिओ की आवाज खराब लग रही थी। विमल के जाते ही उसने रेडियो बंद कर दिया। नीचे से लौट कर विमल ने कहा—लल्ली! तुम्हारी भाभी पड़ोस में गाना सुनने गयी हैं। मुरारी बाबू की मा आयी थीं ले गयी हैं। उनके यहाँ आयोजन है। मुझसे पूछने की जरूरत नहीं समझी गयी। मुमकिन है

आयी हो। मुझे लिखने में तल्लीन देख कर लौट गयी हो। एक घंटे में आयेगी······

शांति ने कहा—वे आयी थीं। दो मिनट दरवाजे के पास खड़ी रह कर लौट गयीं। आती होंगी। आप चाय पियेंगे। बना लाऊँ।

नहीं! यों ही चला गया था। तुमने रेडियो बन्द कर दिया। अच्छा नहीं लगता। जाने दो......न सुनो। बैठो।

बैठूँगी। तुम थक गये होगे। दो घंटे मेरे सामने सिर गड़ाये बैठे रहे। उसके पहले लिखते रहे होगे। टहल आओ जाकर! घूमने से तबियत ताजी हो जायगी। देर तो हो गयी है पर गंगा-तट की ओर चलो। मैं चल सकती हूँ यदि अनुमति दो।

विमल ने उठ कर कुर्ता पहना। आइने के सामने खड़ा होकर बाल ठीक करते हुए बोला—मैं क्यों मना करूँगा? उधर ही चलूँगा। तुम घर जाओगी? कपड़े तो नहीं बदलना? जरूरत क्या है!

'कुछ नहीं। ऐसे चलूँगी।' कह कर कोने में पड़ी उषा की पुरानी चट्टी शांति ने पहन ली। बत्ती बुझा कर विमल के पीछे-पीछे उतरी। विमल ने कहा—चाची! मैं लल्ली के साथ गंगा किनारे तक टहलने जा रहा हूँ। घंटे भर में आता हूँ। हरी पूछे तो कह देना।

चाची के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना दोनों बाहर निकल आये। मकान से लगभग एक मील पर गंगा का घाट था। दोनों उधर चले। रास्ते में कोई बात नहीं हुई। गंगा-तट पर पहुँच कर किनारे पड़े खाली तख्त पर विमल बैठ गया। सामने के खाली तख्त पर शांति जा बैठी। विमल ने कहा—तुम मेरे साथ आ गयीं पर तुम्हारे काम का हर्ज होगा। शाम से समय नष्ट कर रही हो। लौटते-लौटते नौ बजेंगे।

शांति ने संयत स्वर से कहा—कुछ हर्ज न होगा। मेरा समय इतना कीमती नहीं जितना तुम समझते हो। समय का अभाव नहीं था जिसके कारण तुम्हारे पास नहीं आ पायी। मुझे तुम्हारे समय का ज्यादा ख्याल रहता है। पहले कोई बात न थी। अब तुम्हें नियमित

रूप से काम करना पड़ता है। तुम मुझे पग-पग पर इतना गलत समझोगे तो कैसे जिऊँगी......

विमल ने कहा—मेरे गलत समझने और तुम्हारे जीने में कोई सम्बंध नहीं है लल्ली! मैं कौन हूँ, तुम्हारा? परदेशी किरायेदार आज हूँ, कल नहीं। क्यों मुझे इतना महत्त्व देती हो। दुनिया में किसी को लेकर जीना मरना किसी का नहीं रुका। मैं तुम्हें गलत समझूँगा यह तुम न सोचो। मुझे अपने को ही गलत समझने से फुर्सत नहीं। अपने को मैं कितना सताया करता हूँ इसे कोई नहीं जानता......कोई नहीं जानता लल्ली! भगवान भी नहीं।

बहुत दिन बाद विमल के मुँह से भगवान का नाम सुन कर शांति को पुरानी बातें याद आ गयीं। बोली—ऐसा न कहो भैया! भगवान सब जानते हैं। उनसे कुछ छिपा नहीं। उनसे छिपा कर कोई क्या कहाँ रक्खेगा? मुझसे वादा कर चुके हो उनकी बात न करोगे......

हाँ लल्ली! चूक पड़ी। अपने वादे का मुझे ध्यान है। मैं कुछ न कहूँगा।

कुछ न कहो! मेरे जीने-मरने और तुमसे सम्बंध नहीं है तो किससे है? और कौन है जिसके द्वारे मेरे जीवन के छंद निर्मित होते हैं। तुम इसे नहीं मानते—मैं मनवाऊँगी नहीं। इतना सुन लो तुम्हारे मानने न मानने पर मेरी श्रद्धा की विह्वलता, तृष्णा और निर्भरता नहीं है। तुम न मानोगे तो क्या मैं मान जाऊँगी? मैं तुम्हीं से हूँ। तुम्हीं से लिपटी पड़ी हूँ। तुम्हारे छुड़ाने से छूट न जाऊँगी। मेरी पुकार कभी मिट नहीं सकती। मेरा इरादा मर नहीं सकता—मेरा गीत धुल नहीं सकता। मेरी आँखों में तुम्हारी उजड़ी देन का सुहाग है—मेरे जीवन में तुम्हारी परिणति की विभा है। तुम मुझे इस तरह दुत्कार-दुत्कार कर अपने से दूर कर पावोगे......

विमल ने कहा—तुम किसी की नहीं हो......तुम कुछ नहीं हो......तुममें कुछ नहीं है। केवल एक अति सात्विक शून्यता—

एक दैवी अखंडता—एक प्रोज्ज्वल एकाकीपन......यही सब तुम साकार हो। क्यों अपने को किसी बंधन में बाँधती हो? मुक्त रहो निस्सीम गगन जैसी अधिकाधिक अगम्य, रहस्यमयी अपार्थिव बनती जाओ......

तुम्हारा यह व्यंग वरदान बन जाता तो मैं कितनी सुखी होती। तुम्हारी भर्त्सना यदि यथार्थता में परिणत हो सकती। पर पहले क्यों मेरे भीतर अपनी अविनाशी आत्मा की साँस फूँक दी जो मुझे चैन नहीं लेने देती। क्या मेरी जिन्दगी इसी बेकरारी में बीत जायेगी? यही अतृप्ति अनुतप्त पिपासा मेरे साथ आजीवन चलेगी! पहले आग लगाते हो फिर बादलों के आने की रागिनी गाते हो। क्यों न हो, विद्वान जो हो। हृदय से तुम्हें क्या मतलब?

मैं विद्वान नहीं। मैं कुछ नहीं। तुम्हें पाकर जरूर सोचा था—कुछ कर जाऊँगा। नया प्रयोग कर समाज की खोयी धारा को दिशा का निर्देश दूँगा पर......जाने दो। तुम जो हो—वही बहुत हो। मेरे लिये तुम बदल नहीं सकती। पर मेरे व्यक्ति पर तुम्हारा यह अनुराग अवांछनीय है। यही निष्ठा—यही अनुराग यही आत्म-समर्पण—यही तादात्म्य उस प्राणवन्त प्रवृत्ति-पूरक जीवन के प्रति दिखाओ जो पग-पग पर तुम्हें अपनी ओर खींचा करता है पर तुम जिसे रोकती हो। जिसके मार्ग पर तुम स्वयं अवरोध बन कर बिछ जाती हो। एक बार उसके प्रवाह में अपने को पड़ने दो। लहरों के आह्वान पर तूफानों से खेलो। देखो! जीवन का किनारा कितना निकट सुलभ बन जाता है। आखिर किसके सहारे इस रेगिस्तानी बहिया में बहोगी? किसके सहारे। प्रेरणा का सोता सूख चला।

'तुम्हार सहारे, तुम्हारे सहारे'! शांति ने काँपते स्वर में कहा—जिसे प्राण ने पहले ही दरस में पहचान लिया उससे बड़ा सहारा कौन हो सकता है। तुम मुझे विचलित भर न करो। देखो मैं कैसी सहूलियत के साथ यह रेगिस्तान झेलती हूँ। केवल मेरा 'मरू-प्रदीप'

मेरे पास रहने दो। उसकी बाती को मेरा स्नेह पी पी कर जलने दो। जिधर तुम ले चल रहे हो उधर प्रेम नहीं नफ़रत का राज्य है। अभी ईश्वरता के देश में हूँ। क्यों मुझे मद, मत्सर, मृगजल की ओर घसीटते हो? मैं मर चुकी हूँ। तुम मुझे जीवित करना चाहते हो। इस तरह की साँसें फूँक-फूँक कर मुझे कबतक खड़ा रक्खोगे? मुझे मिटने दो। अपने प्रकाश में मुझे मिटते रहने का प्रज्वलित बल दो। इसी मंथन और आत्मदाह को बरकाने के लिये मैं तुमसे भागती हूँ।

मुझसे भाग कर जा सकती हो पर अपने जीवन-देवता से कब तक आँख मिचौनी खेलोगी? उन्हें कब तक धोखा दोगी? अधिक समय तक छलना न चलेगी। इतना बड़ा जीवन कुरूप बेरौनक न बनाओ।

मेरे जीवन देवता तुम्हीं हो;—शांति ने फिर काँपते हुए कहा—तुम्हारे अतिरिक्त कौन है जो मुझे अपने अनुशासन में ले चलेगा। जिसकी अनुवर्तिनी हो मैं जीवन का जहर पियूँगी। तुमसे बड़ा नील-कंठ कहाँ मिलेगा। किसकी छाती इतनी चौड़ी है? मुझे किसी की छत्र-छाया की जरूरत नहीं। तुम्हारी छाँह बन कर रहूँगी। तुम कभी छोड़ना मत। चाहे याद करना या न करना लेकिन भुलाना मत। हृदय के कोने में इस मुट्ठी भर देह के लिये स्थान बनाये रखना। अधिक क्या करूँगी? कहाँ सँभालूँगी। इतना बहुत है।

व्यक्ति का सहारा तिनके का सहारा है। असली सहारा प्रवाह के क्रम का होता है। वही सृष्टि की अबाधता—प्रवृति की नित्यता का प्रतीक है। जीवन की अजेयता वहीं पर आकर मूर्तिमान होती है। यह प्रवाह—यह प्राणधारा हर क्षण नयी होती है। तुम इसे मृत्यु की जड़ता के भीतर से होकर ले चलना चाहती हो। अकर्मण्यता के नाम पर तुम मिथ्या धारणा को जीवन से लगाये बैठी हो। इसी ध्रुवता को लेकर तुम अपने को निष्पाप मानोगी। यह भाग्यवाद, अकर्मण्यता-वाद और पलायनवाद का दूसरा नाम है। मैं इस अक्रिया से तुम्हें उबारना चाहता हूँ—तुम्हें उबरता देखना चाहता हूँ। कर्म

का यह प्रणिपात जीवन की प्रत्येक तरंग को ढोने दो। तुम प्राचीन विधवा परंपरा को परिवर्तनीय विधान मानने को तैयार नहीं। महा-नाश का व्यवधान है यह जो जीवन के एक एक स्वप्न का बलिदान लेकर मानता है। किसी बड़े आदर्श के लिये सपनों का बलिदान मेरी समझ में आता है। पर एक निराकार जीवन पर्यन्त चलने वाली शून्यता की साधना और उसके लिये जीवन की कोमलतम, उर्वरतम भावनाओं की कुर्बानी! इंद्रियों की यह युगव्यापी विडम्बना! छोड़ो इसे।

तुम्हारी बात सुनते सुनते अन्त:करण में मोह का आवेश होने लगता है। वे क्षण याद आते हैं जब मैंने भी किसी को प्यार करने का असफल प्रयत्न किया था। लड़कपन था मेरा पर वह गहरा था। आज जब याद आती है, तुम्हारी बातें सुन कर—लगता है पुराने जमाने का किस्सा सुन रही हूँ। तुम्हारी बातें विषैली होकर भी मधुर लगती हैं। सोचती थी तुमको कुछ जताये बिना तुम्हारी छाया में बैठ कर अपने जीवन के सब काम धीरे-धीरे करती जाऊँगी। सोचती थी मेरा अहित-अमंगल तुम किसी तरह बरदाश्त न कर सकोगे...... लगता है भूल थी यह। तुम मेरा सबसे बड़ा अहित करने पर तुले हो। जो मुझे न सोचना चाहिए वह सोचने पर विवश करते हो—जो न अनुभव करना चाहिए उसी की तीक्ष्ण अनुभूति रोम-रोम में जगा देते हो। जो सुख पाने की कभी स्वप्न में आशा न करनी चाहिए उसी की तृष्णा-अणु-परमाणु में उद्दीप्त कर देते हो......मेरी वर्जनाएं सो जाती है......मेरी आँधियाँ जाग उठती हैं......मेरी प्रेरणाएं धू-धू जल उठती हैं......

जलने दो लल्ली! जो जलने लायक होगा जल कर क्षार हो जायगा...जो कुंदन है वह लाल होकर बच रहेगा। तुम खुद निर्माण की झंझा हो—तुम्हें झकोरों की क्या दरकार! तुम्हारे भीतर खुद निरुपम मोतियों को जन्म देने वाली सीप का उदधि गर्जन है। तुम क्यों ज्वार की प्रतीक्षा करो। यह संधि और शान्ति काल जीवन की

भीख है। इसे दाता माने बैठी हो तुम! अपनी मनुहार को झूठा न ठहराओ। भविष्य की फुलवारी की ओर देखो! अतीत के भयावने उजड़ेपन को सब कुछ न जानो। नियति ने तुम्हें चिरंतन विराम-चिह्न बना रक्खा है। तुम गति का गौरव और गर्जन लेकर उठो। तुम सत्य से प्यार करो। तुम्हें स्वयं मालूम होगा मानव से बड़ा कोई सत्य नहीं। प्यार स्वतः अपने विधेय की व्यापकता बता देता है। तुम प्यार तो करो। जीवन की रक्षा और पोषण के लिए आनन्द की अनिवार्यता सर्वस्वीकृत है। उसका उल्लंघन न करो।

करती तो हूँ!......करती तो हूँ!! और किस तरह किया जाता है। शांति ने तिबारा काँपते हुए कहा—तन और मन की संपूर्ण तन्मयता से करती हूँ......जीवन के सर्वस्व-समर्पण से करती हूँ। प्राण की अपरिवर्त अनल-शिखा से करती हूँ। दिनरात भगवान् को पुकारा करती हूँ......बल दो......बल दो। इस ज्वाला-मंडल से अविजित निकलते जाने का बल......घनत्वपूर्ण बल......।

यह बल तुम्हारे पास दुर्बल बन जायगा। किस युग में मानव के लिये अभिशाप वरदान बना है? किस युग में पाप ने पुण्य की संज्ञा पायी है। विष अमृत नहीं बन सकता......अंधकार आलोक का पर्याय नहीं कहा जाता। अपने इस प्यार को व्यक्ति के लिये ही सीमित क्यों रखती हो? सारे आकाश को छोड़ कर प्रभा के एक नखत के लिये क्यों रोती हो? विभा की अंशुमाला छोड़ कर एक दीप-वर्तिका चाहती हो।

वह मेरी कुटिया में रात भर प्रकाश करेगा। तुम्हें चाह कर अब किसी और को चाहने की अधमता करूँ? एक पाप कर दूसरे की ओर लपकूँ? न-न मुझसे न होगा। तुम्हें प्यार करने का अर्थ जानती हूँ......अर्थ की संगति जानती हूँ। इसके बाद जो है केवल असंगति! मुझे क्षमा करो। तुम्हें पा गयी। तुम्हारी निकटता पाती रहूँ! यही परिपूर्ति मुझे तूफानों के बीच—तृष्णा के झंझावातों के

बीच अपना पोत खे ले जाने का बल देगी। तुम इसी को छीनना चाहते हो? कैसे निष्ठुर हो तुम......!

इसका अंत क्या होगा? एक मरुदेश छोड़ कर दूसरे में प्रवेश करोगी। मैं तुम्हारे प्रेम का प्रतिदान दे सकूँगा? मेरी ओर देखो! मैं विवाहित हूँ। अपनी पत्नी के प्रति मेरा कर्त्तव्य है। यथासंभव उसे पालने का यत्न करता हूँ। मुझे प्यार कर इस अभाव और अगति से तुम्हारी जान छूटेगी? न! न!! ऐसा न करो लल्ली! मुझे प्यार करने में कोई सार नहीं। प्यार केवल देना ही नहीं......पाना भी है। जहाँ पाने की गुंजाइश न हो वहाँ प्यार छलना है......अपने को उत्सर्ग करने का झूठा बहाना है। इस बहानेबाजी को आगे न ले चलो। यहीं पर खत्म कर दो। मेरे सामने मेरे प्यार को दफ़ना दो। जहाँ से कुछ पा सको......पोषक और बलदायक वहीं अपने मन को ले जाओ......

मुझे प्रतिदान की चिन्ता नहीं। मैं अपने को चढ़ाना चाहती हूँ। पर दूर......दूर, निकट से नहीं। निकटता मेरे लिये पाप है......हर विधवा के लिये पाप है। जो पुन्य है उसके पास मुझे चलने दो। उसे ठुकरा कर भागने के लिये मुझे विवश न करो। मैं तुम्हारी बात न टाल सकूँगी। तुम्हारे आदेश को न मानने का बल मुझमें नहीं रहा। अपने को मेट सकती हूँ तुम्हारी आज्ञा को नहीं। तुम्हारे सम्मुख एक दासी की तरह अपने को विवश मानने वाली इस अनुगामिनी को बाधित न करो। वायदा करो—मुझसे आज से इस प्रसंग में कुछ न कहोगे। मुझे अपने रास्ते धैर्यपूर्वक जाने दोगे। तुम्हारी यह अनुकृति मेरे जीवन का कफ़न बन जायेगी कफ़न!

मैं यह न कर सकूँगा। मैं तुम्हें जीवन के भीतर जलती प्रकाश देती देखना चाहता हूँ......जीवन की परिधि के भीतर जलती और प्रकाश देती शमा की तरह। वीभत्स धुँआ देती नहीं। तुम्हारे कहने पर मैं अपनी पुनीत प्रेरणा का गला न घोंट सकूँगा। तुम्हारी स्वीकृति

का दास होना मुझे मंजूर नहीं। जिस दिन तुम्हें अपने इच्छित पथ पर बढ़ता देखूँगा उस दिन अपने को सफल मानूँगा। यह झूठी समाज-पूजा किस काम की जहाँ आदमी अपने को उपलब्ध न कर सके? दूर—बहुत दूर की काल्पनिक छवि पर मुग्ध हो यथार्थ जीवन की गरिमा खो देने में कौन बुद्धिमानी है? संयम के नकली साँचे में जीवन भर अपने को ढाल-ढाल कर अंत में युग-युग तक अशांत रखने वाली भूख लेकर मर जाना......एक निर्जीवता का हाथ पकड़े-पकड़े ज्यों का त्यों, जीवन की एक भी कमनीयता का उपभोग किये बिना तृषित संतप्त उठ जाना......यह भी सराहनीय स्थिति है? मुझे प्यार करके भी तुम उससे मुक्ति न पा सकोगी। प्रेम के संसार में उषा को छोड़ कर मेरे साथ तुम्हारा अस्तित्त्व कहाँ है? कहाँ है वह प्रणय और वत्सल मिलन जो जीवन को सुख सौख्य की संज्ञा देता है। मुझे दूर का बन्धु समझो। जिसकी मृत्यु के बाद पहचान होती है......तब जिसकी याद में कुछ घंटे आँसू बहाए जा सकते हैं। पर जीवित दशा में जिसका स्पर्श भी अनुचित है। प्रेम का यह रूप आदर्श भले हो—सुनने में बड़ा भव्य देवत्त्वपूर्ण लगता है। पर उसमें यथार्थता की साँस कहाँ? मरी खाल की धौंकनी जैसी शक्ति भी उसमें नहीं। केवल अभिमानपूर्ण हृदय की कायरता......बिस्तर पर पड़े आँसू गिनते रहने का अवसाद। इस उद्भ्रांति और उद्वेग से अधिक क्या है उसमें? सिद्धांत का गौरव उसमें हो सकता है पर केवल आदर्श से भावना में लौ नहीं उठती......

क्यों नहीं उठती? इसे तुम रूढ़ि का अनुक्रम कहते हो। मेरे लिये यह जीवन्त वास्तविकता है। यही ममता मुझे अमरत्व की सार्थकता प्रदान करती है। जीवन के लिए मुझे विदेशिनी बनी रहने दो। इस रहस्य-सिंधु के पार वाले घाट पर मैं लगना नहीं चाहती। दिगन्त की निस्तब्ध नीली सुदूरता में मुझे अवगुंठित पड़ा रहने दो। इस अवगुंठन के भीतर तुम्हारी मूर्ति मेरे पास है जिससे बड़ा संबल किसी

युग में किसी विधवा को नहीं मिला। तुम्हें मैं अतिथि........चिर अतिथि के रूप में चाहती हूँ। हृदय के भीतर तुम्हारा स्पष्ट आभास पाती हूँ। लोभ की, लालसा की इस अर्चान्हीं चिड़िया को बंधनहीन रहने दो—अपरिचित रहने दो इस चिरन्तन वासना को........ अनुवर्तन का भार लेकर चलने वाला घिसा-पिटा पिंजरबद्ध जीवन मुझे नहीं चाहिए। मुझे नयी निष्ठा, नयी ज्वाला, नयी प्रेरणा नयी परिणति की अपेक्षा है।

सब कुछ नया नया! पुराना कुछ नहीं? नयेपन के मोह का यह दास्यभाव कब हमारे भीतर से जायगा? देख लो लल्ली। नयापन जीवन के लिये है.....जीवन नयेपन के लिये नहीं। जीवन का निषेध कर नयापन टिक नहीं सकता। नवीनता का मैं समर्थक हूँ। उसे जीवन का पूरक मानता हूँ। पर नवीनता में क्रिया होनी चाहिए—कर्म होनी चाहिए.....सबसे बड़ी बात है उसमें बलदाई कर्ता होना चाहिए। केवल रूढ़ि को लेकर बैठी रहोगी तो यह नवीनता खोखली दीमक चाटी लकड़ी की तरह निःसत्व हो जायगी। तब वह तुम्हें और जलाएगी.....तुम्हारे दाह को प्रज्वलित करेगी। तब वह अपने आधार पर प्रहार करने लगेगी......घातक बन जायगी।

मेरा कुछ न बिगड़ेगा। मैं ऐसी ही अकृतज्ञ अवगुंठित रहूँगी। तुम क्यों मेरे पीछे पड़े हो? भोगने दो मुझे यह निर्यातन......अभाव की ऊजड़ गुलामी! क्यों मुझको लेकर माथापच्ची करते हो? दूर जंगल की उमस भरी रात में झोपड़ी की दीनता में जलती दीपिका की तरह मुझे देखते चलो। तुम्हारी चितवन के तार के स्पर्श की अनुभूति संभव है मुझे प्रभात तक चला ले जाय। संभव है मैं बीच में ही बुझ जाऊँ। पर तुम क्यों मेरे लिये विचलित हो? जानती हूँ तुम्हें प्यार कर कुछ दे नहीं सकती......तुमसे दूर...दूर रह कर घुलती रहूँगी। पर मेरे पाने की सीमा नहीं। तुम्हें कुछ न देकर भी मैं बहुत कुछ पाऊँगी। वह मृत्यु के इस पार यहीं न छूट जायगा—

जीवन के उस पार जन्म-जन्म, युग-युग चलेगा। इतनी स्थूल दृष्टि न रक्खो भैया! तुम फिलासफर हो। तुम्हें इतनी अमर्यादित असौम्य, असहिष्णु दृष्टि शोभा नहीं देती। यह साधारण दुनियादार लोगों की चीज है। तुम बहुत ऊँचे हो......बहुत......

फिलासफी के सम्बंध में तुम्हारा ख्याल गलत है। मैं उस फिलासफी को नहीं मानता जो एक निश्चित समय की वर्तमान वस्तु-व्यवस्था के औचित्य के प्रमाण जुटाया करती है। उस फिलासफी का युग बीत गया। मैं उस फिलासफी का अनुयायी हूँ जो कोटि-कोटि असंख्य नामहीन क्षुधित, तृषित, पीड़ितों की सामाजिक मुक्ति का आह्वान करती है। मेरी फिलासफी 'न' को लेकर नहीं यथार्थ का 'हाँ' लेकर है जिसे जन-जन अपना कह कर पा सकता है—पाने के बाद उसे लेकर अविरोध आगे बढ़ सकता है। मेरी फिलासफी गतानुगति को चुनौती देती है......ये जो आज भिन्न-भिन्न विरोधी फिलासफी देख रही हो ये केवल तर्क या साधारण जीवन सत्यों की उपज नहीं। ये परस्पर घर्षण करती हुई सामाजिक शक्तियों की उपज हैं। कोई दर्शन – दर्शन के इतिहास का कोई अध्ययन, किसी भी व्यक्ति या काल विशेष के दर्शन का दिग्दर्शन जो सामाजिक क्रम और जीवन-व्यवस्था की अवहेलना करता है कभी विवेकपूर्ण नहीं कहलाता। यही कारण है फिलासफी का इतिहास यदि सही-सही दृष्टिकोण से देखा जाय अर्थात् मनुष्य के बदले हुए सामाजिक जीवन के प्रकाश में—तो ज्ञात होगा कि दर्शन सत्य—देह मांस-रूप-रस-गंध, गुण-हीन सत्य की खोज नहीं है—निस्संग निरावेग खोज। वह तत्कालीन सामाजिक प्रथाओं, संस्थाओं, परंपराओं पर प्रहार करने का या बाध्य परिस्थिति द्वारा होते रहने वाले प्रहार से उनकी रक्षा करने का साधन है। तेरे जीवन से मेरी दार्शनिकता से कोई सम्बन्ध नहीं। यह मेरे सामाजिक कर्म की पुकार है....मेरे अपनत्त्वपूर्ण वैयक्तिक दायित्त्व का बोध है यह जो मुझे चैन नहीं लेने देता। मैं बेबस हूँ!......

नहीं भैया ! बेबसी से तुमसे क्या सम्बन्ध ! कौन शक्ति है संसार संसार में जो तुम्हें लाचार कर सकती है। मैं तुम्हारी दृढ़ता को क्या जानती नहीं ! यह तुम्हारी करुणा है जो मेरे सम्बंध में इतनी उथल पुथल तुम्हारे भीतर मचाती है वर्ना कितने तूफान नहीं आये और तुम्हारे जीवन के ऊपर ही ऊपर निकल गये। मैं इस सब की पात्र नहीं। मैं इसी संघर्ष से जान बचाती फिरती हूँ। आज तुमने मेरे संघर्ष को तेहरा कर दिया—तीन गुना। तुम मुझसे अपने को विलग कर लेना चाहते हो। मेरी और दुर्दशा होगी। तुम्हारा कहना मान कर मैं शादी करूँगी—माता बनूँगी—गृहस्थी का रोमांस रचाऊँगी। पर क्या ईमान की रक्षा कर पाऊँगी ? तुम्हारे प्रति अविचल अहं में बँधा मेरा मन क्या पत्नी और माता-व्रत का पालन कर पायेगा। तब...तब मेरी और दुर्गति होगी। तुम्हारी पूजा करने का जो अधिकार मुझे आज है—इतने सामाजिक आचारिक बंधन के बीच जो सिर उठा कर चलता है वह क्या तब टिकेगा ? मेरी श्रद्धा साधना का यह पुनीत आविष्करण तब नष्ट हो जायगा। मेरे ऊपर वहीं तक दया करो जहाँ तक मैं सहन कर सकूँ। जो मेरी सहन के बाहर हो—जिसके भार से मैं खंड-खंड होकर टूटने लगूँ उस अनुकंपा से मुझे दूर रक्खो। इन्द्रियों का सुख मुझे नहीं चाहिए। तुम मेरे मन के सुख में व्यवधान न डालो। क्यों जागृति के महालोक से खींच कर मुझे मादक तंद्रा के क्रोड़ में डालते हो ? मैं नहीं चाहती मेरी बेहोशी की घड़ियों की उम्र बड़ी हो। तुम्हारे सामने होश और बेहोशी क्या ? पर तुम्हारे बाद...मैं पहले जैसी उच्चता की पलकों में समा जाना चाहती हूँ। भौतिक स्वतन्त्रता, निर्माण के छल के नाम पर मेरा लोक-परलोक न बिगाड़ो ! तुम्हें कुछ न मिलेगा पर मेरा सब कुछ बिगड़ जायगा। तुम्हारी आज्ञा न मानूँगी तो अपनी निगाह में गिरूँगी......तुम्हारी बात मान कर दुनिया की कलंक कालिमा बटोरूँगी।

तुम्हारा विवाह करना—मा बनना गौण है। मेरे सामने प्रमुख

है तुम्हारा मानवीय नव जन्म, तुम्हारे व्यक्तित्व का विकास, उसका मानवीय संस्कार ! मैं केवल चाहता हूँ तुम विधियों-निषेधों में न खोयी रहो। जीवन नकारों का बंडल नहीं है जैसा तुम सोचा करती हो। जीवन को उसके मुक्त रूप में अपनाओ ! आत्म-संताप और आत्म-नियंत्रण की दुनिया से बाहर आओ। इस विराट अंधकार से बाहर निकलो। तब दुनिया इतनी अजीबोगरीब न लगेगी। तुम्हारे मन में भय पैदा हो रहा है। यह सब आपसे आप बिखर जायगा तब ! सामने केवल स्वास्थ्य और समता की दीप्ति रहेगी। अपने अधिकारों में वह कभी तुम्हें न दिखेगी जो आज लग रही है। तब चाहे जो करना। चाहे जिसे प्यार करना—चाहे जिसे घृणा। मैं तुमसे कुछ कहने सुनने न आऊँगा। न जाने कहाँ होऊँगा। केवल तुम्हारी याद मेरे पास रहेगी......तुम्हारी याद मेरे पास! तुम किसी को कहीं बैठी सहारा दे रही हो यही मेरे संतोष के लिए काफी होगा। कम से कम अपने आँसुओं से बेकार अपना दामन तो न भिगोती होवोगी। मैं कहीं थका-हारा पड़ा रहूँगा। तुम्हारी आवाज मेरे कानों में गूँजेगी। तुम जीवन के साथ अधिकाधिक प्रसरणशील हो रही हो—यह अहसास मुझे कहीं भी किसी दशा में सुख शांति देगा। मेरे दिल में सच्चाई का सुरूर रहेगा—कर्त्तव्यपालन का सुखद सुरूर जो मुझे जीवन भर उजागर किये रहेगा। पर......यह सब तुम्हारे हाथ है। तुम अपने को प्रवंचना के जाल से निकालो......

सामने शरद्कालीन गंगा की धारा बढ़ी हुई थी। छोटी-छोटी डोंगियों में बैठे लोग जलमार्ग की सैर कर रहे थे। स्त्री-पुरुषों की सम्मिलित हास्य-ध्वनि से नदी का जल प्रकाशित हो रहा था। संध्या का घना अंधकार बीत चुका था। मुग्ध चाँदनी आकाश में उदित होने लगी थी। किनारे पर लगी लताएं संध्या की हवा से फूलों के दल के दल खोल कर परिपूर्ण सौरभ से पूरा घाट भर दे रही थी। सौरभ के परिपूर्ण प्रवाह में शांति का मन आपसे आप डूब गया।

उसका मन गंगा के जल पर तैरता दूर—सुदूर किसी अज्ञात स्वप्न-लोक को चला जा रहा था। सामने सड़क की ओर दोनो तरफ लम्बे-लम्बे नीम के पेड़ थे। चन्द्रमा की नवोदित किरणें उन वृक्षों की डालों के भीतर पत्तों से छन-छन कर इधर-उधर झाँक रही थीं। शांति कुछ न देख कर यही सब देख रही थी। बीच में जब उसकी दृष्टि चाँदनी से पीली पड़ी क्षितिज रेखा की ओर जाती तो उसे हल्का सा धक्का लगता—इस सीमाहीन सौन्दर्य की भी सीमा है जिसके आगे की दुनिया एक रहस्य बन कर अस्पष्टता में टँगी रह जाती है। उसी तरह उसके जीवन के चारों ओर भी एक घेरा है। कुहेलिका की इस पांडुर धूम्रवर्ण यवनिका के पीछे कौन सी मायापुरी है जिसका द्वार उसके लिये बिल्कुल बन्द है। पर जीवन का क्षितिज उसके गले से बिल्कुल सटा है—कितना पास है। चाँदनी के हृदय में भरा कंपन—प्रणय का अतिमंद गतिक्रम भी उसके लिये कितना वर्जित है। दोनों क्षितिज रेखाओं में कितना अंतर है। शरद् ऋतु की माधवी रात्रि में उसके लिये क्या सुलभ है क्या दुर्लभ है—क्या करणीय है, क्या अकरणीय वह जैसे जानती नहीं। यह जानना भी कितना पीड़ाप्रद है। इससे वह अज्ञान जब अपने मन के साथ उसकी विशेष जान-पहचान न थी कितना अच्छा था। विमल सहसा उठ बैठा। शांति पीछे-पीछे उठ कर चली। दोनों एक दूसरे से मौन थे पर मन के भीतर-भीतर कितनी बातें कानाफूँसियाँ कर रही थीं। सड़क पर सामने से साइकल पर आते हुए कमलाकान्त ने तुरन्त उतर कर नमस्कार किया। विमल ने कहा—कहाँ से आ रहे हो? कई दिनों से देख नहीं पड़े।

कल आपके यहाँ अपने को सोचा था पर इतना जरूरी काम आ गया कि रुक जाना पड़ा। आप किनारे से आ रहे हैं? चलिए न।

तीनों चल पड़े। कमलाकान्त ने शांति से कहा—आपने अपनी तस्वीर देखी या नहीं। 'लीडर' में निकली है। कल मैं दो प्रति लेता

आऊँगा। आप कहती थीं। आपका चित्र ठीक न आयेगा। पर वह इतना अच्छा आया कि तमाम लड़कियों को ईर्ष्या हो रही है।

विमल ने कहा—खूब। लड़कियाँ आपस में इतनी ईर्ष्यालु क्यों होती हैं? तस्वीर किसी की अच्छी आयेगी......किसी की खराब। पर किसी को लेकर किसी का मन खराब क्यों हो? तुम्हें खुशी होगी कमला। शांति अब आर्य-कन्या-पाठशाला में पढ़ाने लगी है। इसके माने यह हुए कि वहाँ भी इसकी अध्यापिका लड़कियों को इसके चित्र का इतना अच्छा खिचना बुरा लगा होगा। कल तुम एक कापी लल्ली की नजर करो। जब तक खुद न देख लेगी किसी की बात पर एतबार न करेगी।

आप लोगों ने उसे 'लोडर' में छपा दिया। मैं मना कर रही थी......छपाने के लिये न था।

'लीडर' के संवाददाता हमारे आयोजन में आये थे। उन्होंने आग्रह किया तब हम लोगों ने दे दिया—हर्ज क्या है। आप इतनी पीछे लड़कियों के बीच छिप कर खड़ी हैं कि कहने की बात नहीं। हम लोग चाहते थे आप गुरुजी के पास बैठतीं। शहर में किसी प्रोफेसर या प्रिंसिपल की पार्टी इतनी शानदार नहीं हुई।

इधर उधर की बातचीत के बाद कमलाकान्त ने शांति से कहा—आप हमारी 'सोशल-सर्विस-लीग' में कुछ काम कीजिये। गुरुजी आपकी तारीफें करते हैं। लड़कियों की 'वालंटियर कोर' का संगठन बिल्कुल नहीं हुआ। जो काम करने आती हैं उन्हें सेवा की प्रेरणा स्वतः नहीं रहती। हम लोग कहाँ तक उत्साहित करें? उन्हें 'मेकअप' से फुर्सत नहीं।

शान्ति के ओठों के दूरस्थ कोने पर हँसी फूट पड़ी। सरलता की जिस खीझभरी झुँझलाहट में उसने यह कहा था वह उसे विनोद से सिक्त कर गयी। बोली—वे आपकी रुचि और स्टेन्डर्ड के अनुरूप काम न करें तो आप उन पर यह अभियोग लगावें! कल मैं आपकी

कसौटी पर खरी न उतरी तो आप मुझ पर भी यह आरोप लगावेंगे। ऐसी सूरत में आप कैसे आशा करते हैं मैं आप लोगों के साथ काम करूँगी ?

विमल ने कहा—लल्ली ! ये सच्चे कार्यकर्ता हैं। मैं अनुभव से कहता हूँ। अब तक इन्हें जो लड़कियाँ मिली हैं, वे सब छात्राएं हैं। उनके लिये काम कम करना बात अधिक करना स्वाभाविक है। तुम जिस बात का जिम्मा लोगी उसे गंभीरता के साथ पूरा करोगी। तुम देखोगी सेवा में जो आनंद है वह संसार में कहीं नहीं सृजन के सुख के बाद कोई सुख है तो वह सेवा का सुख है। तुम जरूर इनकी लीग में काम करना। कमला ! तुम कल 'लिटरेचर' लेकर शाम को मेरे यहाँ आओ। सारी रिपोर्ट लेते आना। मैं लल्ली को काम करने के लिये तैयार कर लूँगा। मेरी बात नहीं टालेगी। तुम्हारी 'लीग' इसे पाकर गौरवान्वित हो जायगी।

आप व्यर्थ मेरी प्रशंसा करते हैं। जिससे देखिए उससे तारीफ के पुल बाँधने लगते हैं। आपकी आज्ञा है 'ज्वाइन' कर लूँगी। जो काम आप लोग बतायेंगे सब करूँगी। मुझसे अधिक आशा न बाँधियेगा। न अधिक पढ़ी-लिखी हूँ—न काम करने की क्षमता मुझमें है। थोड़ा-बहुत हो सकेगा करती रहूँगी। अपने स्कूल की लड़कियों और अध्यापिकाओं को भी खींचने की चेष्टा करूँगी। संभव है आप जैसे सुयोग्य सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को पाकर कुछ काम कर सकूँ।

जरूर कर पावोगी, लल्ली ! मैं तुम्हें जानता हूँ। कमला अभी नहीं जानता पर तुम्हारे साथ कुछ दिन काम करने पर जान जायगा। तुम्हारे भीतर जन-जागृति का आह्वान है। तुम पर मेरा जितना विश्वास है उतना संसार में किसी पर नहीं। कमला मेरे शब्दों का मूल्य जानता है। उसे पता है कि मैं ऐसी वैसी अनर्गल प्रशंसा किसी की नहीं करता। कमला कल...

शांति ने बात काटते हुए कहा—भैया ! इतना ऊँचा मुझे न

चढ़ाइये। ऐसी बातों से मुझे डर लगने लगता है। अपनी सीमित शक्ति के भीतर आपके आदर्श की रक्षा करूँगी। पर अपने को कभी इतनी सशक्त और गौरववाहिनी न समझ पाऊँगी। आप चाहेंगे एक शाखा स्कूल में खोल दूँगी।

विमल ने कहा—कमला! विद्यार्थी-जीवन और अध्यापनकाल में पचासों लड़कियों को मैंने देखा है। उनके साथ पढ़ने-पढ़ाने का अवसर मुझे मिला। स्वतः बुझा दिल लेकर औरों के भीतर प्रेरणा की आग लगाने की क्षमता मैंने किसी में नहीं पायी। अपने मन को ठीक करने में इन्हें कुछ समय लगता है। ठीक भी है। बिना समझे-बूझे किसी संकल्प-बंधन में बँधना अन्त तक निबह नहीं पाता। मैं चाहता था लल्ली दुविधा के बंधनों को त्याग कर्म के विस्तृत क्षेत्र में आ खड़ी हो। मुझे खुशी है तुमने बड़े मौके पर बात छेड़ी।

गुरुजी! मैं बराबर उस दिन से सोच रहा था। हमें एक ऐसी संगठन-कर्त्री की आवश्यकता थी। आपके मुख से इनके विषय में सुनते ही जान गया ये हमारी त्रुटियों को दूर करेंगी और अपने कठोर व्यक्तित्त्व की प्रभाव-शिखा अविरत रूप से प्रकाशित कर देंगी। आप मिस माया को जानते हैं? पहले वे इस कार्य का संचालन करती थीं। उनका उत्साह न जाने क्यों जाता रहा? मजदूरों की बस्ती-बस्ती में घूम कर उनके बच्चों को पढ़ाना और बीबियों को गृहस्थ-जीवन का आदर्श बतलाना उन्हें उतना रोचक न लगा जितना सिनेमा, पार्टी, डिनरडान्स। कभी 'सोसायटी गर्ल्स' से नियमित परिश्रम हुआ है?

आठ

शहर की 'सोशल-सर्विस-लीग' में काम करते-करते शांति के आहत भावों की कराह कम हो चली। स्कूल का काम करना और

शेष समय में 'लीग' के महिला-विभाग का संचालन। कर्म की अपूर्व मूर्ति उसके मन में जाग उठी थी जैसे बनराजि की श्यामलता में पूर्णिमा का अवदात आलोक शारद-विसंज्ञा भर-भर जाता है। उसके मन की आँखें धीरे-धीरे खुल गयी। उनके आकाश में स्फूर्ति की नयी आग लग गयी—एक अपरिचित चंचल पक्षी की तरह यह अनल-शिखा मँडराने लगी। जीवन में जो पहले अस्पष्ट छायामय था वह अब एक अर्थपूर्ण शुभ अभिप्राय से यथार्थ हो उठा है। विमल सब देखता है—समझता है और सुदूर भविष्य के लिये अपने मन में एक बड़ी आशा को जगह दे देता है। जिन बातों का ख्याल करके उसका मन पहले जल उठा करता था उन्हें सोच कर अब एक चिनगारी का अनुभव भी उसे नहीं होता। शांति उसके पास अधिक नहीं आती—अधिक नहीं बैठती पर उसे संतोष है। वह गतिमय जीवन के साथ बह रही है......अविकल बह रही है। पहले की जैसे अपने को अंदर अंदर कुरेदने वाली आत्मनिष्ठता को छोड़ कर वह अब बाह्मुख हो गयी है। विधवा के जीवन में विराट परिवर्तन है यह! विषाद के आँगन में आह्लाद की यह लहर! कैसे मादक, मधुर, शीतल तृप्ति-दायक संतोष का स्फुरण उसके भीतर हो रहा है। व्यक्ति-मानव के भीतर जब सामाजिक स्रोत बह चलता है तब उसके प्रवाह की अनु-कूलता असाधारण होती है। सामाजिक जीवन से दूर रह कर मानव का हृदय जीवन की असंख्य मिथ्याओं को मथ-मथ कर उनकी आयु बढ़ाया करता है। अनजाने ही उसके भीतर की असहिष्णुता पोषित होने लगती है। पर एक बार कर्म के जीवन-क्षेत्र में पदार्पण करते ही सारे दुखों दुर्भाग्यों को एक-एक कर भूल जाता है। इससे बड़ा अपने मन की वेदना का प्रतिवाद हो नहीं सकता।

आश्चर्य है, विमल जो सोचता है वैसा शांति अनुभव नहीं कर पाती। सारी दौड़-धूप और कठिन परिश्रम के बावजूद दिन रात मन-वाणी-काय से भगवान् से प्रार्थना करते रहने पर भी अपने को क्षमा

करने का बल नहीं पाती। उसे व्यथा होती है......बराबर होती रहती है। विमल के पास बैठने......निरन्तर उसका मुँह देखते रहने उसकी सेवा करने में जो आत्मिक उल्लास है वह अन्यत्र नहीं। लेकिन बराबर उसे लगता है आज जो कठिन जान पड़ता है वह एक दिन सरल हो जायगा। उस दिन के स्वर्णिम आलोकदानी उदय की प्रतीक्षा में वह चलती जाती है जब उसे तनिक भी क्लेश न रह जायगा। जब उसके भीतर का धीमा उजाला ज्वलन्त आलोक बन कर फूट पड़ेगा। पर वह आगे की बात है। जीवन-क्रम के सुव्यवस्थित और सहनशील हो उठने की बात है। इसके पहले उसे कितनी भीतरी अशांति थी। दिन भर की थकी मादी जब रात को लेटती है तब विमल की एक-एक बात उसके सामने साकार होकर आ जाती है। भैया के लक्ष्य की पूर्ति हो गयी पर उसका जीवन-देवता उसके जीवन से दूर पड़ता जाता है। उसका असंतोष क्रदन करने लगता है। नीले गगन की निराशा ज्यों की त्यों उसके जीवन में उतर आती है। सब कुछ करते रहने पर भी—सेवा की अधिकाधिक योजनाएं सफलीभूत करने पर भी दिल की उदास कोठरी का अभाव क्यों नहीं दूर होता...... अभाव की उजड़ी सूनी ऊष्मा ज्यों की त्यो रही आती है? कैसी धुँधली अस्पष्ट चंचलता है! जीवन की मशीन के पुरजों से बराबर टकराते रहनेवाली उसकी भावना की दुनिया क्यों रह-रह कर गन्दी हो उठती है। एक के प्रति निष्ठ होकर समर्पित होते रहने का जो सुख और मानसिक भराव होता है वह भी अब नहीं। कभी-कभी इतनी उबकाई आती है कि चारों ओर भूमि पर—आकाश पर—दिशाओं में सिहरन-भरी घृणा ही फैली मिली है। विचित्र विषमता है? भैया कहते थे इससे उसे सुख मिलेगा लेकिन वह जानती है उसके जीवन की संधियों में कैसी बेचैनी आ-आकर भरने लगी है। जो स्वप्न वह बराबर उठते-बैठते आठ साल से देखा करती थी और जिसमें वह अपने को प्रलय—पर्यन्त लीन कर देना चाहती थी—जो दिन में सूर्य

की ज्योति माला में—रात को चन्द्रमा की किरणों में परियों की तरह तैरा करता था वह कितना धुँधला होता जा रहा है। नींद से जाग-जाग कर जैसे गंगा की पावन लहरें रात में तरंगित होती हैं वैसी ही उसकी प्रेरणाएं, प्रेम-प्यासी भावनाएं टूटा करती हैं। अभी जुड़ती जाती हैं पर कब तक इस प्रकार टूट-टूट कर जुड़ती रहेंगी? तब...... तब......क्या होगा?

रात को आठ बजे जब शांति 'लीग' की कार्यकारिणी की बैठक समाप्त कर लौटी तब घर में प्रवेश करते ही हरी ने उछलते-कूदते कहा—दीदी! भाभी के लड़का हुआ है......छोटा-सा गोरा, गोरा, लाल-लाल। चलो न दीदी! देखें चल कर। हरी को प्रलोभन यह था—दीदी के साथ जायगा तो दुबारा देखने को नवजात शिशु उसे मिल जायगा। शांति का थका मन मुदित हो नाचने लगा। उसे दुख भी हुआ—आज वह दिन भर बाहर रही। जब बाहर रही तभी भाभी को प्रसव वेदना हुई। उसके आने के पहले ही उन्होंने शिशु प्रसव किया। एक नया छोटा भैया जो भाभी के भीतर उग रहा था आज सजीव साकार होकर आ गया। उन गौरवशाली क्षणों में वह भाभी के पास नहीं रही। वह बाहर घूमती रही......भाभी मा बन गयीं। शांति ने कमरे में जाकर कपड़े बदले और कूदती फाँदती हरी के साथ नीचे के कमरे में पहुँची। एक बार फिर उसका बचपन जाग्रत हो उठा। दरवाजे पर चाची बैठी 'रेड-क्रास' की नर्स से बात कर रही थीं। पीछे बहन की धोती का पल्ला पकड़े हरी खड़ा था। चाची ने कहा—पैर धोकर भीतर जाओ। बहू! देख लल्ली आयी है और आया है शैतान हरी! पावे तो कन्धे पर बैठा कर बच्चे को मुहल्ले भर को दिखा आवे।

भीतर से उषा ने कहा—आओ लल्ली! आओ हरी! चाची! तुमने उस वक्त हरी को डाट दिया। बच्चा हरी दादा का है। अब न डाटना।

चाची को चारो ओर वात्सल्य और स्नेह का सागर लहराता दिखायी पड़ रहा था। हरी को गोद में बिठा कर बोलीं—मैंने अपने हरी को डाटा नहीं था। बच्चे के आँख-कान में उँगली गड़ा रहा था। मैंने मना किया। जब बड़ा होगा तब हरी को दादा कहेगा...... है न हरी......

हरी ने उल्लासपूर्वक कहा—दीदी को ? दीदी को बुआ कहेगा पर भैया को क्या कहेगा। मैं जो कहूँगा उसे मानना होगा......है न चाची !

बहन के पीछे-पीछे कमरे में प्रवेश कर हरी कोने में खड़ा हो गया।

उषा ने कहा—आ नजदीक से देख ले। न ! गोद में अभी नहीं। अभी छूना नहीं होता। अछूत है यह। जरा बड़ा हो ले। तब तुम्हारी गोद में रहेगा। लक्षी की गोद में न रहेगा......तुम्हारे और ब्लेकी (हरी के कुत्ते का नाम) के साथ खेला करेगा।

शांति ने भोलेपन से कहा—क्यों नाराज है यह बिलौटा ? मैंने इसका क्या बिगाड़ा है। सो रहा है भाभी ! जगा दो न ! बड़ा सुन्दर है !

बिल्कुल तेरे जैसा—भाभी ने हँस कर कहा—अभी पिद्दीसा है—छोटा-सा। जब बड़ा होगा तेरे जैसा नट-खट शैतान होगा। है न हरी ! बैठो लक्षी। आजकल तुम्हारे दर्शन दुर्लभ हो गये हैं। मैं महीने भर इस कैद में रहूँगी। अपने भैया को देखना तुम ! सुबह से आज नीचे नहीं उतरे। चाय आज उन्हें नहीं मिली। तुम बना कर दे आओ। कह देना घूम आवें जाकर। कमरे में घुसे बैठे रहने से स्वास्थ्य खराब हो सकता है। चाची को मेरा काम देखने घर सँभालने से फ़ुर्सत न मिलेगी।

शांति एक बार भर नजर बच्चे को देख कर ऊपर की ओर चलीं। उसे मालूम है भैया आजकल अकेलेपन की किस भयंकर अवस्था में

हैं। एकाकीपन का यह भारवाही अवसादी संसार जिसमें अन्याय, अधैर्य, भय कायरता, उद्दंडता, अविश्वास और संदेह—कौन सा भावना का भूत नहीं लगता ? स्नेह और क्रोध, प्रेम और विद्वेष से भरा, एक साथ लबालब मन जब अपने को भूल जाता है......अपनी भूख-प्यास को भूल जाता है। एक विराट शून्यता......हाहाकारी विजनता में जब खोया रहता है। उनके जीवन में परिव्याप्त एकस्वरता......यह परिवर्तन हीनता शाप की तरह ऊपर मँडराती रहती है। कमरे में पहुँच कर देखा—विमल बैठा लिख रहा है। उसके मुख पर कठोर पीड़ा के चिह्न हैं। पत्नी की प्रसव-पीड़ा की तीखी भेदक चीखें उसके दुर्बल तन और मन को झुँझलाहट से भरे देती थीं। दिनभर ऊपर बैठा वह सृजन की विदारक वेदना को सुनता और गुनता रहा है। उसी की प्रतिच्छाया जैसे उसके मुख पर फैली हुई है। शांति ने कहा—भैया ! बंद करो लिखना पढ़ना। मैं चाय नाश्ता लाती हूँ। देर न लगेगी। क्या बताऊँ जरूरी बैठक थी—देर लग गयी।

विमल ने मुँह उठा कर कहा—तुम आ गयीं कौन कम है। यह 'पैरा' समाप्त कर लूँ। तुम तब तक चाय बना लाओ। चाची से पूछना—कुछ और चाहिए तो बाजार चला जाऊँ।

प्याले में चाय बनाते शांति ने कहा—चाची से मैंने पूछा था। कहती हैं—सब पहले मँगा चुकी हूँ। आठ-दस दिन बाद मेवा कम पड़ेगा तब देखा जायगा। नाश्ता नीचे भूल आयी। चाय पिओ—लेकर आती हूँ।

विमल ने कागज उठा कर एक ओर रख दिया। शांति के आने पर बोला—आज तुम्हारी भाभी मुक्त हो गयी। मैं अब इतमीनान से बाहर जा सकूँगा। कमला अच्छी तरह है ? तुम्हारी मीटिंग कहाँ थी ? उसके घर......

'लीग' के दफ़्तर में। स्कूल से सीधे वहाँ चली गयी। आई तो यह सुख-संवाद सुना। बड़ा सुन्दर बच्चा है भैया ! क्या तारीफ करूँ। बिल्कुल

तुम्हारे जैसा मुँह, कान, नाक, होंठ ! जैसे उजला-उजला कबूतर हो।

तब हो चुका ! मेरा शुमार तू सुन्दर में करती है। बड़ी अहमक है ! भाभी जैसा या अपने जैसा कहा होता तो बात थी। बहुत दुबला तो नहीं है ? तूने नजदीक से देखा होगा। उषा बड़ी निर्बल है !

नहीं भैया ! खूब तन्दुरुस्त है। जैसा 'ग्लेक्सो' के डिब्बे पर बना होता है। तुम देखोगे तो खुश होगे। मैं बड़ी लज्जित हूँ। आज कई दिन से भाभी के पास बैठ न पायी थी। सुबह से घर पर न थी। तुम चाय पीकर घूम आओ। शाम को घर बैठने में कोई तुक नहीं। मैं चलती पर दिन भर में आयी हूँ। भाभी के पास बैठूँगी। कपड़े पहन लो—जाकर हवा खा आओ। खाना यहीं लाकर ढँक दूँगी। जागती रहूँगी तो खुद आ जाऊँगी।

तुम चलो। आज किसी परम आत्मीय......बिल्कुल अपने...... भीतर बाहर से अपने की आवश्यकता है। मेरा दिल अनमनी अन-जानी बातों से भरा है। तुम रहोगी तो जी की बात कर सकूँगा। नहीं तो मन भरा-भरा रह जायगा। तिल भर खाली होने की नौबत न आयगी।

आज मैं न चल सकूँगी, भैया ! आपकी आज्ञा टालते बड़ा वैसा लगता है। आज मैं भाभी के पास बैठूँगी। उनके हृदय की भी यही दशा होगी जैसी तुम्हारे हृदय की है। तुम्हें बाहर एक दो मित्र मिल जायँगे जिन्हें तुम मन की बातें बता सको। भाभी को यहाँ कौन मिलेगा ? चाची से वे कहेंगी नहीं। मेरा यहाँ रहना जरूरी है। देर न करो। समय अधिक हो गया है।

विमल के चले जाने के बाद शांति फिर उषा के कमरे में घुस गयी। हरी बैठा भाभी से बात कर रहा था। शिशु को अब तक देखता भी जा रहा था। बार-बार उसकी इच्छा उसे छूने की होती थी पर भाभी के हुक्म की उदूली न कर सकता था। उषा उसे एक बार मना कर चुकी थी। उसके लिए यह मनाही काफी थी। बहन को आते देख

कूद कर उसके कान में बोला—दीदी ! भाभी से कह दो जरा छू लूँ। तुम कहोगी तो मान लेंगी। तुम न छूना ! तुम बड़ी हो। मुझे छू लेने दो। मैं बच्चा हूँ—मुझे क्या छूत लगेगी ? कह दो दीदी ! तुम कह दो। चाची नहीं हैं।

उषा ने कहा—घूमने चले गये ! यह बन्दर तेरे कान में क्या फुसफुसा रहा था। चाहता क्या है ? पैसे माँगता है ! ऊपर टेबिल की दराज में रक्खे हैं। दो आने ले ले !

तुम्हारे बच्चे को छूना चाहता है। इस समय झट बच्चा बन गया। कहता है—मैं छोटा हूँ......मुझे छूत न लगेगी। एक बार उसकी देह पर हाथ फेरना चाहता है।

आ फेर ले। जोर से न दबाना। आखें उसने खोल दीं। आ जल्द। बल्ब की ओर देख रहा है। तेज रोशनी से इसकी आँखों में चकाचौंध लगती है।

हरी शिशु की देह चुमकार-चुमकार कर हाथ फेरने लगा। शांति देर तक बैठी बात करती रही। खाना बना कर जब चाची आयी तब लौट कर वह अपने घर आयी। हरी पीछे-पीछे छाया की तरह लगा था। बहन के कमरे में पहुँच कर बोला—बड़ा मुलायम है दीदी ! रोयेंदार कुत्ते जैसा ? मेरा हाथ उस पर से फिसल-फिसल जाता था।

शांति चारपाई पर लेट गयी। उसका शरीर विश्राम चाह रहा था। हरी सामने बैठ कुर्सी से पैर फैला बहन की चारपाई पर रखता हुआ बोला—तुम्हारे कब होगा ऐसा बालदार बच्चा ! भाभी बार-बार छूने न देंगी। तुम्हारा होता तो क्या कहना था ! मैं चौबीस घंटे खिलाया करता। मुझे बड़ा अच्छा लगता है।

शांति ने शून्य दृष्टि से देख कर कहा—पढ़ता लिखता कुछ नहीं। दिन-रात पिल्लों साथ खेला करता है। कभी पढ़ने—लिखने की बात न करेगा।

हरी ने ठुनुक कर कहा—बोलो तुम्हारे कब होगा ? भाभी का पेट पचक गया दीदी ! तुम्हारे कब होगा ?

दीदी के बच्चा नहीं होता ! केवल भाभी के होता है। समझा ! फिजूल की बात न करना मुझसे। जा खा-पी कर सो।

हरी कुछ देर बाद चला गया। एक घंटे शांति अचेतन निस्पन्द पड़ी रही। उसे न जाने क्या पाया-पाया क्या खोया-खोया लग रहा था। चारो ओर फैली जेल की ऊँची-ऊँची चहारदिवारी में जैसे छेद हो गया था। उस छेद से देखने में दुनिया कैसी झिलमिलाती-झिलमिलाती दीख रही थी। छोटे बच्चे को देख कर उसकी एक बहुत पुरानी......बहुत पुरानी साध जो सदा को मिट गयी थी......फिर बन-बन आयी है। इस मरती और बनती साध की उदासी ! किताबों की बातों की दुनिया के पार आज उसने ऊसर-सी जिन्दगी में यह मृगजल......यह ओसिस देखा। उसके जीवन में यह नयी अनुभूति थी। हरी के जन्म का उसे होश था पर तब दुनिया दूसरी थी। जीवन को तहस-नहस कर देने वाला यह सैलाब तब न था......उसके जीवन में न आया था। भाभी के कोई संतान पहले न हुई थी। आज उसने जो यह ज्वलन्त अहसास पाया......एक स्वप्नभरी......उल्लासभरी जलती अनुभूति यह क्या है ? शान्ति का मन आज कहाँ उड़ा-उड़ा फिरता है। अपने भीतर कैसी विधायक शक्ति का अनुभव वह करने लगी है। पर मा बनने के पहले उसे अपनी शुचिता का हनन करना पड़ेगा। कैसा विचित्र विधाता का विधान है ? ईश्वर ने क्यों न उस जैसी बाल-विधवा के लिये दूसरा मार्ग निर्धारित किया। जीवन की इस अनुपेक्षित आवश्यकता का गला इस प्रकार क्यों घोंटा गया ? हृदय की स्पंदनहीन पर्त के नीचे जलने वाली—अकेली जलने वाली इस ज्वाला के लिये भगवान ने कोई लेप क्यों नहीं बनाया......जो इस आग का शमन करता......इस दाह को शीतल करता।

शांति उठ कर बैठ गयी। दरवाजे पर उसने विमल के आने की

आवाज सुनी। विमल चाची को दरवाजा खोलने के लिये पुकार रहा था। उसे याद आया—भैया को खाना खिलाना है। चाची दिन भर काम करते-करते थक गयी होंगी। चुपचाप उठी। आँगन के पास बीच का दरवाजा खोल कर विमल के आँगन में आ उई। विमल भीतर प्रवेश कर चुका था। चाची से बोली—तुम आराम करो। मैं भैया को खिला-पिला कर चली जाऊँगी। भीतर से ऊषा ने कहा—लल्ली! चाची बहुत थक गयी हैं। थाली सजा कर ऊपर दे आओ।

खाना खाते-खाते विमल ने गहरी भेदक दृष्टि से शांति का टूटे तरु की लुटी लता-सा खिन्न चेहरा देख कर कहा—खड़ी क्यों हो? मैं कुछ न लूँगा। जितना ले आयी हो मेरे लिये काफी है। बैठ जाओ। कितनी बार तुमसे कहा...मेरे सामने खड़ी न रहा करो। बैठ जाया करो। खड़ी रहने में क्या मजा मिलता है? दिन भर की थकी मादी होने पर भी......

शांति ने पीछे की कुर्सी आगे खींच कर कहा—कहाँ चले गये थे भैया! देर कर दी तुमने। ग्यारह बज रहे होंगे। घर से निकलते न थे......

तेरा मुँह इतना सूखा क्यों है? लगता है तूने खाया नहीं अभी। इतनी देर क्यों करती रही। नीचे से थाली में अपने लिये ले आ। यह हत्या का खाना मेरे गले नहीं उतरता।

घर में खा लूँगी। तुम्हें खिलाना-पिलाना था। अगर खा लेती तो सो जाती। अब खा कर इतमीनान से सोऊँगी। तुम्हारे आने की बाट देख रही थी। मुझे भूख भी नहीं लगी थी वर्ना खा लेती। जाऊँ पानी ले आऊँ—कहते-कहते शांति तेजी से नीचे उतरी। आज न जाने क्यों वह विमल के सामने शर्मा उठी है। रह-रह कर लज्जा की ऐसी मसलनभरी लहर आती है जो सम्पूर्ण शरीर को भीतर-भीतर लाल कर जाती है। भैया के खाना खाते ही वह अपने घर भाग जायगी।

विमल ने कहा—अपने शरीर की ओर इतना लापरवाह रहना ठीक नहीं लल्ली ! अंत में शरीर ही अपने काम आता है। तुम काम नियम से क्यों नहीं करती ? बच्ची नहीं हो—समझती हो सब।

तुम ! तुम अपना काम क्यों अनियमपूर्वक करते हो ? खाने पीने सोने जगने उठने बैठने का कोई समय नहीं। उल्टा मुझे स्वास्थ्य का नियम समझाते हो। विधवा का शरीर और रूप उसका शत्रु है। जितना उसे कुचल कर रक्खा जाय उतना अच्छा......

वही अठारहवीं सदी की बात। विधवा को सुख-दुख, शोक-आराम की चेतना नहीं होती ? क्यों ऐसी बात कर मुझे पीड़ित करती हो ? तुमको जो विधवा कहता है वह नारीत्व की परिपूर्णता का अपमान करता है। तुम न विधवा हो न सधवा। तुम नारी हो। जीवन के अंधकार को भेदने की शक्ति रखती हुई भी कृष्ण पक्ष की सकुची-सकुची छायी हुई चाँदनी की तरह ! यही तो सोचा करता हूँ। जो इतना रूप, गुण, उदार-हृदय लेकर संसार में भेजा गया वह बिना अपने किसी दोष के सिर पर भारी दुख का बोझ लाद कर क्यों दुनिया के बाहर ढकेल दिया गया। मेरी समझ में नहीं आता। जिनके पास तनिक भी समझ होगी उनकी समझ में न आयेगा। नासमझों की बात मैं नहीं करता।

अदम्य रुलाई का वेग शांति के ओठों तक आकर लौट गया। कुछ बोली नहीं। बोलने की इच्छा ही जैसे न हो रही थी। विमल खाना खा चुका था। शांति ने कहा—मैं जाती हूँ—तुम सोओ !

दस मिनट और। अधिक रुकने को तुमसे न कहूँगा। क्या हाल-चाल है तुम्हारी पूजा का ? भगवान् की आराधना करने का मौका मिल जाता है न ! इसलिये पूछता हूँ कि अब तुम्हें काफी काम करने रहते हैं।

भगवान् को लेकर शांति से प्रश्न किया जाय और वह उत्तर न दे यह असंभव है। बोली—तुम्हारी दी हुई प्रेरणाएँ मुझे उनके

श्रीचरणों के समीप लिये जा रही हैं। पहले उनकी स्तुति करते-करते कभी-कभी अचीन्हे आंसुओं के वेग से स्वर-भंग हो जाता था। आज तुम्हारे बताये पथ पर चलते-चलते मुझे लगता है—तुम्हारे हाथ से ही भगवान मुझे और मेरे काम को सार्थक बनावेंगे। मेरे भाग्य का विष तुम्हारे मन के बल से अमृत बन गया। पर......पर......

पर क्या? बोलो।—कहता-कहता विमल तौलिए से हाथ पोंछते हुए आराम कुर्सी पर लेट गया।

मैं समझ नहीं पाती......कुछ नहीं समझ पाती। किस राह के इरादे हैं ये जो मन की राह में आते-आते बिगड़ जाते हैं। जैसे जीवन का नष्ट-बुद्धि देवता अनोखे-अनोखे मज़ाक कर रहा हो। सचमुच भैया! मैं इस रास्ते चल कर शेष जीवन के तापभरे भूधर के नीचे सुख पा सकूँगी? कभी-कभी मुझे इसका उल्टा लगने लगता है? यह कल्याण और वरदान का रास्ता नहीं अभिशाप और सर्वनाश का रास्ता है। मेरे भगवान उस समय मेरा तिरस्कार करते हैं......मुझसे नहीं बोलते। और तुम! तुम बल तो देते हो—जितना चाहिए उतना देते हो पर बोलते नहीं। अबोले रह कर आकाश कुसुम-सी पूर्णता की साँस फूँकते हो।

सब मन का भ्रम है। मन के संस्कार मिटते-मिटते समय लेते हैं। मन के पराभव का मूल्य नहीं होता। होता है आत्मा के पराभव का। जो अपने जीवन की वास्तविक प्रेरणा पहचान लेता है उसकी आत्मा का कभी पराभव नहीं होता। आदमी का अपना ही संकोच उसे संकुचित करता रहता है। रास्ता तुम्हारे लिये है—तुम रास्ते के लिये नहीं हो। हमेशा याद रखना—उस समय विधवा सधवा का प्रश्न मन में न लाना। विधवा हो जाने से मांगलिक परम्परा नहीं बदल जाती। सृजन के सुख की पुकार नहीं बंद होती। ऐसे अवसर पर अपने उपर या भगवान के उपर कुंठित न होना। जीवन में कुछ भी अदेय अग्रहणीय नहीं। यही युग-युग की यथार्थता है।

क्यों मेरा अन्तःकरण लज्जाजनक आशंकाओं से त्रस्त होने लगता है ? क्यों गर्म शीसे जैसी लालसा पूरे शरीर में असह्य वेदना पैदा करती है। कुछ करती नहीं......कुछ पाती नहीं......बिल्कुल छूँछी अपने रास्ते चलती जाती हूँ। हृदय-तंत्री के बजते उन्मादी स्वरों में ऐंठन होती है--उनको मरोड़-मरोड़ कर फेंकती रहती हूँ। फिर भी विषैली अशुभ छाया उठते-बैठते पीछे लगी रहती है। कैसी-कैसी कलमुँही बातें करती है। दुर्भाग्य यह है कि जिसको लेकर यह सब कानाफूसी मेरे भीतर होनी चाहिए वह दूर......बहुत दूर रहता है। उसकी तन्मयता का दुर्ग नहीं टूटता......जो मेरा दूसरा हृदय है मेरे जीवन और एकांत का सबसे बड़ा साथी वह दूर-दूर रहता है। उसे जितना पहले पा लेती थी उसका एक अंश भी अब नहीं पाती। तुम मेरे मन की पीर क्या जानोगे ? जब प्यार के सुख का योग समाप्त हो जाता है तब कैसी निष्ठा ?

समझता हूँ लल्ली ! अपने प्यार की विवशता को देखो न ! उससे जो पाना असंभव है......असंभव है उसकी तृष्णा क्यों करती हो ? प्रेरणा बिन्दु बन कर उसे अपने जीवन में बसा लो। अधिक की न तुम्हें आशा करनी चाहिए न उमंग। जीवन का सत्यपट मानते हुए भी तुम्हें उस पर स्वप्न-रचना करने का अधिकार नहीं। वह अपने दायित्व से रुँधा है।

मैं उसे नहीं चाहती। मैं किसी का कुछ छीनना नहीं चाहती। पर उसकी अर्चा करने का अधिकार जब मेरे मन की चंचलता में डगमग होने लगता है तब कौन परिव्याप्ति मुझे प्राण बन कर जिलायेगी। मैं लड़ूँगी। अपने से बराबर लड़ूँगी। मेरे मन के दम्भ जलाने वाली प्रतिहिंसा मुझे चैन न लेने देगी। कितनी संतुष्ट साकार थी मैं। तुमने कौन-सा कैसा निराकार आक्रोश मुझमें भर दिया। जब तक ढो सकूँगी मन की व्यग्रता का बोझ ढोऊँगी। जिस

दिन विरोधी ज्वाला का सामंजस्य न सँभलेगा उस दिन तुम्हारे सामने आऊँगी।

× × ×

कमरे में पड़ी शांति जाग रही है। हृदय के धुँधले सिरे पर रात के सन्नाटे में ऐसी ही न सुनने वाली झंझा छा जाती है। नींद के गीत के स्वर जिसके भय के कारण आपसे आप भीत हो लौट जाते हैं। आज की झंझा कैसी निविड़ और आतंकोत्पादक है। कैसी माया है जिसके रहस्य में उलझती जा रही है। उसका जीवन किस मरीचिका में लय होता जाता है। शांति मानवी है......अस्थिर अपूर्ण मानवी। प्रति निमिष कसकते रहने वाले अन्तर में तृष्णा का कैसा बहाव है यह! आँखों में पूजा की अमर ज्योति लेकर भी वह कहाँ-कहाँ भरमायी फिरती है। जैसे उसके आगे पीछे किसी ने असंख्य दर्पण रख दिये हों और उसके प्रभाव......उसकी तृष्णा असंख्य प्रतिमूर्ति लेकर उसे घेरे खड़ी है। आँचल से आँखें ढक लेती है। शून्य शय्या पर एकाकी चाँद-सी गीली-गीली पड़ी रहती है। तृष्णा की प्रतिच्छायाएं गिन-गिन कर अपना प्रतिशोध चुकाती रहती है। उसका अपनापन मिटा जाता है......चाहे वह अपने जितने रूप बना ले... ...बनाती चले पर यह अलभ्य अपनापन......जैसे हाथ नहीं आता। कैसा लम्बा अनजाना पथ है। काँटों से भरापुरा जिसमें पग पग पर छलना है। इसे तय करना होगा। दिन भर जागते और रात को कभी सोते कभी जागते। ये साथ चलने वाली छायाएं! कहते हैं, ये अंधकार में साथ नहीं देतीं। ये तो अंधकार में और ग्रसती आती हैं। कितनी पारदर्शी होती हैं ये......सुख-दुख की परिधि को कभी एक नहीं होने देतीं।

शांति पड़ी-पड़ी भाभी की दिन भर की प्रसव-पीड़ा अपने मन में आँक रही थी। कैसी वेदना उन्होंने झेली होगी! फलस्वरूप उन्हें प्राण के दिगन्त तक को सुरभि-शिथिल कर देने वाला नवजीवन का

फूल मिला है उसकी तुलना में संसार की कौन उपलब्धि है। फूलों का जन्म भी तो शूलों की तीक्ष्णता में ही होता है। प्रस्तरों के चट्टानी अवरोध को तोड़ कर निर्झर का कलकल प्रवाह चलता है। आज उसके हृदय में जो संघर्ष हो रहा है उसी के भीतर उसे वह प्रेरक प्रबोध प्राप्त होगा—वह बलदायी विश्वास जो प्राण से प्राण को गूँथता है—जिसके खंड-खंड में पूर्णत्व की लय होती है। पर हो उल्टा रहा है। विमल को पाकर—उसकी छाया में बसेरा करने के बाद उसे कौन सी साध बाकी रह गयी थी। लेकिन विमल को उसके जीवन की मौन छलमयी मुग्धता से संतोष न था। उसने उसे कुरेद-कुरेद कर सपनों के आल बाल से बाहर निकाल यथार्थता के क्रोड़ में भेजा। यह यथार्थता कितनी कुरूप है। हृदय की सबसे सूक्ष्म तरंग, आत्मा की सबसे कोमल लहर इस रेत में खोई जाती है। बड़ी सोखने-वाली है यह उसासभरी सिकता। कैसा अनुवर्तित विषाद है! दोनों हाथ से इस रेत को उछालने वाली भावना की आँधी आती है पर उसका मन क्यों अनहोना और कठोर होता जाता है। जो संतोष और हार्दिक संपूर्ति उसे पहले मिलती थी वह अब क्यों नहीं मिलती। पहले उसकी बीते दिनों की याद और भविष्य की सुखद कल्पना में कोई मेल न था। अब वह कितनी भूखी निगाह से अपने जीवन की ओर देखती है। पहले की पहेली अब अनबूझी नहीं रह गयी। पहचान में वह आ गयी है लेकिन पकड़ में नहीं आती। पहचान की इस अवस्था से वह बेपहिचान का दुर्दिन कितना सलोना था! जब प्रतिमा को देख-देख कर पुजारिन फूला करती थी और पहचानी हुई वस्तु की पूजा-बेला ऐसे ही बीत जाती थी। आज पूजा का गौरव नहीं...... वह चन्द्रलोक सूर्य तारामंडल की सुषमा से मंदिर सजाने का ज्वलंत उल्लास नहीं। आज वह साधारण दुनियादार औरत है। पहले की जानी पहचानी साधिका नहीं जो प्राण की आरती लिये चौमुख घूमती रहती थी। जिसकी जलती बाती के हाथ में उसका सबसे बड़ा अरमान

शलभ की तरह दुलराया जाता था। आज वह क्या है ? उसके दृष्टि-कोण में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है पर अन्तर की व्यथा पहले से अधिक भीषण वेग से उमड़ती है। उसका साथी उससे धीरे-धीरे छूटता जाता है। अपने ही हाथों वह लुटती जाती है। उड़ते पंछी के पंखों की छाया थमाने की चेष्टा उसने की। पर अभी तक जो हाथ लगा है वह बड़ा फीका और अतृप्त है। कब तक वह कलिकाओं का मादक आह्वान ठुकरा कर निस्संगता के पाषाण पर सोयेगी ? और विमल ! न जाने क्या सोच कर उसने उसे भादों की घहराती गंगा जैसा भूखा मन लेकर विश्व-परिचय करने भेजा। इसीलिए कि आठ वर्ष में कण-कण कर जो इकट्ठा किया वह एक ही झटके में खो दे। क्यों उनसे मेरा यह छोटा सुख न देखा गया। दिन रात पुरुष के संपर्क में आते आते वह जान चली है—आकर्षण में कैसी आग होती है। कैसा कठिन होता है पुरुष की आँख का अंगारा। वह झेल ले जायगी। उसे अपने पर विश्वास है। पर यह संघर्ष कैसे छूटे। इसकी वेदना सहने के बाद दमन और निग्रह की सफलता कितनी विडम्बना-पूर्ण और विद्रूप लगती है।......नारी के जीवन का उद्देश्य क्या है ? सृजन-परंपरा को आगे बढ़ाना। जैसे दीपक को छूकर अनजले दीपकों की पूरी की पाँत प्रकाशित हो जाती है। सृजन की इस योजना में उसके लिये स्थान कहाँ ? इसकी साध भी इस हतभागिनी के लिये पाप है उसके पति के साथ उसके होने वाले बच्चे भी मर गये। उसी चिता में उनके कोमल गात जल गये। पूरी पीढ़ी की पीढ़ी जल गयी—नष्ट हो गयी। कौन है जो उसके भीतर की बेजली दीपमाला को आलोक-मंत्रित करे ? कहाँ है वह ! उसका पाना कितना कठिन है। उसको केन्द्र बना कर वह अपने को आवेष्टित कर सकती है ? क्या इतने बड़े अभाव के रहते जीवन में बढ़ा जा सकता है ? तन-मन की इतनी बड़ी अपूरित माँग लेकर जो मन के अंधकार को और भीतर ठेलती है खेल खेल में बच्चे के द्वारा घुमा कर फेंकी

गयी कंकड़ी जैसी इसकी तृष्णा थोड़ी-थोड़ी दूर जाकर गिर पड़ती है। वह अपनी तृष्णा को वश में करेगी। अपने चिरपूजित चरणों से अपने मनको वंचित न करेगी। क्यों और कैसे उनसे वंचित होगी वह! इसके लिये लम्बी जीवन-व्यापी आशा चाहिए। जीवनव्यापी ही नहीं जीवन के—मृत्यु के धुन्धों के पार जन्म-जन्मांतर तक चलने वाली। पर मन की अशान्ति? मार्ग में यह उड़ती हुई धूल जो अंधा बना देती है। सामने नदी की उमड़ी हुई अकूल सीमाहीन जल-राशि। उसके लिये खेवा बंद है। रह-रह कर वह शरण के लिये पुकारती है पर कौन पार लगावे? सभी मार्ग बन्द हैं। सत्य है...... अति सत्य है यह विभ्रांति। रह-रह कर उसका मन वेदना की आवृत्ति कर रहा है। उसके मन में आने वाला लालसा का कलुष......यह वासना की ज्वाला मंद पड़ जाती है पर आग्रह की अधीरता क्यों नहीं जाती। आत्मतृप्ति की स्वार्थपरता न होने पर भी किसी के चरणों पर रह-रह कर निवेदित हो उठने की कामना क्यों नहीं कम होती। अपने को दे डालने की......बिल्कुल गँवा देने की साध क्यों नहीं जाती। जब उसके मार्ग में पग पग पर प्रवृत्ति की बाधा पड़ने लगी है अपने सारे ज्ञान के प्रकाश में भी वह विश्वास और निष्ठा की दीप्ति क्यों नहीं पाती? क्यों मरीचिका के पीछे अंधी होकर मारी मारी घूमती है। कौन है उसके मन के भीतर जो उसके कातर आह्वान की पूर्ति करता है? कैसा व्यर्थ जीवन बिताने के लिये वह संसार में आयी है? कैसी तीव्र दाहिका शक्ति है! यह कहाँ की सर्वनाशी आग है जो उसके भीतर की गहरी श्रद्धा और विश्वास का अपमान करती है? शांति अपने चारो ओर बिखरे फैले मन को एकाग्र कर पड़े-पड़े दोनों हाथ जोड़ कर बार-बार प्रणाम करने लगी। वेदना-कातर हृदय से जब किसी को जी भर कर पुकारा जाता है तब वह अवश्य सुनता है......

नौ

कलकत्ते के एक प्रकाशक से विमल की पुस्तक के सम्बंध में बात चल रही थी। प्रकाशक ने विमल की 'शर्तें' स्वीकार करते हुए उसे महीने दो महीने के लिये वहाँ आकर रहने और पुस्तक अपनी देख-रेख में छपाने का अनुरोध किया है। नवजात शिशु अभी महीने भर का नहीं हो पाया पर उसके प्रति विमल की ममता का अंत नहीं। चाची को जैसे स्वर्ग का खिलौना मिल गया है। उषा केवल दूध पिलाती है बाकी काजल लगाने से लेकर सुलाने तक का काम वे करती हैं। विमल ने पत्नी और चाची को अपने कलकत्ते जाने की बात बताई। शांति ने सुना! बोली—भैया! यहाँ बैठ कर क्या आप काम नहीं कर सकते? प्रूफ यहाँ से भेज सकते हैं। वहाँ आपको तकलीफ होगी। भाभी आपके साथ जातीं तो कोई बात न थी। परदेश में......

उषा ने कहा—आराम तुम्हारे साथ जाने से मिलता। पर तुम ठहरीं अध्यापिकाजी! इतने लड़के-बच्चों को छोड़ कर कहाँ जाओ। चिट्ठी लिखती रहना। तुम्हारे भैया को कष्ट न होगा......

शांति ने कहा—लिखनी पड़ेगी। हर दूसरे दिन तुम कागज कलम लेकर बैठोगी। मैं इंकार कैसे कर सकूँगी। जब भैया की इतनी चिट्ठियाँ लिखा करती थी तब कैसे तुम्हारे काम से इंकार करूँगी! एक काम करो भाभी! बढ़िया सा मज़मून बना डालो। भैया हैं उसे सँवार देंगे। उसे छपा लिया जाय। झंझट करने की जरूरत न रहेगी। दो चार बातें जो हों उसमें जोड़ लिफाफे में रख कर रवाना कर देना।

उषा ने कहा—मैं चिट्ठी लिखने में विश्वास नहीं करती। विवाह के बाद भी मुझे यह शौक नहीं रहा जब स्त्रियों को रहता है। मैं इनके मन का वर्ण-वर्ण, अक्षर-अक्षर पढ़ चुकी हूँ। तुम जरूर लिखना वर्ना

थे दूसरे हफ्ते वहाँ से भाग आएंगे। कुछ विशेष नहीं लिखना है। जो बातें यहाँ करती हो वही चिट्ठी में लिखना है।

विमल ने कहा—यहाँ का हाल चाल मिलता रहना चाहिए। मेरा मन लगा रहेगा। मजबूरी है। न जाने से किताब देर में और अशुद्ध छपेगी। अपने सामने की बात और है। प्रकाशक को क्या? वह बेंच लेगा। पुस्तक में त्रुटियाँ रह जायँगी तो बदनामी मेरी होगी। 'टेकनिकल' किताब होने से बहुत सावधान रहना पड़ता है। चाची यहाँ रहेंगी। घर की ओर से मैं निश्चिन्त रहूँगा। किताब छपने में डेढ़ दो माह से अधिक न लगेगा। कोई बात आ पड़े तो दादा (शांति के पिता) हैं। सब प्रबंध कर लेंगे। उनसे मैं कह चुका हूँ। उन्होंने मुझे निश्चिन्त होकर जाने की आज्ञा दी है। कल 'मेल' से चला जाऊँगा।

दूसरे दिन शांति स्कूल नहीं गयी। दिन भर विमल के पास रही और घर का काम करती रही। लम्बा प्रवास था। विमल को जो लेना था—जिन-जिन चीजों की उसे आवश्यकता पड़ सकती थी उन्हें वह स्वयं न जानता था। शांति ने एक-एक कर सब सामना इकट्ठा किया और बाँधा। पैकिंग खत्म कर चार बजे जब उठ कर घर आने लगी तो हरी स्कूल से आकर विमल के कलकत्ते जाने की बात सुन कर कूदता हुआ आ पहुँचा। विमल जरूरी चिट्ठियाँ लिख कर और बची चिट्ठियाँ उस समय ही खत्म करना उचित समझ अपने काम में लीन था। हरी ने कुछ मिनट सहिष्णुतापूर्वक प्रतीक्षा करने के बाद अधीरतापूर्वक कहा—भैया! आप कलकत्ते जा रहे हैं। कहें तो मैं भी चला चलूँ।

शांति ने मुस्करा कर हरी को चुप रहने का संकेत किया—अपने होठ पर उँगली रख कर। विमल ने सिर उठा कर कहा—हरी कलकत्ते चलना चाहता है। लल्ली! इसे सूटकेस में रख दो। न जगह हो तो 'होल्डाल' में बाँध दो।

हरी ने सहम कर कहा—मैं सामान नहीं जो आप बँधवा रहे हैं। आपके साथ रहूँगा। आदमी बिस्तर में बाँधा जाता है ?

क्यों नहीं ! तू भी सामान है। मूर्ख कहीं का ! मैं घूमने जा रहा हूँ जो आकर अपने चलने की बात पेश कर दी। दो चार दिन के लिये जाता हूँ जो चलेगा ? कोई चीज चाहिए तो मुझे लिखना। लेता आऊँगा। जा खेल ! मुझे काम करने दे।

हरी उदास मुँह लेकर नीचे चला ! भाभी दालान में टुन्ना को गोद में लिये बैठी थी टुन्ना नाम हरी का रक्खा हुआ था। हरी बगल में जा दुबक कर बैठ गया और बच्चे के सिर पर हाथ फेरने लगा। भाभी ने कहा—तूने टुन्ना को कल मारा है ?

मैं उसे प्यार करूँगा या मारूँगा ?

मुझसे कान में कह रहा था। वह झूठ नहीं बोलता। तेरी तरह झूठा नहीं वह ! जरूर तूने मारा होगा। कहता था—चाचा ने थप्पड़ और घूँसे मारे हैं। मैंने उसे मना कर दिया। कहीं तेरे भैया से कहता तो तेरे ऊपर कितनी मार पड़ती।

हरी को लेने के देने पड़ गये। देखने में टुन्ना मटर के बराबर है पर कितना पाजी है। कैसी झूठी बात अभी से करता है। इससे दूर रहना अच्छा है लेकी इससे कितना अच्छा है। कभी कोई शिकायत नहीं करता चाहे डाटो—चाहे मारो। हरी उठ कर जाने लगा। उषा ने मन ही मन हँस कर बुलाया—सुन ले। तुझे टुन्ना बुलाता है। गोद में ले। कहता है—इस बार चाचा को माफ किया। आगे से मुझे न मारें।

हरी खुश हो गया। पर शिकायत की ग्लानि अभी मन से न गयी थी। बहुत सावधानी से डरते डरते टुन्ना के शरीर पर हाथ फेर रहा था। इस बदमाश का क्या ठीक ! फिर झूठ शिकायत कर दे। उषा ने कहा—डरता क्यों है ? बदन पर हाथ फेर ले। खूब खिला ले। बैठ गोदी में लेकर मैं ऊपर सामान ले जाती हूँ। गिराना मत।

हरी के लिये धर्म-संकट था। देखने में इतना मुलायम रुई पर भीतर से कितना झूठा पाजी। बच्चा आँखें खोले टुकुर-टुकुर उसकी ओर देख रहा था। हरी ने चुमकियाँ लेते हुए गाना शुरू किया—

टुन्ना मेरा बड़ा सयाना
टुन्ना है घर भर का नाना
टुन्ना है झूठा शैतानी
पीता दूध—बताता पानी,

उषा ने विमल से पूछा—चाय बना लाऊँ? खाना तैयार कर लिया है। खाकर जाओगे या रास्ते के लिये रख दूँ।

शांति बैठी विमल के धुले कपड़ों के टूटे बटन देख-देख कर नये लगा रही थी। आज महीनों बाद वह फिर पहले जैसे शांति हो गयी है। वैसी ही निर्विकार, अचंचल, स्नेहाकुल वत्सल। सुबह से विमल की यात्रा की तैयारियाँ कर रही है। ढूँढ-ढूँढ कर घर भर में उसकी बिखरी चीजें इकट्ठी की हैं विमल को वहाँ किन-किन किताबों पत्रिकाओं की आवश्यकता पड़ेगी सब उसने इकट्ठी की हैं। कपड़े धोबी के यहाँ से मँगा कर सूट-केसों में भरे हैं। ट्वाईलेट की सामग्री अलग अटैचियों में सजा कर रक्खी हैं। ऊषा को न यह सब करने की फुरसत रहती है, न इच्छा। जब जब विमल की यात्रा होती है ऊषा को ही करना पड़ता है यह। विमल ने पत्नी की ओर मुंह कर कहा—चाय ले आओ। खाना साथ के लिए रख दो। टिफिन कैरियर में नहीं मामूली टोकनी में। रास्ते में खाकर टोकनी फेक दूँगा। टिफिन कैरियर कहाँ लादता फिरूँगा। हाँ लल्ली! एक चीज मैं भूल गया। उस छोटी टेबिल की दराज़ में कुछ नोटस् रक्खे हैं, पेंसिल के लिखे—वे जरूरी है। लेटर पैड, नाम के लिफाफे रख दिये न। वहाँ कहाँ छपवाऊँगा।

रख दिये। नोट्स रक्खे देती हूँ। सोच लीजिये! गाड़ी रवाना होने के बाद आपको घर पर भूली चीजों की याद आती है।—शांति

ने झपट कर छोटी टेबिल का दराज खोलते कहा। उषा चाय बनाने नीचे जा चुकी थी। हरी अब तक बच्चे को गोद में लिये खिला रहा था। भाभी को देख कर मुँह बनाते हुए बोला--छटा बदमाश है! लो इसे। मेरे ऊपर पेशाब कर दिया। उल्लू......

उषा ने हँस कर कहा—तेरे ऊपर करेगा ही। तू उसे मारेगा वह पेशाब भी न करेगा। पलने पर धीरे से लिटा दे। कोई हर्ज नहीं है। अपने लड़के का पेशाब है। मैं कमीज धो दूँगी। तेरे भैया के लिये चाय तैयार कर लूँ—तू भी पीना।

हरी को चाय से प्रेम है। मुश्किल यह है कि उसके घर में बनती नहीं। कोई पीता नहीं। भैया के पीने का समय वह जानता है। मौके से पहुँच जाता है। एक दिन घर में चाय बनाने की मा से उसने फरमाइश की थी। पर ऐसी डाट पड़ी कि भागते ही बना। चाय के साथ खाने को भी मिलता रहता है। हरी को और क्या चाहिये। बोला—भाभी! मैं कमीज बदल आऊँ! तुम क्यों धोवोगी। कल परसों धोबी आवेगा। मैं अभी आता हूँ।

जल्दी आ। टुन्ना के पास बैठ। तुझे निहार रहा है।

ऊपर शांति सब काम खतम कर सिर झुकाए फर्श पर बैठी थी। विमल ने अंतिम पत्र समाप्त कर घड़ी की ओर देखा और कहा—मैं जाऊँ लल्ली! तुम उदास मालूम पड़ती हो। सिर क्यों गड़ाये हो? शांति ने सिर उठा कर कहा—मेरे मना करने से रुकोगे नहीं। जाना जरूरी है। मैं कहाँ तक मना करूँगी? मैं कब तक तुम्हें रोकती फिरूँगी। कौन होती हूँ मैं......

तुम सब कुछ हो। इस तरह मन ढीला करने से काम नहीं चलता। मेरा पता 'ड्रायर' में रक्खा है। कोई उलझन मालूम हो लिख भेजना। मैं दूसरी ट्रेन से चला आऊँगा। तुम्हारी भाभी चाची को तुम्हारे भरोसे छोड़े जा रहा हूँ...। इन लोगों की देखभाल का भार तुम पर रहा। मेरी दूसरी किताब तैयार है। वह भी छपने

लगी तो एक दो महीने और लग जायंगे। रुपये वहाँ से भेजता रहूँगा। कुछ उषा के पास हैं। काम चलता रहेगा। तुम्हारे भरोसे घर छोड़कर निश्चिन्त रहूँगा।

शांति की छाती भीतर-भीतर अलक्षित अभिमान से फूल उठी। तन कर बोली—आप जाइये। अपना काम करिए। यहाँ आपके लायक लाइब्रेरी भी नहीं है। घर की चिन्ता मेरे ऊपर रही। रुपये-पैसे की फिक्र न करिये। यहाँ कोई काम न रुकेगा। दादा अम्मा हैं। मैं कमाती हूँ।

उसी वेग से•••वैसे ही विमल का अंतर फूल उठा। उसके ओठ पर मुस्कान खेल उठी। पर हल्की हल्की......बड़ी हल्की। जिसका पता न लगता था कि ओठ पर है अथवा आँख पर। नारी का उपार्जनशीलता का अहं आज उसे विचित्र मुद्रा बनाये अपनी ओर घूरता-सा लगा। ठीक कहती है। उसकी लल्ली अवसर पड़ने पर साल छः महीने उसकी पत्नी-बच्चे को सँभाल सकती है। पुरुषत्व के अभिमान के प्रतिकूल होते हुए भी कैसा बड़ा संबल है यह। उसका मस्तक ऊपर उठा देने के लिये क्या काफी नहीं यह!

शांति ने कहा—तुम पास रहते थे तो मैं अपने और अपने भाग्य की ओर से निरद्वंद्व रहा करती थी। कोई चिन्ता मन में स्थान न पाती थी। अब तुम दूर जा रहे हो—अनिश्चित समय के लिये। तुम्हारे पास रह कर कुछ भी सोचती करती पर मेरी शुचिता की मर्यादा भंग न होती। अब तुम्हारे जाने के बाद मेरी वेदना......कैसी निष्ठुर हो जायगी......कह नहीं सकती। जब देखूँगी अपने सँभाले नहीं सँभलती तो तुम्हें पुकारूँगी। तुम्हें न पुकारूँगी तो किसे पुकारूँगी?

नीचे से उषा ने पुकारा—लल्ली! चाय ले जाना बेटी! टुन्ना रो रहा है। उसे सुला दूँ तो आऊँ।

शांति मुख पर छाये उद्वेग के सारे चिन्हों को यथासम्भव दबाती

नीचे उतरी। हरी तरह तरह से टुन्ना को पुचकारने खिलाने की कोशिश कर रहा था पर वह मानता न था। शांति ने भाभी के हाथ में से ट्रे ले ली और ऊपर चली। विमल ने कहा—यह टुन्ना भी चिन्ता का कारण रहेगा। बच्चों को एक न एक लगा रहता है। चाची हैं इसलिए सब सँभल जायगा। एक प्याला तुम पी लो लक्ष्मी। आज मेरे साथ।

शांति ने देखा—विमल निष्काम मन से जा नहीं पा रहा है। घर-गृहस्थी का मोह उसके कठोर मन को भीतर-भीतर दूर तक आबद्ध कर रहा है। एक प्याला चाय बना कर तश्तरी से दो खस्ते उठाती बोली—यहाँ सब ठीक होगा। पर......पर जो सबसे चिन्तनीय है··· जो तुम्हारे आश्रय पर बराबर भूलती है जैसे उसकी तुम्हें चिन्ता नहीं। मेरा क्या होगा......मैं कैसे रह सकूँगी। मेरी जैसे तुम्हें कोई ममता नहीं। तुम्हारे जाने पर मैं अपने हृदय के सामने प्रतिक्षण किसकी दुहाई दूँगी? जो बात आज तक तुम्हें पूरी तरह जता न सकी वह उठते बैठते मेरे प्राण को काटेगी।

मैं क्या जानता नहीं तुझे! पत्थर की मूर्ति की तरह कठोर पर दूसरे क्षण अत्यन्त स्नेह की दृष्टि से देखकर विमल ने कहा—तेरे भविष्य को लेकर चिन्ता करूँ इतना अंह मुझे नहीं। मैं अपनी परिमिति और उसके सुख को जानता हूँ.......जानता हूँ तेरे भीतर चैतन्य और आत्मानुभव की अपरिमेय निर्ममता है। उसके रहते कोई तेरे पास हो न हो तुझे शंकित नहीं होना। बराबर अपने कर्तव्य का पालन करना जो काम अपने ऊपर ले लिया है—लीग का—उसे पूरा करना। जिस क्षण तुम्हें जान पड़े अपने कर्तव्य की पूर्ति हार्दिकता के साथ नहीं कर पा रही हो उस क्षण उस काम से अलग हो जाना। केवल ऊपरी दिखावे और किसी मित्र के आग्रह में आकर उसमें न रहना। रह गया मैं......मैं तुम्हारा ही हूँ......बिल्कुल तुम्हारा...... तुम्हारा ही...तुम्हारा ही। जीवित तुम्हारा...मरने पर तुम्हारा...

तुम्हारा। दूर रहूँ या पास रहूँ। शरीर तुम्हारा नहीं......मेरा भी नहीं। पर यह अकंपित मन......इसे कौन लेगा? इसे धारण करने की शक्ति किसमें है? इसे वही वरण कर सकता है जो अपनी खंडित आत्मा के काले भूत की प्रताड़ना उठते बैठते भोगता है। उसी के अविनाशी प्राण में ये प्राण बँध सकते हैं।

कैसे उद्दीप्त रुलाई आकर शांति के कंठ में घुमड़ने लगी। इस प्रयाण-बेला में आँसू बहाकर वह अपने देवता का अमंगल न चेतेगी। वह जानती है आँसू बहाने पर अभिशाप बन जाते हैं...घुटकने भर··· भीतर-भीतर जज़्ब कर लेने पर आशीष। आज वह आशीष देगी।

विमल ने घड़ी देख कर कहा—हरी को बुला, जाकर ताँगा ले आए। टाइम हो रहा है। उषा नीचे क्या कर रही है?

शांति ने नीचे उतर कर हरी को भेज दिया। उषा पड़ी शिशु को दूध पिला रही थी। सोते-सोते भी वह मा से अलग न हो रहा था। शांति ने कहा—भैया जा रहे हैं। समय हो गया है। बुला रहे हैं।

चलती हूँ—कह कर उषा ऊपर चली गयी। सामने आलमारी पर रक्खे बड़े शीशे के सामने शांति ने अपना चेहरा देखा। अनिर्वचनीय आभा से वह प्रोज्ज्वल था। उसके सारे निष्फल पीड़न और आत्म-दहन का अंत हो गया है। जैसे सान्ध्य-दीप में नीरव राग जागता है......जैसे ध्वनि की नीहारिका से कंपित होकर असीम आकाश जाग उठता है वैसे ही जाग्रति का स्पर्श-मणि आज शांति के कुहेलिकामंडित हृदय से छू गया है। कौन है संसार में जो उसे असम्मानित करेगा? इतना बड़ा महाशक्ति का हिमालय अपने पास रख कर भी क्या वह अशोभित मानेगी अपने को। बुरी-बुरी भावनाएँ मन में उठा करती थीं। कैसा मोहक परिपूरक आनुकूल्य आज उसके तन-मन में व्याप्त है। सुख का—आत्मिक स्थिरता का कैसा कौतुक-नाट्य उसके जीवन पर आज हो रहा है। विमल का अपनत्व निकटता में

जितना सीमित और कठोर था सुदूरता में—वियोग की मूर्त ज्वाला में उतना ही परिपूर्ण और मधुर हो गया। कैसी स्निग्ध परिपूर्ण प्रशांति है! किस विराटता ने......किस ईश्वरता ने उसके घायल हृदय को—प्राण को संपूर्ण जतन से उठा कर गोद में रख लिया है। भाभी ऊपर गयी हैं। जानती है उसका वहाँ रहना ठीक नहीं। पर घर जाते भी अभी नहीं बनता। ताँगा आता होगा। भैया का सामान ऊपर से नीचे उठा कर लाने में एक सुख है जो वर्ष में एक दो बार मिलता है।

ऊपर विमल ने पत्नी को हृदय लगा कर कहा—तुम्हें असुविधा लगे तो लिख देना! मैं फौरन चला आऊँगा। तुम्हें पीड़ा हो रही होगी। विवाह के बाद एक दिन के लिये भी नहीं जुदा हुआ।

उषा ने पति के निश्वासों की व्रीड़ा से लज्जित कपोलों को आँचल से पोंछते कहा—लल्ली आना। तुम्हारे भैया की कवित्व शक्ति में अद्भुत बाढ़ आयी है। तुम्हारी जरूरत है इस समय। चिन्तित तुम्हारे भावी विरह की आशंका से हैं मन मेरा बतलाते हैं।

विमल ने खड़े होकर पत्नी के कंधे पर अपना सिर रख दिया। भीतर-भीतर वह पत्नी के स्वर्ण-चन्द्रायुक्त मन की महिमा पर—उसकी निष्कपट स्नेहसिक्तता और शांति के प्रति प्रगाढ़ अनुराग पर मुग्ध हो रहा था। स्त्री का मन कितना उदार और अपरिमेय हो सकता है यह उसने पिछले कई वर्षों से बराबर अनुभव किया है। उसकी पत्नी ने उस दशा में जब अधिक पढ़ी लिखी नहीं कहाँ से यह उच्चता और पतिनिष्ठा पा ली। कभी स्वप्न में भी शांति को लेकर उसके हृदय में अपवाद नहीं उठा। मन ही मन पत्नी पर रीझता हुआ विमल स्तब्ध प्रेम निमग्न खड़ा रहा। उषा का मन स्वामी की मंगल-कामना में डूब उतरा रहा था। नीचे से हरी ने आवाज लगायी—भैया! ताँगा आ गया।

विमल ने पत्नी का महीनों बाद प्रथम और अन्तिम चुम्बन लेकर

कहा—मैं चला। चाची की किसी बात को लेकर मन भारी न करना—न लड़ना झगड़ना। उनकी हर आज्ञा का पालन करना। जो कहेंगी अपने भले के लिए कहेंगी। मेरी चिन्ता न करना। मैं जहाँ रहूँगा—सुखी रहूँगा।

'यही चाहिए' कहते-कहते गहरे आवेग से उषा ने स्वामी के हाथ अपनी मुट्ठी में दबा कर छोड़ दिये। सीढ़ियों से शांति ने कहा—सामान लेने आती हूँ भैया! हरी ने समझदारी की है अपने साथ मजदूर बुला लाया है। देर न करो। समय हो रहा है।

उषा ने हँस कर कहा—भाई भाभी का यह लिहाज। वाह मेरी लल्ली!

ताँगे पर सामान पहुँच गया। विमल ने पाँच रुपये का नोट निकाल कर हरी को दिया—एक रुपया तू लेना। चार लाकर लल्ली को देना। समझा! बेईमानी न करना।

हरी ने नोट पाकेट में रख कर कहा—टुन्ना! उसे भी कुछ दीजिए। एक चवन्नी उसे दे दूँ। पौने चार दीदी को। उसे आपने कुछ नहीं दिया।

विमल हँस पड़ा। उषा ने कहा—चालाकी देखो। टुन्ना के नाम पर चवन्नी खुद लेना चाहता है—लल्ली के रुपये से काट कर। यह नहीं कि अपने रुपये से दे। धूर्त है पक्का।

चाची से पाँच मिनट बात कर उनके पैर छू विमल चल पड़ा। जब तक ताँगा दिखायी दिया शांति और उषा टक-टकी लगाए देखती रहीं। हरी नोट भुनाने जा चुका था। फौरन शांति को चार रुपये देकर बोला—लो अपने रुपये। भैया ने मुझे कम दिया। चाहिए था—दो मुझे देते—तीन तुम्हें। मैं कुछ बोला नहीं। चुप रह गया।

'ले जा सब!' खीझ कर शांति ने कहा—बनिया कहीं का। हरी चार रुपये जेब में रख कर चलने लगा। उषा ने कहा—ला इधर।

लल्ली के रुपये। इतना सा छोकड़ा पाँच रुपये लेकर चलेगा। क्या करेगा इतने रुपये! ले लल्ली! अपने रुपये—कहीं फेंक देगा।

लल्ली ने रुपये लेकर आँचल के खूँट में बाँध लिए। हरी कूदता फाँदता बाहर निकल गया। शांति धीरे-धीरे उठ कर घर आ गयी। एक विचित्र सन्नाटा छा गया जैसे चिर-मुखरित महाप्राण निकल गया हो।

रात को शांति खा पीकर किताब पढ़ने की कोशिश करने लगी। पढ़ने में मन न लगता था। भैया ट्रेन में अकेले बैठे चले जाते होंगे। एकाकी.......बिल्कुल एकाकी। रास्ते में उनका जी ऊब रहा होगा। वे भी ऐसे उदास होंगे। ऐसा ही प्राण को काटने वाला सूनापन अनुभव कर रहे होंगे। कितनी लम्बी यात्रा है! थकाने वाली...... तन-मन पर क्लान्ति बन छा जाने वाली। कहाँ जाएँगे—कहाँ ठहरेंगे – क्या खाएँगे – कैसे रहेंगे। लल्ली के बिना एक दिन उनका काम नहीं चलता। कहाँ मिलेगी वहाँ लल्ली? आज उसे लगा वह कितनी परवश है। यदि वह भैया के साथ जा सकती। कितनी सुखी संतुष्ट होती वह। वह पड़ी रह गयी। उसके जीवन के अधिनायक चले गए। वह यहीं बैठी रह गयी। दिन भर काम में फँसी रहने के कारण यह कचट नहीं अनुभव हुई जो रात की इन एकाकी घड़ियों में काट रही है। कितना बड़ा आश्वासन था उनकी निकटता का...... कितने बड़े बल की प्रेरणा उनका साहचर्य उसे प्रतिक्षण दिया करता था। चलते-चलते उन्होंने जो कहा......जो उनके गंभीर हृदय का उद्‌गार आज उसने सुना वह कितना अपरिमेय है–उसकी पूर्ति का प्रवाह कितना अपरिमेय है। आज उसके प्राण की वेदना अनजानी और अस्थिर नहीं। चिर पहचानी इस छोर से लेकर उस छोर तक लहराने वाली है। पर उसका दायित्त्व भी कम नहीं। उसके भैया जो भार उसके ऊपर डाल गये हैं उसे पूरा करेगी वह! भैया की कई किताबें निकलने वाली हैं। उन्हें लौटने में कई माह लग सकते हैं।

कितना नाम होगा उनका। देश-विदेश में उनका यश छा जाएगा। कितना परिश्रम उन्होंने किया है। अपने को ख्याति के प्रकाश से छिपा कर रखने वाली साधना अब समुचित आदर पा सकेगी। वह जानती है उनकी किताबें पहले निकल जानी चाहिए थीं पर भैया को अपने प्रति......अपने नाम के प्रति रहने वाली उदासीनवृत्ति के कारण यह देर हुई। उन्हें रुपये की जरूरत न होती तो काहे को ये किताबें मुद्रण का आलोक देखतीं। शांति को देर तक नींद न आयी। कैसे सोवे वह जब भैया यात्रा में परिश्रांत पड़े जाग रहे होंगे। उसका सोना-जागना कौन मूल्य रखता है इस विराट चक्र के परिचालन में। किसे उसकी व्यथा होती है......किसे......

दस

कमलाकान्त ने कहा—जिनके लिये हम लड़ते हैं इतनी तकलीफें उठाते हैं उन्हें हमारी क्या परवा है? हमारे भीतर सेवा की आग लगी है—समाज के उज्ज्वल भविष्य में हमारा विश्वास अदम्य है इसीलिए हम आदर्शों से प्रेरणा लेते हैं। हमारा अभियान इस ध्येय की ओर समाज को अग्रसर कर सके तो इसका वास्तविक महत्त्व है। शहर में प्लेग फैला है। पर हम जनता की पूरी-पूरी सेवा कहाँ कर पाते हैं। पुलिस, म्युनिसिपल विभाग, समाज के धनी-धोरी सभी हमारे मार्ग में अड़ंगा डालते हैं।

रमेश 'लीग' का उत्साही मंत्री था। उसके अध्यवसाय और परिश्रम की सीमा न थी। जैसा मजबूत उसका आत्मबल था वैसा ही वह अनुशासन के मामले में कठोर था। इतना बड़ा 'एपिडेमिक' शहर में फैला हो और लीग जी तोड़ परिश्रम न करे यह उसे सहन न था। सब से अधिक क्षोभ उसे महिला-स्वयंसेविका दल के प्रति था। शांति

की उसने कमलाकांत के मुँह से बहुत तारीफ सुनी थी। पर उसके काम से उसकी लगन से वह प्रभावित न हो पाया था। केवल शहर में नहीं—देहातों में भी प्लेग का काफी प्रकोप था। हतबुद्धि जनता जिधर बन पड़ता उधर भागती थी। दुर्निवार महामारी के प्रकोप से लोगों की सदियों की सोई स्वार्थान्धता जाग पड़ी थी। बीमार की सेवा करना तो दूर रहा मरते समय मुँह में पानी देने वाला भी कोई न मिलता था। स्कूल-कालेज बंद हो गये। संपन्न, वैभव-शाली जन-बहुल नगर की सूरत तक बदल गयी। रमेश की आत्मा यह देख कर क्षोभ से फटने लगती है कि पर्याप्त संख्या में जन-सेवक नहीं मिलते। डिबेट में—बहस-मुबाहिसों में जो सबसे आगे रहते थे आज उनका पता नहीं। हालत भी ऐसी है कि किसी का भाई मर गया है—किसी की माता, बुआ, बहन, चाची, दादी, भाभी। अब अपनी-अपनी चोटों से बिद्ध पड़े हैं। देहातों में और बुरी हालत है। वहाँ किसी प्रकार की 'मेडिकल' सहायता नहीं—सेवा की कोई सुसंगठित योजना नहीं। रमेश की बेचैनी का अंत नहीं है। बोला—मैं देहातों की हालत देख कर आ रहा हूँ। यहाँ बाजार और मंडियों की दूकानों पर ताले पड़ गए हैं। वहाँ भय और आशंका से आदमियों की ही नहीं पेड़, मकान झोपड़ियों तक की सूरत बदल गयी है। लोग भाग रहे हैं पर भाग कर कहाँ जाँय। मैंने वहीं देखा—गंदगी गरीबी कैसा नग्न रूप धारण कर सकती हैं। आप लोग काम बाँट कर आगे नहीं बढ़ते तो धिक्कार है। सबसे बड़ी जरूरत हमें लड़कियों की है पुरुषों को हम सँभाल लेते हैं। उनकी तीमारदारी किसी न किसी तरह निभा लेते हैं पर औरतों को औरतें ही सँभाल सकती हैं। मुझे शांतिदेवी से बड़ी आशाएँ थीं। पर कहना पड़ता है जितना समय और शक्ति उन्हें लीग को देनी चाहिये वे दे नहीं पातीं। स्वंयसेविकाओं की रजिस्ट्री संख्या में वृद्धि हुई है पर काम के समय कोई नहीं दिखायी पड़ती। यह समय एक दूसरे की शिकायत का नहीं। जो है उसी

को लेकर हमें जुट जाना है। नहीं तो लीग का होना न होना बराबर है......

शांति बैठी सुन रही थी। विमल को गये दो माह हो गये। ये दो महीने उसने किस प्रकार काटे हैं वह जानती है। उसे भीतर-बाहर ऊपर-नीचे, दाएं-बाएं कहीं कुछ अच्छा नहीं लगता। भाभी के पास भैया के पत्र आते हैं। उसके लिये अलग चिट्ठो रक्खी रहती है। पर व्यक्ति की भूख पत्र से नहीं बुझती। लीग का काम वह यथासंभव पूर्ण शक्ति से करती है। मन ही मन भगवान से उठाते-बैठते सबकी कल्याण-कामना भी करती है। पर बाहर देहातों में वह नहीं जा सकती। एक दिन अपने पिता से उसने पूछा था। उन्होंने बाहर जाने के लिये न केवल मना किया बल्कि मेहतरों मजदूरों की बस्ती में जहाँ सबसे अधिक प्लेग का प्रकोप है जाने से भी रोका। शांति में किसी से बहस करने—नाराजी से अपनी बात पर अड़ जाने की शक्ति अब नहीं रह गयी। उसे लगता है उसकी प्रेरणा का सिंधु सूखा जाता है। उसके भीतर नित नयी सृष्टि करने वाला अब जैसे रह नहीं गया। इसलिये उत्तर देने की आवश्यकता होने पर भी कुछ बोली नहीं। चुपचाप बैठी रही। कमलाकांत ने कहा—देखिये! आप पूरी ताकत से काम कीजिये। मैं आपकी मजबूरी समझता हूँ पर कोई चारा नहीं। गावों में जत्थे भेजे बगैर काम नहीं चल सकता। जिस प्रकार हो हमें यह आपत्तिकाल काटना है। आप बाहर नहीं जा सकतीं। न जाइये। बाहर हम लोग चले जायंगे। पर शहर का भार आपको लेना होगा। कुछ लड़के यहाँ भी हम छोड़ देंगे। घर पर बैठने से काम नहीं चलेगा। समाज की सेवा घर बैठ कर नहीं होती। भगवान की पूजा सिर्फ वहाँ हो सकती है। आपके साथ दीदी हैं। बड़ी पुरानी कार्यकर्त्री हैं वे। आप दोनों यहाँ काम देखिये। कम से कम बारह गाँवों में एक-एक जत्था हम कल रवाना कर देंगे। दीदी! आप कुछ कहें।

दीदी का पूरा नाम सावित्री देवी था। उम्र चालीस के आस-पास

थी। लीग के महिला-विभाग की अध्यक्षा थीं। उनके पति काँग्रेस के आन्दोलन में जेल गये थे। उन्हें दो साल की सजा हुई थी। जेल में उनका स्वास्थ्य खराब हुआ तो फिर न सुधरा। बाहर आने के चार महीने के भीतर उनकी मृत्यु हो गयी। सावित्री देवी का शहर के सार्वजानिक जीवन में अच्छा स्थान था और लीग में लोग उन्हें विशेष श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। पर वे जितना परिश्रम स्वयं कर सकती थीं उतना अच्छा संगठन न कर सकती थीं। जो आन्तरिक भावना से प्रेरित होकर लीग में काम करने आता था उसे तो वे बाँध लेती थीं पर नये लोगों को खींच कर लाना न जानती थीं। शिक्षा-बुद्धि में साधारण होने के कारण उनका व्यक्तित्व भी प्रभाव पूर्ण न था। लेकिन लीग का संस्थापना से उसके साथ उनका सम्बंध था और इसीलिये सब लोग उन्हें नेतृत्व का मान देते थे। आज भी वह मोचियों के मुहल्ले में दिन भर काम करती रही थीं। कुछ खाया पिया न था—सीधे लीग की बैठक में आ गयी थीं। शांति के प्रति उनके मन में आस्था न थी। बोली—मैं शुरू से कह रही हूँ हमें व्यर्थ के नाम नहीं चाहिए। मैंने जिन लड़कियों को शामिल किया है वे आज भी काम कर रही हैं। कृपा, शीला, मीरा, मीना, सुखदेई, फूलवती बराबर मेरे साथ जाती हैं घर-घर घूमती हैं। दिखाने के लिये रजिस्टर में सैकड़ो नाम चढ़े रहें मौके पर कोई सामने न आवे इससे फायदा? हमारे यहाँ शास्त्र में सेवाधर्म को परम गहन कहा गया है जो योगियो के लिये भी दुर्लभ है। आप लोग जो तय करें मैं तैयार हूँ। कानपुर में रह सकती हूँ......बाहर जा सकती हूँ। आज मोचियों के मुहल्ले में मेरे सामने तीन मौतें हुई। मुझे कोई भय नहीं रह गया। भय वे करें जिन्हें जीवन का मोह हो। मुझे सब बराबर है......।

रमेश ने कहा—यह 'राइट स्प्रिट' है। हमें इस प्रकार के आत्म त्याग की आवश्यकता है। शांति देवी! आपको दीदी की बात पर

ध्यान देना चाहिए। सेवा का व्रत लिया तो क्या बाहर क्या कानपुर। आप मेम्बरशिप का चुनाव करते समय होशियारी से काम लीजिए। सेक्रेटरी का काम बड़ी जिम्मेदारी का होता है। केवल समय पर चंदा देने वाली सदस्याएं हमें नहीं चाहिए। चाहिए वे जो ऐसे भीषण अवसर पर आगे आएं— कंधे से कंधा मिला कर काम करें। जिसमें अखंड आत्मविश्वास, प्रेरक परमार्थ की ज्योति हो। आप बाहर जा सकेंगी? आपको जाना चाहिए।

कमलाकांत के हृदय में शांति के लिये विशेष स्थान था। उससे कुछ कने सुनने का अधिकार उसे ही था। अपने इस अधिकार में वह किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं सहन कर सकता था। वह लीग का प्रेसीडेंट था। रमेश को इस प्रकार सीधा आक्षेप करने का अवसर वह कदापि नहीं दे सकता। बोला—शांति देवी से मैं बात कर लूँगा। मैं उनकी पारिवारिक स्थिति जानता हूँ। वे बाहर न जा सकेंगी। आप लोग और बातें तय कर लें। दीदी भी बाहर न जायंगी। केवल पुरुष बाहर जायंगे। ये लोग यहाँ काम करेंगी। एक बार अन्य सद-स्याओं के मकान जाकर उन्हें बाहर लाने की चेष्टा कर लेनी है।

शांति को कमलाकांत का स्वर प्यारा मालूम हुआ। उसे लग रहा था कार्यकारिणी का प्रत्येक सदस्य उसी को लेकर अपना असंतोष प्रकट कर रहा है। उसी का स्वर था जो इस विवर्णता और बाह्य ग्लानि में उसकी रक्षा कर रहा है। रमेश को कमलाकांत की यह बात खटक गयी। कुछ उत्तेजित होकर बोला—जो बात आपको करनी है सब सदस्यों के सामने कीजिए! शांति देवी बाहर नहीं जा सकतीं न जायँ पर यहाँ भी काम की कमी नहीं। स्कूल बन्द होने से उन्हें अवकाश का अभाव भी नहीं। इच्छा के विरुद्ध हम किसी को कहीं जाने के लिए विवश नहीं कर सकते। अपने को सावधानी से बचाये रख कर रोगियों की सेवा और देख-भाल यहाँ भी की जा सकती है। आवश्यकता है आत्मदानी लगन की। शांति देवी में मैं उसी की

कमी पा रहा हूँ। जिन झोपड़ियों और क्वाटरों में कहीं पाँव रखने की जगह नहीं......

कमलाकांत उत्तेजित होकर रमेश से बैठने के लिये कहने जा रहा था कि शांति के लज्जा से लाल हो रहे मुख पर उसकी दृष्टि गयी। कुछ क्षण वह उसे देखता रह गया। इसी बीच रमेश की बात काट कर नरेश ने कहा—निर्भीकता की कमी हम सब में है। मेले-ठेलों में भटके यात्रियों को रास्ते लगा देना एक बात है। मौत के मुँह में जाना बिल्कुल दूसरी। बड़े-बूढ़ों का कहना है उनके होश में ऐसी महामारी नहीं पड़ी। शांति देवी वहाँ काम करना नहीं चाहतीं तो आश्चर्य क्या है? अपनी जान सब को प्यारी होती है। आप लोगों में कितने हैं जो नियमित रूप से जाकर रोगियों को दवा-दारू पथ्य-पानी देते हैं? ठोस बातें करनी हो तो यहाँ करिये। परस्पर लम्बी चौड़ी आरोप प्रतिरोप की बातें न करिये। महिलाओं का सम्मान हमें करना चाहिए।

कमलाकांत को नरेश की शांति की पक्षदारी और बुरी लगी। इसे वह अपना विशिष्ट अधिकार मानता है और किसी का इसमें सहभागी होना उसे स्वीकार नहीं। कोई जब शांति के प्रति अवज्ञा दिखाता है तब उसे क्षोभ होता है। कोई जान या अनजान में जब उसके प्रति सद्भावना सहानुभूति दिखाता है तब उसे अच्छा नहीं लगता। शांति की संचारिणी छरहरी देह को वह जैसे अपनी बातों से—अपने ही मन से सजाना चाहता है। उसके चारों ओर एक अदृश्य आवरण रखना चाहता है। तलवार की धार के समान इस संकीर्ण मार्ग में जैसे एक साथ दो जनों के चलने की जगह नहीं। चाहे वे एक दिशा की ओर हों चाहे विपरीत रास्तों पर। दोनों को चुप करता हुआ कड़े स्वर में बोला—इस तरह की बात अब न होनी चाहिए। मि॰ रमेश से मेरा विशेष अनुरोध है यह। हम एक हैं—हमारी संस्था एक है—हमारा दायित्व एक है। आप जिम्मेदार व्यक्ति

हैं। आपको इस 'टोन' में बात करना शोभा नहीं देता। मैं इसका सख्त विरोध करता हूँ। हमें किन गावों में आदमी भेजने हैं—कौन लोग जाने को तैयार हैं या आपकी समझ में किनका जाना ठीक होगा यह मुझे बतलाइए। हम लोगों को घर भी जाना है। अप्रस्तुत आलोचना की आवश्यकता नहीं......

घंटे भर बाद बैठक समाप्त हुई। शांति एक शब्द न बोली। पीड़ितों के लिये सेवा और संवेदना का आन्तरिक आवेग होते हुए भी उसे यह सब विचित्र लग रहा था। बाहर जाने वालों की लिस्ट बन जाने और तत्संबन्धित सारी बातें तय हो जाने के बाद सभा समाप्त हुई तो कमलाकांत ने शांति से कहा—आप घर जायंगी बैठिये न दस मिनट। थोड़े कागजात देख लूँ। मैं आपके साथ चलूँगा। रमेश, लाना सब ! खत्म कर दूँ।

रमेश कमलाकांत और शांति वहाँ रह गये। कमला ने पन्द्रह मिनट में जरूरी काम समाप्त कर शांति से कहा—आपको घर तक पहुँचा कर मैं डा० सिंह के यहाँ चला जाऊँगा। उन्होंने कुछ डाक्टर देने को कहे हैं। देखें कोई देहात जाने को तैयार होता है या नहीं। रमेश ! मैं सुबह सात बजे आ जाऊँगा। वन्दे !

रास्ते में शांति ने कहा—आप रहते कहाँ है होस्टल में !

एक 'लाज' में रहता हूँ। आपने शायद नाम सुना हो 'लक्ष्मी-लाज'। एक बासा है वहाँ खाता हूँ। आपसे मुझे क्षमा-प्रार्थना करनी है। मुझे क्लेश है......

शांति उसके मुख की ओर जिज्ञासु दृष्टि से देख कर कहा—कैसी क्षमा ? क्षमा काहे की ?

रमेश ने जो बातें आपको कहीं वे अनुचित थीं। दीदी का 'टोन' भी मुझे अच्छा नहीं लगा ! वे बड़ी हैं। उनकी बात दूसरी है। मैं उसकी ओर से माफी माँगता हूँ। आप देंगी न ! मुझे बड़ी लज्जा है......

ठीक कहा उन्होंने। मैं अपने पद से स्तीफा दे दूंगी। जब काम नहीं कर पाती तो स्थान घेर कर बैठने से फायदा? जो कर सकूँगी बाहर रह कर करूँगी। मुझे लगता है मैं सब ठीक-ठीक कर भी नहीं पाती। मुझे न अनुभव है न आवश्यक उत्साह। योग्यता भी नहीं।

आप ऐसा क्यों सोचती हैं। आप में क्या नहीं। आपके आने के बाद हम लोगों में प्रेरणा की नयी लहर दौड़ गयी है। आपकी शक्ति से अब हम परिचित हो चले हैं। सहज में आपको न छोड़ सकेंगे।

शांति ने तमतमा कर कहा—झूठ बात है यह। मैंने क्या किया है। थोड़े से निकम्मे मेम्बर बना देने और बैठकें 'अटेन्ड' कर लेने से काम नहीं होता। आपने मेरी इतनी तारीफ कर दी कि लोग मुझसे न जाने कहाँ-कहाँ की आशाएं बाँध चुके हैं। मैं अपनी असमर्थता जानती हूँ। मुझे असाधारण बनने की लालसा नहीं। मैं जितनी हूँ उतने में ही पूर्ण हूँ। मेरी अपूर्णता से मेरे सृष्टिकर्ता लज्जित न हों यही मैं चाहती हूँ। मैं कल स्तीफा भेज दूँगी। आपको मंजूर करना होगा।

कमलाकांत ने विस्मित होकर शांति के मुख की ओर देखा। रंग और स्वर की अनिर्वचनीय आभा उससे निकल रही थी। उसे चुप पाकर शांति ने कुछ स्निग्ध कंठ से कहा—आज की बात को मैं महत्त्व नहीं दे रही। मैं कई सप्ताह से यह सोच रही हूँ। समाज की पूजा के लिये भीतर जो आग चाहिए वह मुझमें नहीं। व्यक्ति की पूजा से ही मुझे अवकाश नहीं मिलता जो मैं इतनी बड़ी आकांक्षा अपने भीतर पालूँ। जीवन की छोटी बात स्त्री की पूँजी है। दैनिक जीवन की छोटी दुनिया की तुच्छता में लिप्त रहने वाला मेरा एकाकी जीवन क्यों झूठे दंभ की उपासना करे। न होगा मुझसे!

कमलाकान्त ने कहा—आपकी उच्चता है जो आप ऐसी बात कहतीं और सोचती हैं। आपका मूल्य कोई समझे न समझे मैं समझता हूँ। आपनी वेदना-विह्वल आत्मा की शून्यता के भीतर बजते आर्त

स्वर को मैं बराबर अपने दिल की धड़कन में सुना करता हूँ। न जाने कौन अनागत प्रत्युत्तर तब मेरे भीतर आपसे आप घुमड़ने लगता है। गुरुजी जल्द किसी से प्रभावित नहीं होते। आपकी कितनी प्रशंसा वे नहीं करते। आपको जो एक बार जान लेता है वह बिना आपकी प्रशंसा किये अपनी नजर में टिक नहीं सकता।

शांति का अन्तःकरण रोमांचित हो उठा। कमलाकांत के मुख पर सत्य और आन्तरिकता का प्रकाश था। आत्मा की गहरी स्वीकारोक्ति थी यह। किस भूले परिचित गौरव का आह्वान है यह जिसे सुन कर प्राण में पुलक और लज्जा एक साथ बढ़ती है। वह कुछ बोल न सकी। अविजानित वेग से उसका कंठ अभिभूत हो गया। उसे लगा। उसकी निष्ठुरता भीतर-भीतर वेदना से सिक्त हो उठी है। कैसा विपर्यय है! किस कोने में यह करुणा छिपी थी वह स्वयं क्षण भर पहले न जानती थी। भावावेश में वह सड़क पर ठोकर खाते-खाते बच गयी।

कमलाकान्त ने पूछा—चोट तो नहीं लगी। सवारी कर लूँ। अभी दूर है।

जी नहीं! चली चलूँगी। कहते-कहते शांति ने आकाश में फैले और उदित हो रहे नये-नये तारागणों की ओर देखा। उसकी भावना के आकाश में उतना ही बड़ा ज्योतिर्मय आकाश-कुसुम उग आया था। उसे लगा जैसे आज की बात कभी पुरानी न पड़ेगी।

कमलाकांत ने कहा -मैंने आपको कष्ट दिया। वहीं पर सवारी बुलवा लेना था। सोचा पैदल चला चलूँगा। प्रबल इच्छा रहते हुए भी जो कहने का आज तक साहस न कर सका वह सब कह दूँगा। कब से मन में आँधी के बिखरे-बिखरे बादल जमा थे......

शांति ने अधखुले अधमुँदे मन से कहा—'कहिये न! आपको संकोच करने की क्या आवश्यकता है।'—कहती-कहती कल्पना के क्षेत्र से निकल कर वह फिर यथार्थता की संधियों को खोलने लगी।

आप साकार सेवा हैं। अपने को हमसे अलग न करो यही कहना है। ये लोग अभी आपको जान नहीं पाये। मैं पहली ही भेंट में जान गया था—यह वह साकार जलन है जिसका अन्दाज ज्वालामुखी अपने जलते हृदय से लिया करते हैं। दिन-दिन देदीप्यमान होने वाली शारदी चन्द्रकला की तरह जिसकी आभा बराबर बढ़ती चलती है। आपको पाकर हमारी संस्था की पोषक जीवन-शक्ति बढ़ेगी। आप हमें मुक्ति का बल प्रदान करती चलें। ये लोग स्थूल दृष्टि से दुनिया को देखने वाले......आपका वरदान सहन करने की शक्ति नहीं रखते......इसी से आपका लोक-प्रेरक रूप देख नहीं पाते। ईश्वर जिसे जो सहन करने की शक्ति नहीं देता उसका साक्षात्कार भी उसे नहीं होने देता। असमर्थों को सताना वह क्या जाने! मैं उसे सह सकता हूँ......मैं आपकी बंधमुक्त विशाल अनुभूति को ग्रहण कर सकता हूँ......इसीलिए मुझे आपकी अनुभूति हुई है......होती है। जिस दिन इनमें इतनी क्षमता आ जायेगी उस दिन आपकी ओर देखते रह जायँगे। अभी केवल किताबी बातों की तरह आपको पढ़ने-समझने की चेष्टा ये करते हैं। शब्द को ग्रहण करने वाले भावना को ग्रहण नहीं कर सकते। जिस दिन कर सकेंगे नत हो जायँगे......

शान्ति ने कहा—आप मेरी प्रशंसा करते हैं......क्या हूँ मैं...... अपने ही भीतर सुलग-सुलग कर लुंठित हो जाने वाली आत्म हिंसा की गीली-गीली मशाल जो न जलती है—न प्रकाश देती है—एक कसैला-विषैला धुआँ ही जिसका आदान-प्रतिदान है। मुझे शरमिंदा न करें। आप जैसे सुयोग्य व्यक्ति को यह शोभा नहीं देता। मैं कुछ नहीं हूँ।

जानत हूँ......मैं जानता हूँ आप क्या हैं। आपको लेकर कितनी बड़ी—कैसी-कैसी असंभावित कल्पनाएँ की जा सकती हैं यह मैं जानता हूँ। आपको देख-देख कर......आपकी अनुभूति भीतर-भीतर कर मैंने कितना बल संचय किया है इसकी कृतज्ञता प्रकट करना असंभव है।

इस चिर कृतज्ञ की अनुनय-अंजलि आपको स्वीकार करनी होगी। अपनी पुण्य उपस्थिति से हमारी संस्था को प्राणवान बनाती रहिए। बस! अधिक नहीं चाहिए।

विमल के निकट जो मिला था उसमें और इस पाने में अन्तर है। होश सँभालने के बाद शांति ने कभी पुरुष के अहं का इस प्रकार खंड-खंड होकर—गल गल कर पानी बन कर बहना नहीं देखा। उसे लगा वह उठ उठ कर भी जैसे नहीं उठ पाती। गिर गिर कर भी नहीं गिरती। गिरने उठने की सीमा के पार उसके सिर पटकते विवश प्राण की फड़फड़ाहट पहुँच चुकी है। जिस मुक्ति की खोज में वह उलझी फिरती है क्या वह इससे अधिक लुभावनी और रंगीन होती होगी। कमलाकांत की बातों में उसे पहले जैसा अविश्वास न था। यह तो किसी सहभोक्ता के प्राण की ध्वान है जो शब्द शब्द में प्रकंपित निनादित हो रही है। जो उसके निकट स्थूल और सूक्ष्म का भेद मिटाये दे रही है। कमलाकांत की तरफ पहले की तरह जैसे वह अब देख नहीं सकती। एक बड़ी सुकुमार झिझक अनबूझ पहेली जैसी सामने आ जाती है। पुरुष की मनुहारभरी प्रशंसा का रूप नारी के लिये उन्मादक होता है। शान्ति भूखी प्यासी वंचिता आत्मप्रताड़िता नारी ही तो है। कम से कम इस समय वह उतनी ही रह गयी है—न अधिक न कम!

कमला ने कहा—जिस समय आप से लीग में शामिल होने का अनुरोध किया था उस समय प्राण का पर्णिका में छिपा कोई अचीन्हा बोल उठा था—तेरी पुकार खाली न जायगी। यदि भ्रम भी हुआ होता तो मन इस भ्रम को बनाये रखना चाहताथा। लेकिन वह भग्न हृदय की धड़कन थी। सामर्थ्य का यह आकर्षक अनुभव आज कैसी-कैसी तरंगपूर्ण किन्तु अनहोनी लालसाएं मन में जगाया करता है। व्यर्थ है उनकी चर्चा। जो पा गया वह अप्रत्याशित था जो न पाऊँगा उसे ले कर कभी अपनेपराये से शिकायत न करूँगा। न कहूँगा अब।

कहो......कहते चलो......सब सुनूँगी......सुनती रहूँगी—मुग्ध आत्मविस्मृता शांति ने कहा—कह डालो। आज ही कह डालो सब। घर पहुँचते-पहुँचते खत्म कर दो। कुछ बचा कर न ले जाना। कहो......कहती कहती ऊपर की ओर देख कर शांति रो पड़ी—बिना आँसुओं के......बिना स्वर के। मानों सारे शरीर से......पिंजर के भीतर रह-रह कर हिलती आत्मा से......तन्मय घनीभूत पुंजीकृत आत्मा से।

सिहरभरे स्वर में कमलाकांत ने कहा—कहने के लिये क्या नहीं है। पर कहने से और बढ़ता है वह। लोगों का कहना गलत है कि कहने से जी हल्का होता है। ऐसी भी वेदना होती है जो कहने से और बढ़ती है—भीतर-भीतर पिघले मोम की तरह फैलती है। आपको मेरी बातें असंगत लगती होंगी—अशालीन भी लगती होंगी। आराधन की भूखी निष्ठा जब प्रतिमा तक नहीं पहुँचती...तब...तब...तब क्या होता है। वसुधा का हार टूट जाता है......उसका सुखसार लुट जाता है। आपको देखने के पहले किसी को देखने की......निकट से बात करने की ऐसी आशा अभिलाषा प्राण में जाग सकती है न जानता था। पहले जिन बातों को सस्ती भावुकता विचलित रोगी मस्तिष्क की मूर्खता कह कर हँसा करता था वे अब उतनी बचकानी और उथली नहीं जान पड़तीं। अब लगता है संसार में सब कुछ संभव है। स्वच्छ से स्वच्छ चाँदनी मुहूर्त भर में अंधकार में एकाकार हो सकती है। आप से क्या नहीं सीखा......क्या नहीं जाना। बड़ी-बड़ी फिलासफी की पोथियों में जो न मिला वह आपकी चिताभस्म की तरह तप्त किन्तु दूसरे क्षण झरने जैसी जलमय हो जाने वाली चितवन से मिला। बौद्ध युग से लेकर वैष्णव युग तक की फिलासफी में जो न मिला था वह आपकी उल्का की तरह वायुमंडल में फैल कर लम्बी होती जाती मुस्कान में मिला! आप से मेरे पाने की......पाते रहने की सीमा नहीं। पहले सोचा करता था आदर्श के भीतर दुख का जन्म होता है। आपको

देख कर समझा—दुख के भीतर भी कितने बड़े जीवनादर्श को जन्म देने की शक्ति है।

शांति ने कहा—सचमुच मुझसे भेंट होने के पहले आप अपने को इतना न समझा पाये थे। सचमुच दर्शनशास्त्र के ऐसे-ऐसे सूक्ष्म तत्त्वों को प्रस्फुटित करने की क्षमता मुझमें है। क्या मैं दूसरों की आवश्यकता के लिये—केवल उनकी ज्ञान-पूर्ति के लिये ही बनी हूँ—मेरी आवश्यकताओं का कोई मूल्य नहीं! मेरा जीवन क्या ऐसे ही विरोध सहते-सहते बीत जायेगा? आपने कभी एक क्षण इस ओर विचारा? मैं जो नहीं हूँ उसे भी सोचा है?

तुम्हारी महिमा गौरव से मैं अभिभूत हो उठा। मिट्टी फोड़ कर सिर ऊपर उठाती ऋतुकालीन वन्य लता की तरह तुम्हारी जीवन गति में मुझे अजस्र धारासार वेग दिखा। इस लोक को मैं इतना तुच्छ समझा करता था वह भी उपेक्षा अवज्ञा और अपमान का पात्र नहीं है। उसके भीतर भी आदमी जी सकता है यह भी मानता हूँ। वह जन्म-जन्मान्तर अनंत काल तक किसी की प्रतीक्षा भी कर सकता है यह मैंने जाना। जिसे निष्फल आत्मवंचना कहा करता था उस बड़ी व्यथा का केवल मैं भोक्ता नहीं हूँ। मेरा सारा क्षोभ और अभिमान उस दिन से धुल पुँछ गया है। रह गयी......एक......केवल एक कभी न बुझने वाली नग्न ज्वाला। दिव्य प्रेरक......जलन के भीतर अशरीरी शीतलता की तृप्ति लेकर जलने वाली।

शांति ने कहा—आप मेरा बाह्य रूप देख कर न जाने क्या-क्या समझे बैठे हैं। मेरे मन को आप नहीं देख पाते—असत्य की किन जंजीरों से वह बँधा है। नहीं तो आप इतने उच्छ्वासित कंठ से मेरी प्रशंसा कर न पाते। विधाता के दरवाजे मुझे आजीवन बैठे रहना है। हाथ पसार कर कुछ पाने की लालसा लेकर नहीं—हाथ बन्द कर ताकि धोखे से कोई चीज प्राप्त न हो जाय। आपने केवल मेरा हिमा-

वृत स्तर देखा। भीतर की विडम्बना और विघटन नहीं। इससे बड़ा अभिशाप क्या हो सकता है?

दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। कोई प्रतिद्वंदी विरोध उनमें नहीं। एक को लेकर दूसरा अपनी सत्ता जीवित रखता है। आंतरिक संघर्ष की पीड़ा का ही यह रसायन है जो तुम्हारे मुख पर तारों भरी नीली छाँह वाली रात की सौम्यता बन जाता है......जो आत्मिक अपरिवर्त अनुकंपा की मानवी दीप्ति बन कर बरसा करता है। इस अहेतुक भक्ति और प्रीति-बहुलता में कौन सा संतोष है मैं पहले न जानता था। किताबों में पढ़ा करता था पर विश्वास न पड़ता था। कितना बड़ा संशयवादी था तब मैं! तुम्हारे अनात्म दर्प से मैंने सीखा जब वेदना अपनी सीमा को पार कर जाती है तब स्वतः उपचार हो जाती है। जैसे पहाड़ के शिखर पर से जल की धारा अपनी नैसर्गिक लीला में स्वतः बह कर नीचे आ जाती है। उसमें कोई चंचलता नहीं होती...कोई शोकाच्छन्न हाहाकार नहीं होता...। अमर्यादा अशुचिता का कोई आवेग नहीं होता जो मैदान में आने पर पैदा हो जाता है। मैंने जीवन के सबसे दृढ़, निश्चित और दीप्त तत्त्व को पा लिया है। मेरे संस्कारों का नया जन्म हुआ—चेतना आमूल बदल गयी।

शांति का हृदय निर्निमेष दृगों में आकर कभी कमला की ओर कभी सड़क के दोनों ओर चलते विराट जन-समूह की ओर देख रहा था। गर्व से उसका शरीर फटने सा लगा.......कंठ जैसे छलछला कर गलने लगा। उसे पता भी न चला वह अब कमला के निकट आ गयी है। शरीर के स्पर्श हो जाने की सीमा पर आकर उसे होश आया। अपने को सँभाल कर वह फिर पहले जैसे हो गयी। उसका मकान निकट आ रहा था। वह चाहने लगी अशेष हो यह दूरी और दूर जाना हो उसे! यात्रा में जितना अधिक समय लगे उतना वह इस सुख की बाढ़ में डूब सके! अनदेखे वसंत से कुसुमित पवन की तरंगे संगीत के स्वरों जैसा कंपन गूँथ रही थी। उसे लगा कोई उसके

अंग-प्रत्यंग में छिपा पूछ रहा है—क्या चाहती है......क्या चाहती है तू!......वन-लता सी भू-लुंठित तीर्थ-सलिल-संयोग-भ्रष्ट तू क्या चाहती है...? एक सुहानी लाज से भर कर निरुत्तर उसने आँखे झुका लीं।

कमला ने कहा—आपका मकान आ गया। जाइये अब। मुझे बहुत काम करने हैं। कल भेंट होगी। जिस प्रातःकालीन प्रकाश से आपने मेरे मन का आकाश तरंगित कर दिया है वह ज्यों-ज्यों बढ़ेगा त्यों-त्यों मैं आपका कृतज्ञ होता जाऊँगा। मेरी तो दुनिया बदल गयी लगता है कितने बड़े दुर्दिन थे जब आपसे पहचान न थी। कितना अज्ञानी अशांत था जब झूठ ज्ञान के सहारे जीवन का मार्ग टटोलता फिरता था। आपके मिलते ही किस अमर देश का रहस्यलोक आँखों के सामने आकर खड़ा हो गया? एक ही नमस्कार में मेरी जड़ ज्ञानेन्द्रियाँ फैल-फैल कर आत्मा को परिचालित प्रसारित करने लगीं...

ग्यारह

प्लेग का प्रकोप धीरे-धीरे कम हो रहा है। अखबारों में समाचार पढ़ कर विमल के कई चिन्ताभरे पत्र घर में आये हैं। ऊषा के उत्तर के साथ शांति भी लम्बे-लम्बे पत्र में पूरी रिपोर्ट भेजा करती है। किस प्रकार उन लोगों ने इस दुर्योगकाल में जनता के बीच काम किया है यह विमल को वहाँ बैठे पता लगता रहा। देहातों में तो लगभग दूर हो चुका है पर शहर के कुछ मुहल्लों में अभी बाकी है। कमलाकांत बाहर नहीं जा सका। स्कूल-कालेज धीरे-धीरे खुलने लगे हैं। शांति ने स्कूल का काम शुरू कर दिया पर उसका मन पहले जैसा नहीं लगता। जाती है—पढ़ाती है और यथासंभव कर्तव्यपालन का यत्न करती है। पर हृदय में एक नयी अनुभूति रह रह कर सताया करती

है। जिस बात की स्वप्न में भी आशंका न करती थी वही तीक्ष्णता तन-मन में एकाकार हुई जा रही है। शहर की विकराल बीमारी का रूप शांत तो हो गया है पर कहीं-कहीं दो चार नये आक्रमण होने की बात सुनी जाती है। लोग के काम की चर्चा घर-घर होती है। कमलाकांत और सावित्री देवी सेवा के साकार स्वरूप में चारों ओर अभिनंदित होते हैं। कमलाकांत के निकट अब वह एक अनात्मीय नारी नहीं उसकी हर प्रकार से सहायता करने वाली सहकारिणी बन गयी है। दफ़्तर का सारा काम एक प्रकार से कमलाकांत ने उसे ही सौंप रक्खा है। शाम को उसके चार घंटे नियमित रूप से दफ्तर में बीतते हैं। हजारों रुपये चंदे और दान से आते हैं। सबका हिसाब और 'फाइल-वर्क' उसके माथे है। सावित्री देवी और रमेश ने देख लिया कि बाहर का काम न कर सकने पर भी दफ़्तर का काम पूरा शांति ने सँभाल लिया है। लिखने-पढ़ने का काम करने में उसकी शक्ति अद्भुत है। धीरे-धीरे उनकी विरोधात्मक प्रवृत्ति जाती रही। पहले की अपेक्षा शांति अब शहर में अधिक घूमने लगी है पर अधिक-तर कमलाकांत या सावित्री देवी के साथ ही। कभी-कभी ऊषा से जब इधर-उधर घूमने की बात और काम का विवरण बताती है तो वह हँस कर कहती है—हमारी लल्ली नेतानी हो गयी है। शहर में इसका दबदबा है। शांति के माता-पिता भी कुछ नहीं बोलते। पढ़े-लिखे सुसंस्कृत पिता को लगता है—पर-सेवा में ही विधवा लड़की को शांति और सौख्य मिल सकेगा। मा कभी-कभी दबी जबान से कुछ कहती है—शांति के बाहर रहने पर नाक भौं सिकोड़ती है पर पति और पुत्रवधू जैसी प्रिय उषा के समझाने-बुझाने पर चुप हो जाती है। शांति की मा के भीतर एक प्रकार की हीनता है जो उसे अधिक बोलने नहीं देती। सोचती है उसके पति विद्या-बुद्धि-विवेक सभी में उससे श्रेष्ठ हैं। जब वे कुछ नहीं कहते—लल्ली के घूमने-फिरने में बाधा नहीं डालते तो उसे यह कहना सुनना और दखलन्दाजी करना

अभीष्ट नहीं। विमल के लिये भी उसके मन में आदर मान है। उस विमल ने जब एक बार भी लल्ली के चाल-चलन, रहन-सहन के विषय में उनसे कुछ नहीं कहा—कभी आपत्ति नहीं की तो वह बेचारी क्या कहे! लड़की के दुख ने एक प्रकार से उनके दिल दिमाग को निष्क्रिय बना रक्खा है। जिस बात में उसे सुख मिले उसी में उन्हें सुख-शांति है। पर चाची को यह सब फूटी आँख नहीं भाता। उन्हें संतोष यह है कि उनका बेटा यहाँ नहीं है और यह पराई लड़की—जवान और विधवा—उसके पास अधिक नहीं बैठती। एक दिन उन्होंने उषा से रात्रि में कहा—बहू! कैसे हैं ये मा-बाप जो जवान लड़की को इस तरह बाहर घूमने-फिरने देते हैं—नौकरी करने देते हैं। विचित्र है इन लोगों के यहाँ का चलन! हमारे यहाँ जवान विधवा अधिक बात नहीं करने पाती। इन लोगों की आँखें अभी ठिकाने पर नहीं हैं। ऊँच-नीच पैर पड़ गया तो कहाँ मुँह दिखायेंगे।

उषा ने कहा—आदमी-आदमी पर होता है चाची! लल्ली समझदार गंभीर लड़की है। दुनिया के छल-छिद्र से उसे मतलब नहीं। अपने काम से काम रखती है। आजकल शहर में चारो तरफ उसकी प्रशंसा होती है। सरल भाव से जीव-सेवा में लगी रहती है। उनकी आज्ञा से उसने सब काम अपने सिर लिया है। अपने कर्त्तव्य का पालन ही तो बेचारी कर रही है। पीड़ित देशवासियों की सेवा का व्रत लेना पाप नहीं......।

चाची ने कहा—पाप तो नहीं पर समाज में जो नियम कायदे बने हैं वे सोच समझ कर पूर्वजों ने बनाये हैं। उनका उल्लंघन करने से कैसे काम चलेगा? जवान मर्दों के साथ रहेगी—उठे-बैठेगी तो चित्त डिगते क्या देर लगेगी—घर में भगवान की पूजा करे। व्रत-संयम नियम का पालन करे। यह लोक बिगड़ गया। परलोक तो सुधारे। मैं नहीं समझती इस आदत को जरा भी अच्छी!

उषा ने कहा—वह सब तो करती है। सुबह का सारा समय पूजा-

पाठ में जाता है। सेवा करने की शक्ति उसमें अद्वितीय है। इस शक्ति की प्रवृत्ति एक बार किसी के मन में जाग उठती है तो उसकी ज्योति कभी मलीन नहीं होती। पर सेवा से बड़ा धर्म दूसरा नहीं। जीव की सेवा से कल्याण-रूप परमात्मा तृप्त होते हैं। मानव की सेवा उन्हीं की सेवा है। तभी हृदय में परमेश्वर का आविर्भाव होता है। इस बार का जैसा भयानक प्लेग! लल्ली ने कितना काम किया है चाची! भगवान उसे इसका फल अवश्य देंगे। किसी के उपकार वे नहीं भूलते।

चाची को इन बातों से संतोष नहीं होता। मन ही मन किसी के लिये अहित और अकल्याण की भावना न होते हुए भी वे इस चंचल लड़की के भविष्य को लेकर आवश्यकता से अधिक चिंता किया करती हैं। शांति की मा से उन्होंने एक बार कहा और बराबर कहती रहेंगी। उनका जो कर्तव्य है उसका पालन करने में वे न चूकेंगी। शांति के पिता से वे नहीं बोलती वर्ना उनसे कहतीं—उन्हें भी सावधान कर देतीं। बहू को वे जानती हैं। लड़के के विचारों से उसका मतभेद नहीं है। उसी के ढंग पर वह सोचती-समझती है। अपनी स्वतंत्र सत्ता जो नारी के लिये आवश्यक है और जो पुरानी पीढ़ी की नारियों की विशेषता है जैसे वह खो बैठी है। लेकिन चाची पुरानी पीढ़ी की हैं। पति की हर बात में हाँ मिलाना और उसे उचित समझना उन्हें स्वीकार न था। इसीलिये आज की लड़कियों और बहुओं से उनकी पटरी नहीं बैठती। बात-बात में वे स्वामी की दुहाई देती हैं। सास-ससुर, मा-बाप का जैसे उनके निकट महत्त्व ही नहीं है। पति के प्रति यह मुखापेक्षिता चाची को फूटी आँख नहीं भाती। उन्हें आश्चर्य यह देख कर होता है कि उनकी पीढ़ी की होते हुए भी शांति की मा को रत्ती भर चिंता नहीं। वह भी आजकल की लड़कियों की तरह लड़की के प्रति पति की निश्चिन्तता में निश्चिन्त बैठी है। लड़की और बहुओं को रास्ते पर लाने का काम औरतों का है। मर्द यह कठिन कर्तव्य-पालन

क्या जानें। वे क्या जानें पग-पग पर नारी के लिये कैसे प्रलोभन की सृष्टि होती रहती है। एक दिन इसी बात को लेकर वे शांति की मा से विकट रूप से उलझ पड़ीं। शांति की मा ने उकता कर कहा—मैं क्या करूँ चाची! वे जाने, भैया विमल जाने। उन लोगों से अधिक समझती-बूझती हूँ? वे लक्ष्मी को नहीं रोकते तो मेरे रोके रुकेगी? चाची ने कहा—तुम उसे ससुराल क्यों नहीं भेज देती। वहाँ बहू की तरह रहेगी। जिम्मेदारी सास-ससुर पर होगी। आखिर बेटी किसी की जन्म भर मा-बाप के पास नहीं रहती। वे जानें उनका काम जाने।

मा ने द्रवित स्वर से कहा—वहाँ उसका क्या रक्खा है। अपना आदमी ही भगवान् ने उठा लिया तो कौन किसकी परवाह करता है। अभी बुलाने वे आये थे। मैंने कह दिया था भेज दो पर वे नहीं माने। लक्ष्मी ने जाने से इन्कार किया। सयानी बेटी को बिना उसके मन कैसे वहाँ भेज देते। चाची ने यही सलाह दी कि दुबारा वे बुलाने आयें तो शांति को अवश्य उसकी ससुराल भेज दिया जाय—ऐसी गलती दुबारा न की जाय।

जिसे लेकर इतनी आलोचना-प्रत्यालोचना संकल्प-विकल्प चलते हैं उसे इन बातों से अधिक डरने और बच कर रहने का अवकाश नहीं। सुबह से लेकर रात तक वह कठोर कर्म-बंधन में जकड़ी रहती है। अब तक उसे किसी ने यह मार्ग न दिखाया था। आत्म-विस्मृति के कैसे अपूर्व रस में वह डूबी रहती है। जो विराट अतृप्ति उसके हृदय में लम्बी साँसें छोड़ती थी वह आज एक नये, अलौकिक रस में बदल चुकी है। उल्लासकर है यह मुक्ति का मार्ग! आज वह अपने संपूर्ण अस्तित्व को परहित साधन में डूबा देना चाहती है। स्कूल की नौकरी भी उसे भार मालूम पड़ रही है। यह नया कर्म-सूत्र उसे जिधर खींचे लिये जा रहा है वहाँ किसी प्रकार के प्रच्छन्न अज्ञात आत्मअनुशीलन की अब गुंजायश नहीं। वहाँ केवल सामाजिक कर्म

का शीतल जल-प्रवाह है जो मन की सारी बाधाओं और भीतर-भीतर कुरेदते रहनेवाली चंचलता को बहा ले जाता है। सावित्री देवी के जीवन को अधिक निकट से देखने का मौका उसे मिला है। इस अद्‌भुत कर्मशीला नारी के हृदय में जैसे कहीं संकोच और स्वार्थ के लिये स्थान नहीं है। कर्म-सिंधु में जैसे वह अपरिग्रही होकर कूद पड़ी है क्या वैसे ही शांति नहीं कूद सकती। दोनों का दुख एक जाति का है, एक सा गहरा और तहस-नहस कर देनेवाला। शांति का और बड़ा है—वीराना, अंधकारमय और जड़। वह भी वैसी बन सकेगी ? कब ?

कई दिन से कमलाकांत की तबियत ठीक न थी। फिर भी वह बराबर काम करता था। रोज लीग के दफ्तर आता था। शांति ने देखा आज उसका मुख विशेष रूप से विवर्ण और व्याकुल है। और लोग तब तक नहीं आये थे। शांति को देखते ही बोला—आप यहाँ मौजूद हैं ? इतने जल्द। चपरासी कहाँ चला गया, उसे बुलाइये।

शांति ने कहा—कहिए। आज आप बड़े......आपकी आँखें क्यों इतनी लाल हैं। ज्वर है क्या ? स्कूल में जल्द छुट्टी हो गयी। सीधी चली आयी ? आपको कँप कँपी छूट रही है।

देह में भयंकर पीड़ा है। सीधा कालेज से आ रहा हूँ। लगा घर तक पहुँच न पाऊँगा। उसे भेज कर इक्का मँगवाइये—कहता-कहता कमलाकांत पास पड़े 'स्ट्रेचर' पर लेट गया। उसके माथे की नसें तनी आ रही थीं। प्यास से ओंठ सूख रहे थे। शांति ने माथे पर हाथ रख कर कहा—बहुत तप रहा है। तेज बुखार है आपको ! सुबह से था तो कालेज क्यों गये।

आध घंटे से मालूम हो रहा है। तबियत तो दो-तीन दिन से खराब है। आज लगता है खुल कर बुखार आ गया। आप क्या कर रही हैं ? दीदी ने पाँच बजे आने को कहा है। उनसे बता दीजियेगा। मैं एक दो दिन न आ सकूँगा। पानी है यहाँ ?

शांति ने गिलास में पानी देते हुए कहा—जो नया सामान आया है उसे रजिस्टर पर चढ़ा रही थी। आप यहीं रहिए। शिवनाथ को डाक्टर को बुलाने भेजती हूँ। घर से कपडे मँगाये लेती हूँ।

यहाँ कामकाज की जगह है। मेरे रहने से विघ्न पड़ेगा। आप शिवनाथ से ताँगा लाने को कह दीजिए; जल्द से जल्द।

चिट्ठी छोड़ने गया है। आता होगा। भाभी ने कल दी थी। मैं भूल गयी। कम्बल ओढ़ लीजिये—कहते हुए शांति ने एक मोटा कम्बल लाकर उसके शरीर पर छोड़ दिया। जाड़े का लहरा पूरे वेग पर था कमलाकांत के दाँत किटकिटा रहे थे। शांति ने चिंताकुल हृदय से कहा—आप आराम नहीं करते। कितनी मेहनत तीन माह से आप कर रहे हैं। अब तो सब शांत है। एक दो नये आक्रमण होते हैं तो वैसे खतरनाक नहीं। अब आप आराम कर सकते हैं। जरूरी है कि जहाँ कोई 'केस' हो वहाँ आप जायँ ही। इतनी दौड़-धूप, परेशानी। योंही आपका स्वास्थ्य कौन अच्छा है। खाने-पीने का भी ठीक नहीं रहता।

कमलाकांत ने कम्बल सिर से ओढ़ लिया। जाड़े के कारण वह अन्दर-अन्दर गठरी बना जा रहा था। शांति ने लाकर दूसरा कम्बल डाल दिया और बोली—और लाऊँ ?

कमला तीव्र ज्वर की उत्तेजना में कुछ सुन समझ न पा रहा था। दूसरों के लिये अपने आपको विलीन और समर्पित कर देने वाले इस नवयुवक के लिये शांति के मन में अब पहले जैसी दूरी न थी। शांति ने कम्बल के ऊपर-ऊपर हाथ फेर कर कहा—सिर दबा दूँ ? आप कैसे डेरे तक जायंगे ? जाने की जरूरत क्या है ? सिर में दर्द हो रहा है ? यहाँ इतने लोग आते रहते हैं सब आपकी देख-भाल करेंगे।

कमला ने भर्राई आवाज से कहा—शिवनाथ से कह कर 'एस्प्रो' की दो गोलियाँ मँगवा लीजिए।

खिड़की के पास खड़े होकर शांति ने देखा शिवनाथ सड़क पर

तमाशा देखता हुआ धीरे-धीरे आ रहा है। बोली—आ रहा है। मँगाती हूँ। बिना डाक्टर की राय 'ऐस्प्रो' खाना ठीक होगा......

सब ठीक होगा—कमला ने शरीर और सिर की पीड़ा से आकुल होकर झुँझलाहट में कहा—दर्द से मुक्ति मिलनी चाहिए। सहा नहीं जाता। कल हुआ था पर बुखार न था। संभव है भीतर रहा हो···

'ऐस्प्रो' की दो गोलियाँ एक साथ चबा कर कमला ने एक गिलास पानी पिया और कंबल में दुबक गया। शांति भारी मन ले कुर्सी पर बैठ कर काम करने लगी। काम में जी न लगता था। कमला बुखार के चढ़ते वेग में जोर-जोर से कराह रहा था। उसका सारा बदन—एक-एक जोड़ दर्द से ऐंठ-अकड़ रहा था। बोला—डेंगू बुखार है यह एक बार और आया था। उसी में ऐसी भीषण पीड़ा होती है। लगता है सारा शरीर फट जाएगा। क्या करूँ? बड़ी पीड़ा हो रही है।

शांति अकुला कर खड़ी हो गयी। करे क्या वह। सिसकियाँ और जाड़े की उच्छ्वसित साँसें भरते हुए कमला ने कहा—ताँगा आया?

जी नहीं—शांति ने कहा—शिवनाथ डा० घर को बुलाने गया है। सब से पास वे ही हैं। आकर देख लें और आपको जाने की सलाह दे दें तब ताँगा आयेगा। नहीं तो आपको यहीं रहना होगा। क्या वहाँ जाने की इतनी इच्छा है?—शांति ने कुछ अभिमान भरे स्वर से कहा।

कमला ने कहा—वहाँ जाना है। यहाँ मुझे रहना नहीं। बाद में शायद न जा सकूँ। तुमने डाक्टर क्यों बुलवाया। इतनी जल्द क्या जरूरत थी। एक-दो दिन में आपसे आप ठीक हो जाता।

'डेंगु' बुखार आप से आप ठीक नहीं हुआ करता। आप अपने सामने दूसरे की नहीं सुनते......बुखार की हालत में भी नहीं।

तुम्हारी सुनूँगा। तुम जो करोगी ठीक......ठीक होगा, जो कहोगी.......ठीक होगा। पाँच बज गया। दीदी अभी तक नहीं आयी।

ग्वालटोली में दो "सीरियस केसेज" थे। बारह बजे तक मैं उनके साथ था...उफ़! उफ !! भीषण दर्द है। 'ऐस्प्रो' काम नहीं करता। पानी...

शांति ने फिर पानी दिया। कमला ने शांति का चेहरा देख कर कहा—तुम क्यों उदास हो गयी। ऐसी क्या बात है। यह बुखार ही पाजी होता है। एक-एक नस मरोड़ देता है। ठीक हो जाऊँगा। क्यों परेशान होती हो? जो काम कर रही हो पूरा कर डालो। रमेश, नरेश, मुरारी, घनश्याम, गोविन्द कहाँ रह गये सब? अब तक नहीं आये।

आप शांत लेटें। अधिक बात न करें। जानती हूँ भीतर-भीतर आपका मन जिस स्वर में बँधा है। भूल जाइये सब। भगवान का ध्यान कीजिए। वे कष्ट से त्राण देंगे। दीदी रमेश नरेश कोई नहीं।

कमलाकांत ने ऊँचे ज्वर और गहरी वेदना के बीच भी विद्रूपभरी हँसी हँस कर अपना मुँह खोल दिया। उस हँसी की रेखा अब तक उसके चेहरे पर थी। शांति को लगा इस हँसी की जाति न्यारी है। इसका उद्भव और निलय न्यारा है। कोई और होता तो उस हँसी पर झेंप जाता पर शांति के भीतर-भीतर कसक जाग उठी—बोली हँसने की क्या बात थी। भीषण यंत्रणा में उन्हीं का नाम शांति देता है। इस समय सब बातों को छोड़ कर उन्हीं का स्मरण कीजिए। मैं मन ही मन उन्हीं से आपकी यातना शांत करने की प्रार्थना कर रही हूँ। कोई आये न आये। मैं हूँ। आपकी सेवा के लिये क्या पर्याप्त नहीं शिवनाथ को रोक लूँगी। सो जाइये।

डाक्टर आकर देख गया। भरपूर 'इनफ्लूएंजा' था। सावधान रहने के लिये बोल गया। शांति ने दवा लाने के लिये शिवनाथ को भेज कर स्वयं स्टोव पर पानी चढ़ा दिया। डाक्टर उबाला पानी देने के लिये कह गया है। दवा आने पर एक खुराक पिला कर शिवनाथ को कमला के डेरे से बिस्तर वगैरह लाने भेज दिया। बिस्तर आ जाने

पर दूसरे कमरे को साफ करा उसमें चारपाई लगवा दी। सब ठीक कर लेने के बाद बोली—चलिए दूसरे कमरे में। चारपाई बिछी है वहाँ लेटिये। आप न उठ सकें तो बिस्तर एक ओर मैं पकड़ लूँ दूसरी ओर शिवनाथ। देर करने से न बनेगा। उठो।

शाम के धुँधले उजाले में कमलकांत ने आँखें खोलीं। क्षण भर बाद ही आँखें मूँद लीं और तंद्राच्छन्न हो गया। शांति ने शिवनाथ को इशारा किया। दोनों ने बिस्तर समेत ले जाकर पलँग पर कमला को लिटा दिया। झटका लगने से कुछ-कुछ सजग हो कमला बोला—शांति! कहाँ हो तुम? क्यों उठा पटक कर रही हो। पानी...... पानी दो।

शांति ने उबाला पानी गिलास भर कर दिया। डाक्टर ने दूध वगैरह एक दो दिन मना किया है। शिवनाथ ने कुर्सी लाकर वहाँ लगा दी। शांति ने रजिस्टर बन्द कर आल्मारी में रख दिये। कमला के कमरे में आकर कुर्सी पर बैठ गयी। विश्वनाथ जाकर आफिस में बैठ गया।

कमला ने बाहर कंबल से मुँह निकाल कर कहा—तुमने किसका नाम लिया था! ईश्वर का! क्या कहा—उन्हें याद करें। उनके पहले और किसी को......और किसी को याद करना होता है।

किसको याद करोगे। उनसे बड़ा कोई है? मैं नहीं जानती उसे।

तुम सब जानती हो। जो भी जानने योग्य है सब! जो तुम नहीं जानतीं वह जानने योग्य नहीं। तुम हृदय से चाहती हो मेरा भला हो......मेरी वेदना दूर हो। उफ़ लगता है कोई हड्डियों को हथौड़े से कूट रहा है। उफ......

"मैं क्या कानपुर का बच्चा-बच्चा चाहता है। कौन शहर में आपकी शुभ कामनाएं नहीं करता। मुश्किल से आँखों की हहराती तरलता को रोक कर शांति ने कहा......मैं क्या नहीं चाहती हूँ? जिससे आपको आराम मिले वह क्या नहीं चाहती हूँ। मैं......

एक काम करो तब ! डाक्टर से कहो—मुझे 'मारफीन' का इन्जेक्शन दे दे। यह तकलीफ नहीं झेली जाती।

शांति को डेंगू बुखार नहीं आया था। कमला के इस कथन से उसकी पीड़ा की थाह मिली। मानसिक पीड़ा से शारीरिक पीड़ा का प्रहार कम नहीं होता—वह जानती थी बोली—आप पुरुष होकर ऐसी बात करते हैं। इतना दिल छोटा करने से काम चलता है ! मामूली बुखार में इतना घबड़ाइयेगा। जिस व्यक्ति ने पचीसों आदमियों की जानें अपने को खतरे में डाल कर बचाई हों उसके मुँह से यह शोभा नहीं देता। हिम्मत कीजिए। लोगों को देखिये महीनों बीमारी से लड़ते हैं।

कमलाकांत की चेतना पर जैसे चाबुक की चोट पड़ी। कैसी कमजोरी वह दिखा बैठा। नारी के आगे पुरुष के अहं पर चोट लगते देर नहीं लगती। उठ कर बैठ गया और तनता हुआ बोला— ठीक कहती हो। कभी-कभी न जाने कैसी बातें करने लगता हूँ। तुम जाओ शिवनाथ से कह दो रात को यहाँ रहे। एक रुपया उसे दे दो। बाजार में जाकर खा पी आएगा।

शांति ने कहा—आप लेट जाइए। जोश में आने की जरूरत नहीं। मेरे जाने की जल्दी नहीं। बिना किसी को सौंपे न जाऊँगी। कोई न कोई आता होगा। वर्ना दूसरा उपाय सोचूँगी। लेट जाइये। भगवान ने चाहा रात भर में आपकी तबियत ठीक हो जायगी।

कमला ने शिथिलता पूर्वक लेटते हुए कहा—भगवान् ! क्या कहती हो तुम। उन्हीं को लेकर आज संसार से अपने पराये का इतना अर्थहीन व्यवहार चल रहा है। उन्हीं के कारण इतनी खींचातानी बाँधा-बाँधी भले बुरे का वाद-विवाद चलता है। कैसी भ्रामक शक्ति है यह जो मनुष्य को स्वेच्छा से अंधा बना देती है। युगयुगों का ज्ञात-अज्ञात सत्य ढूँढ़ने के बजाय मनुष्य अपने चारों तरफ इतनी भूलों और धोखों को जमा रखता है। अब ऐसी बात न करना।

शांति ने चिढ़ कर कहा—तो...कौन आपको अच्छा करेगा? कौन है जो आपको इस हड्डीतोड़ यंत्रणा से मुक्ति देगा? आप लोग क्या नास्तिक हो गए हैं? जाने दीजिये। शान्त पड़े रहिए। चुपचाप।

कमला कहता गया—संसार के महासमुद्र के बहाव में पड़ कर कौन कहाँ से बहता बहता पास आ जाता है—कौन बह कर दूर निकल जाता है। मुझे संसार की सभी चीजें दूसरी तरह की नजर आने लगी हैं। बिना आँखों देखे विश्वास भी नहीं किया जा सकता।...आपके जाने का समय हो रहा है जाइए अब। मैं अच्छा हूँ। उफ......

कैसा उफ़ है जो अच्छा होने पर भी साथ नहीं छोड़ता। शांति बिखरी आँखों से कमला की ओर देख रही थी। लाल कनेर जैसी आँखों के भीतर अस्थिरता और आस्फालन की अर्थहीन असंगति जहाँ थी। शांति कुछ बोली नहीं। चुपचाप बैठी दीवाल की ओर देखती रही।

कमला ने फिर कहा—मैं भूल गया......बहक गया......गलती कर गया। क्या से क्या कह गया। ये मेरी तब की बात है जब तुमसे भेंट न हुई थी। अब? अब तो मैं संसार में सब कुछ मानता हूँ। आत्मस्वीकृत और आत्मनिष्कृति की ऐसी विभामयी के संपर्क में आकर मैं बदल चुका—मेरी मान्यताएँ बदल चुकी। मेरे भीतर जो मरण का तिमिरमय भवन था वह ढह चुका। अब तो मैं हूँ और मेरा चिर संगी नया विश्वास जो प्रतिक्षण उस सुवेशा की वंदना किया करता है। मेरे मन के तमाच्छादित अविश्वास के ढूह पर किरणों की सहस्रों सलाकाएं लगाती जो अग्निस्रवा मेरे भीतर जाग उठी है वह तुम्हीं हो। तुम्हीं ने मुझे अनास्वादित प्रतीति का अमृत पिलाया है। मैं भगवान क्या प्रत्येक प्राणवान को मानने लगा हूँ......अब......

शांति के कान लज्जा से लाल हो उठे। इस सीधी उच्छ्वास-मंडित प्रशस्ति को सुन कर वह सिर से पैर तक रँग गयी। बोले क्या? कमला के बोलने की सीमा न थी।

कैसा विभिन्न अतिरेक हैं यह ! मेरे समस्त भ्रम इस नवीन आनंद की प्रखर ज्योति में भस्म हो चुके हैं। मेरी प्राण वायु में तरंगों की बाढ़ आ गयी है। स्वप्न और जागृति ज्ञान और अचेतना में यह उपलब्धि मेरा साथ नहीं छोड़ती। लगता है संसार में अब मुझे कोई भय नहीं। तुम जो कहोगी उसे मैं स्वीकार करूँगा। तुम्हें देख कर मैंने समझा है जीवन अस्वीकरण नहीं अंगीकरण है। वेदना का—बड़े से बड़े स्वप्न के टूट जाने की अर्थहीन विशृंखल झंकार का जो मिटते मिटते नहीं मिटती—लुटते लुटते नहीं लुटती—छुटते छुटते नहीं छुटती।

शांति ने कहा—"क्यों मेरी तारीफ़ का पुल बाँधा करते हैं। कृतज्ञ मैं भैया और आपकी हूँ जिन्होंने मुझे जीवन के राजमार्ग पर लाकर खड़ा किया। अवसाद आत्मप्रलय की गलियों में मैं मुँह ढँके घूमती थी—प्रकाश और परिष्कार से अपरिचित। आपने मुझे सेवा का संसार दिखाया। आप ऐसी बात न किया करें। मैं पसन्द नहीं करती।"

कमला की करुण दृष्टि आकर शांति के चेहरे पर टँग गयी। उसमें शिखा का संचरण नहीं निर्वापन का नीरव अंधकार था। शांति को उसमें दीप्त आग्रह—वंचित मनुहार की गूँज सुनायी दी। कमला ने अपनी दृष्टि नहीं हटायी। दोनों हाथों से सिर को दबाते हुए बोला—तुम्हें पसंद नहीं आती तो न कहूँगा। पर मेरे हृदय की सीमा तोड़ कर हर्ष का अमिट चिर अपूरित गान गाने की प्रेरणा किसने दी ? किसने ? किसने मुझे अपने से हार मान कर रोना सिसकना भुला दिया। मेरे मन को असत्य से स्वच्छ कर किसने उसमें यह लय भरा संकार जगाया। मैं अब कुछ न कहूँगा। आपको सचमुच बुरा लगता होगा। मैं जानता हूँ आप पुरुषों के मानसिक भोग और रसास्वादन की सामग्री बनने वाली जाति की नहीं। मेरी बातों में आपको दुर्भावना लग सकती है। पर......पर......अपने प्रत्येक शब्द द्वारा प्रत्येक कर्म

और गति द्वारा मैं तुम्हें ही यत्न करता हूँ। इससे अधिक मुझे नहीं चाहिये। बस......बस......

शांति चुपचाप बैठी थी पर न जाने कहाँ उसका मन पहुँच चुका था। कलकत्ते की किसी अनदेखी अनजानी इमारत के भीतर काम में लगे हुए विमल की मनोहर मूर्ति उसके हृदय के अजस्र अश्रु-प्रवाह में गिरती चली आ रही थी। कैसी उत्कट आकुल उत्कंठा उसे अपने विदेशवासी भाई के प्रति हो रही थी। उसके प्रदान किए संचय के स्वर उसके भीतर नयी व्यथा की घनत्वभरी—बेला जैसी ध्वनि पैदा करने लगे। दूसरे कमरे में जाकर वह टेबिल पर अपना सिर रख कर रोने लगी। उसकी नीरव रुलाई रात्रि के बढ़ते अंधकार में लौट-लौट कर उसी को काटने लगी। सामने आ-आ कर वे जैसे निष्ठुरतापूर्वक हट-हट जाने लगे और इस अयाचित सुख और दुख से वह रह रह कर आँखमिचौनी खेलने लगी। पर कमला की पानी की पुकार सुन कर वह अपने एक-एक आँसू को पोंछ कर, गिलास पानी से भर कर देने आयी। कमला ने चुपचाप पीकर कहा—आप जाइए। देर न कीजिए नहीं तो मुझे कष्ट होगा।

शांति चुपचाप शिवनाथ को सहेज कर चली गयी। आठ बजे का समय था। रास्ते में उसे दीदी के साथ रमेश दफ्तर की ओर जाते दिखे पर वह उनके सामने नहीं पड़ना चाहती थी। उसके चेहरे पर अब भी एक आर्द्र फीकापन था और वह उन्हें यह सब जानने का मौका न देना चाहती। रास्ते भर वह अपनी इस परिणति को सोचती रही। क्या है आखिर यह सब। पुरुष की यह कैसी भूखी-प्यासी लालसा है जो इस प्रकार उसके सामने जमीन से सटती चली आती है। रास्ते भर वह धावा मारे चली आयी। उसके प्राण चंचल वायु में रुदन करते घूम रहे थे और हृदय किसी दूरवर्ती साथी की आस लगाये अचेतन शून्य पथ पर बढ़ता चला जाता था। जिस प्रेम के हाथ वह समर्पित होने के लिये बैठी थी वह दूर—दूर—सुदूर चला

गया। पर वह जीवन में कैसा क्या आ गया जो उसे रह-रह कर माया के नूतन बंधन में बाँधता है। चाह कर भी वह जिसकी अवहेलना नहीं कर सकती। एक है जो मरु-प्रदीप की भाँति अधिकाधिक दूर होता जाता है—रजनी की भाँति धैर्यपूर्वक झुकी उसकी निर्निमेष आत्मा को जाग्रत रखता है। दूसरा है जो कामना की मशाल बन कर प्रतिक्षण अपने झुलसाने वाले धुएँपन से तन मन को अशुचि करता है। एक के लिये प्राण की आशा प्रतिक्षण जागती है दूसरे के लिये अंधकार की जटिल गहरायी अदृष्ट के रसातल से फूट-फूट कर आती रहती है। उसकी आत्मा चिल्लाती हुई पुरवाई की तरह अनवरत पुकार कर रही थी। कहाँ है उसका जीवन प्रभात जो कालिमा के निविड़तम मेघों से उसकी रक्षा करे। उसने तय किया कल वह भैया को अलग पत्र लिखेगी और अपने इस नवीन उल्कापात का दिग्दर्शन उन्हें करायेगी। क्या समझ लेंगे वे उसकी व्यथा को—उसकी घहराती गर्जन करती अन्तर्भूत द्विधा को। घर पहुँचकर शांति सीधी अपने कमरे में चली गयी और अलमारी से विमल का फोटो निकाल टेबिल पर रख उसके सामने अपना सिर रख फूट-फूट कर रोने लगी। दुनिया में और वह सब छोड़ देगी पर यह अभिमान उससे छोड़ा न जायेगा। बड़ी देर तक उसी प्रकार बहने वाले और न बहने वाले आँसुओं से वह रोती रही। खंड-खंड होकर उसका हृदय बहा जा रहा था। अपने भीतर दाहक उलट-फेर वह पाती है। सोती है—सो नहीं सकती। जागती है जाग नहीं पाती। जागने सोने के परे मुमूर्षावस्था में पड़ी दिल की कलंकित धड़कनों के लिये उत्तप्त सिकताराशि-सी अपने भीतर बरसते शोलों का लेखा-जोखा लिया करती है।

× × ×

दस बारह दिन में कमलाकांत बिल्कुल अच्छा हो गया पर कमजोरी दूर होने में उतना ही समय लग गया। शांति बराबर लीग के

दफ़्तर जाती रही और अपना काम पहले जैसी तत्परता से करती रही। रोज तीन चार घंटे वह कमला के पास बैठती—सामने अपना काम करती रहती और बात भी करती। कमला ने उस दिन के बाद कोई ऐसी बात नहीं की जिससे शांति को किसी प्रकार का आत्म-संकोच हो। उसके चेहरे पर ग्लानि और पश्चात्ताप की ऐसी स्पष्ट रेखा थी जो बीमारी की कृशता से दूर अलग अपनी गहरी पीतिमा में लक्षित होती थी। शांति को लगा उस दिन की सारी बातें एक क्षण के लिये भी अदृश्य नहीं होती। उनकी कुंठा बीमारी से अच्छे हो जाने पर भी उसका पीछा नहीं छोड़तीं। बीमारी ने उसे अत्यंत दुर्बल कर दिया था और भोगी गयी शारीरिक वेदना के चिह्न अब भी जैसे वहाँ अवशेष थे। शांति को कभी-कभी अपने उन कठोर शब्दों को लेकर मानसिक परिताप होता था। ऐसी दशा में क्या उसे ऐसी बात कहनी थी। न कहती तो क्या बुरा था। पर...जाने दो। वह तुरंत अपने भीतर मे इस विकल्प को निकाल फेंकती। कोई सार इसमें न दिखाता। शहर में बीमारी अब किसी प्रकार की न थी पर पास ही इटावा जिले में हैजा जोरों में फैल रहा था। लीग की ओर से एक दल वहाँ जानेवाला था। कमला उसके साथ जाने की जिद कर रहा था। रमेश और सावित्री देवी के बुरी तरह समझाने पर वह मान गया। उसकी परीक्षा भी निकट आ गयी थी। लेकिन पढ़ने में उसका मन न लग पाता था। उसके २०-२५ साथी इटावा जा चुके थे। शहर में लीग का काम एक तरह से ठप था। शांति अब रोज कार्यालय न जा सिर्फ सप्ताह में दो बार जाती थी। कमला अपने डेरे पर आ गया था। इस बीच एक दुखद घटना घटी। इटावा में लीग के एक प्रमुख कार्यकर्त्ता मुरारी की मृत्यु हो गयी—हैजे से ही। कमला अब न रुक सका। तार आते ही वह अगली ट्रेन से रवाना हो गया। शांति ने उसे एक दो बार रोका पर कमला ने कर्त्तव्य-परायणता की भावना से उसे चुप कर दिया। शहर का

भार एक प्रकार से शांति पर आ पड़ा। वह रोज दफ्तर जाने लगी। जो कार्यकर्त्ता वहाँ बचे थे वे रोज आते और कमला के वापस आने की राह देखते। मुरारी की मृत्यु पर शोक अभी मनाया न गया था। सब लोगों के लौट कर आ जाने की प्रतीक्षा थी। पाँचवें दिन कमला आ गया। उसने मुरारी की मृत्यु का जो मर्मस्पर्शी वर्णन किया उससे सब साथियों को रोमांच हो आया। किस प्रकार मुरारी ने अपने कर्त्तव्य का पालन करते-करते—विशूचिका से पीड़ित लोगों की सेवा करते-करते अपने प्राण दिये यह सुन कर सबकी आँखें गौरव की ज्योति से उद्दीप्त हो उठीं। मुरारी की स्मृति में स्थायी स्मारक कानपुर में बनवाने की योजना बन गयी। सब लोगों ने जी खोल कर चंदे दिये। शांति ने खुद सौ रुपया दिया और दो सौ स्कूल से दिलवाये। सब लोग इटावे से अन्य साथियों के आने की राह देखने लगे। उनके आने के बाद स्मारक बनने का कार्य शुरू होने वाला था। बाहर जाने और वहाँ से लौटने के बाद कमलाकान्त के मन की ग्लानि दूर हो गयी दिखायी देती थी। शांति से वह पहले की तरह बात करता था और उसके काम की प्रशंसा उससे तथा औरों से किया करता था। शांति के मन का बोझ उतर गया। अपनी दृष्टि में वह पहले जैसी अपराधिनी न रही।

इटावा में हैजे का प्रकोप शांति नहीं हो रहा था। शांति और कमलाकान्त को छोड़ कर लीग के सभी कार्यकर्त्ता वहाँ पहुँच चुके थे। ये लोग बराबर चंदे के लिये घूमा करते थे। स्कूल से वापस आने के बाद शान्ति कमलाकान्त के साथ और कभी-कभी अकेली चंदे प्राप्त करने निकल जाती। दफ्तर का काम एक तरह से बंद था। कभी-कभी घंटे दो घंटे के लिये बैठ जाती थी। लौटने में अक्सर देर हो जाती थी। शांति घर-घर औरतों में घूम कर चंदा और कपड़े इकट्ठा करती। कानपुर जैसे धनाढ्य शहर में इसकी कमी न थी। शांति यथासंभव जल्द घर लौटने की चेष्टा करती थी। वह माता-पिता

को कभी कुछ कहने का मौका न देना चाहती थी। वहाँ से आकर स्कूल का काम भी था। उठते-बैठते वह 'लीग' की बातें सोचा करती। अपनी बाहर न जा सकने की ग्लानि को वह शहर में अधिक से अधिक काम करके धो डालने की चेष्टा करती थी। कभी-कभी उसे यह लगता कि कब तक वह इस प्रकार बाहर जाना टालेगी। कब तक यह पलायन की भावना उसका पीछा न छोड़ेगी ? पिता से उसने दो-तीन बार दबी जबान से पूछा पर वे उसे बाहर भेजने को तैयार न हुए। मन मार कर शांति बैठ गयी। अपनी इस कमी को वह यहाँ अधिक से अधिक चंदा वसूल कर और दफ़्तर का काम अधिकाधिक सुचारु रूप से कर पूरा करना चाहती थी। स्कूल बंद होते-होते उसका मन दफ़्तर पहुँचने के लिये व्याकुल होने लगता था। घर में वह अधिक से अधिक पाँच-दस मिनट रुकती थी।

इतवार का दिन था। शांति को स्कूल नहीं जाना था। दिन को ग्यारह बजे वह कमलाकांत और सावित्री देवी के साथ चंदा माँगने निकली। सावित्री देवी एक दिन पहले इटावा से आयी हैं। वहाँ की जो हालत उन्होंने बयान की वह अवर्णनीय है। लोग कीड़े-पतिंगों की तरह मर रहे हैं। गरीबों की हालत और बुरी है। दवा-दारू, कपड़े-लत्ते, पथ-पानी का प्रबंध तक उनके लिये नहीं। लोग अच्छे होते हैं—फिर बीमार पड़ते हैं। कब तक लोग मक्खियों की तरह दम तोड़ेंगे। हैजे का राक्षस अपना खूनी जबड़ा खोले शहर और निकट-वर्त्ती गाँवों को गुरेर रहा है। घर-घर में लोग तड़पते बिलखते चीखते चिल्लाते हैं। पूरा जिला मौत में डूब रहा है। एक हजार रुपये की सख्त जरूरत है। शाम की गाड़ी से सावित्री देवी को रवाना हो जाना है। लाशों को फूँकने के लिये लकड़ी तक नहीं मिलती। जुलाहों के मुहल्ले की और बुरी हालत है। वे बेचारे गरीब हैं और विधर्मी भी। शहर की सेवा-समितियाँ उनकी ओर ध्यान नहीं देतीं। जिन पर अभी रोग का हमला नहीं हुआ उनके टीके लगाने का

समुचित प्रबंध नहीं। टिड्डी-दल की भाँति बच्चे मर रहे हैं। जहाँ पाते हैं लोग उन्हें फेंक आते हैं। भली भाँति कफन का प्रबंध नहीं होता। जिन्हें रोज कुआँ खोदना और पानी पीना है उनके लिये यह महामारी मौत का पैगाम लेकर आयी है। दिन भर घूम-घूम कर बड़े-बड़े सेठों कोठी-वालों के यहाँ जाकर भी विशेष जमा न हो पाया—केवल सात सौ रुपये। पाँच सौ के वचन मिले हैं: पर वसूल होते-होते चार छः दिन लग जाएँगे। शाम की गाड़ी से सावित्री देवी रुपये, चंदे में मिला सामान लेकर रवाना हो गयीं। स्टेशन से कमला जब वापस दफ़्तर में आया तो देखा शांति बैठी समाचार पत्रों के लिये रिपोर्ट तैयार कर रही है। सात बज चुके थे। कमला जब स्टेशन सावित्री देवी को पहुँचाने जाने लगा था तब शान्ति घर लौटने की बात कह कर न गयी थी। रास्ते में आवश्यक कार्य याद आ जाने से वह दफ़्तर चली आई थी। कमला ने कहा—आप घर जा रही थीं। उठिए घर चलिए। शांति ने मृदु कंठ से कहा—आधे घंटे में खत्म हो जाता है। तब चली जाऊँगी। आप जाइये। मैं जाती रहूँगी।

कमलाकांत बैठ कर बोला—अब मैं आपको काम न करने दूँगा। यह भी कोई बात है। दीदी चली गयीं। कुछ दिन काम चलेगा तब तक हम लोग रुपया इकट्ठा कर लेंगे। हम लोग कुछ आदमी और भेज सकते तो अच्छा था। ऐसे अवसर पर मुझे गुरुजी की याद आती है। वे होते और एक बार व्याख्यान में कह देते तो दर्जनों लड़के घर छोड़ कर जाने को तैयार हो जाते। क्या वे आ नहीं सकते एक बार?

उत्साह से शांति ने कहा—क्यों नहीं आ सकते? आप लिखिए न।

कल लिखूँगा। आप भी लिखिये। आ जायँ तो बड़ा काम हो। आप काम कर रही हैं तो मैं खाली क्यों बैठूँ। रिपोर्ट का अनुवाद कर डालूँ। अँग्रेजी अखबारों में भेजना है।

शांति ने चुपचाप अपने लिखे पन्ने कमला की ओर बढ़ा दिये। कमला बैठ कर अनुवाद करने लगा। पन्द्रह मिनट बाद बोला—खूब! खूब भाषा लिखती हैं आप! मैं स्वीकार करता हूँ मैं ऐसी अँग्रेजी नहीं लिख सकता। ऐसा प्रवाह और वाक्य सौष्ठव मेरे बस के बाहर है......

लज्जा की काली घटा में बहुत हल्की और चमक कर ही छिप जाने वाली बिजली की तरह माधुर्य और मादकता की उज्ज्वल रेखा शांति के मन में खिंच गयी। बोली—मैं अधिक पढ़ी-लिखी नहीं। टूटा-फूटा लिख लेती हूँ—कहते-कहते परितृप्ति की पीड़क झेंप उसके चारो ओर दौड़ गयी। आप विद्वान हैं। आपके लिखने की लोग प्रशंसा करते हैं। मुझमें क्या? सीधी भाषा है। अनुवाद आप क्यों करते हैं? स्वतंत्र लिखिये।

एक-एक शब्द से पीड़ित मानवता के दुख और अपमान की वेदना का पहाड़ फटा पड़ता है। बिना मन की गहरी और आत्मानुभूत संवेदना के यह संभव नहीं। मेरे लिये ऐसी शैली और चोट करने वाली क्षुब्धता असंभव है......असंभव!

शांति चुपचाप सिर झुका कर लिखने लगी। उसे लगने लगा जितना अच्छा वह आज लिख रही है उतना अच्छा उसने पहले कभी नहीं लिखा यद्यपि महीनों से वह बराबर यह काम करती आ रही है। कमला ने थोड़ी देर बाद फिर कहा—आपका शब्द-चयन अनोखा होता है। मुझे अंग्रेजी में उतना मार्मिक शब्द ढूँढ़ने पर नहीं मिलता। अपूर्व अधिकार है भाषा और भावों पर। रिपोर्ट क्या है जीता-जागता बहता बोलता साहित्य है। क्या कहना है! बैठ कर करने का काम नहीं है। घर ले जाऊँगा तब लिखूँगा। कैसी दबी-दबी आग एक-एक वाक्य में दहक रही है......

शांति के हृदय की चंचलता उद्दाम हो गयी। वह घर पर पढ़ी लिखी साधारण अध्यापिका। कमला कालेज यूनियन का सभापति

और प्रतिभाशाली छात्र! कमला प्रशंसाकुल स्वर में हार्दिकता और सच्चाई की अखंड स्पष्टता थी। मौन रहने का आत्मविरोधी आवेग उसके हृदय में आप से आप डूबने उतराने लगा। कमला ने कुछ वाक्य लिखने के बाद कहा—कहीं-कहीं आपने कविता की है। जो गद्य इतना हिला देने वाला है......उसे मैं कविता कहूँगा... कविता। साधारण बात को आपने इतना असाधारण और उदात्त बना दिया है और यह अपील वाले पैराग्राफ सत्य की दृष्टि को एकाग्र तीक्ष्णता प्रदान कर रहे हैं। इस समय मैं पढ़ रहा हूँ......अनुभव कर रहा हूँ। इतनी दूर की चीज बिल्कुल पास......आँख के पास घटित हो रही है......

शांति ने अंतिम पैरा खत्म करते हुए मुदित कंठ से कहा—समाप्त हो गयी। करिये आप जी भर कर तारीफ। कल भेजूँगी।

शीत अब तक बिल्कुल खत्म न हुई थी। शाम को कोमल धीमी हवा में उसका वासंती आभास था। खिड़की से झोंके चले आते थे। कमला ने ठंडे कोट का कालर उलटते हुए कहा—कोयले को धोने से उसका रंग नहीं जाता। आग में जलाना पड़ता है उसे। शब्द जब मन की आग के भीतर से आते हैं तो जीवन की लालिमा पाते हैं। यह भीतरी ज्वाला है जो उनके अर्थ की संगति को ऐसी दाहकता प्रदान करती है।

शांति को लगा सचमुच उसकी श्वास में वासंती संध्या की वायु को उत्तम कर देने की शक्ति है। उसका मन! वह क्या गर्म साँसें नहीं छोड़ सकता? पूरा पढ़ते-पढ़ते भावावेग से कमला उठ कर कमरे में टहलने लगा। शांति वैसी ही बैठी रही। बीच-बीच में नीचे फर्श की ओर देख लेती थी पर अधिकतर वह कमला के चेहरे पर दौड़ते स्फूर्ति के नव-प्रवाह को देखती रही।

कोई अनुभूति व्यर्थ होकर शून्य में लुप्त नहीं होती। उसकी शक्ति कहीं न कहीं जाकर काम करती है। विधाता के पाप का प्रायश्चित

ऐसे ही होता है। इस समस्या की मीमांसा आज तक हो नहीं पायी···

शांति ने संताप भरी साँस छोड़ी—केवल एक।

ऐसी ऊँचाई पर आप खड़ी हैं कि कोई छू नहीं सकता। पढ़ कर नियति का हृदय भी पत्ते की तरह डोलने लगता। नयी चेतना—नयी गति—नयी चमक उसे मिल जाती। महाकाल का मन भी एक बार हिल जायगा। आप वहाँ गयीं नहीं—कुछ देखा नहीं—कुछ सुना है—केवल सुना सुना है। पर अपूर्व है आपका सुनना।

शांति ने कहा—जाने से कुछ नहीं होता। अपने ऊपर पड़ने से ही यातना की विडम्बना को समझा और भोगा जा सकता है ऐसा मैं नहीं मानती। अपने को उस स्थिति तक पहुँचाया जा सकता है। माध्यम होना चाहिए। सच्चा और धड़कता हुआ, जीवन्त...... अतिशय जीवन्त।

कितनों के पास होता है वह? बिरले भाग्यशालियों के पास। ईश्वरदत्त चीज नहीं वह। बूँद-बूँद इकठ्ठा कर उसे आतसी शीशे की तरह जमाना पड़ता है। लम्बी और उबाने वाली क्रिया है। भगवान न करे किसी को उसकी अनुवर्त्तिका बनना पड़े......उसकी छाया तक आत्मा को विक्षुब्ध कर देती है—परछाई आग लगा देती है।

कमला ने देखा—आकाश के बादल सामने पार्क के कोने में खड़े ऊँचे ताड़ के पेड़ पर केन्द्राकार आ आ फैल रहे हैं। पर उसके हिलते पत्तों का यह मर्मर है या बादलों का—कमला तय नहीं कर पा रहा था। शांति की ऊपर—अति ऊपर उठने वाली बात की तरंग में यह आकाश की गूँज है या पृथ्वी की जीवन के स्वरों से शून्य पगडंडियों का यह मर्मर है—वह समझ नहीं पाता। कहाँ है वह छिपा हुआ यथार्थ सत्य जो कमला को पकड़ाई नहीं दे रहा......नहीं दे रहा।

कमला ने कहा—इतनी उच्च शिक्षा—ऐसे अवदात संस्कार—इतना विशाल हृदय! किसके अन्याय और अधर्म के फल से तुम

ऐसी यातना भोगती हो ? किसके दुष्कर्म ने तुम सी जीवनदायिनी को दुःख के अन्धकूप में ढकेल दिया ? क्या तुम्हारे समूचे बलिष्ठ व्यक्तित्व का दान लेने की शक्ति इस दुनिया में न थी—उस परिमाणहीन व्यक्तित्व का महादान लेने की। क्यों उसे इस प्रकार खंडित कर दिया।—कहता कहता कमला कुर्सी के पीछे खड़ा हो शांति के रूखे बालों को उँगली से स्पर्श कर उठा। दूसरे क्षण उसने अपनी उँगली खींच ली। 'अपने टूटे संतापित निर्वासित व्यक्तित्व को लेकर तुम लोगों की सेवा कर रही हो ? कृतज्ञ अपकार के बदले प्रत्युपकार करती हो ! निर्दोष होकर दंड सहती हो ! दंड देनेवालों पर करुणा के आँसू बहाती हो ! मन के भीतर मुँह छिपाये पड़े इतने बड़े संशय को कभी होठों से ढुलकने नहीं देती। धन्य हो तुम।

शांति स्तम्भित बैठी रही। अपने चेहरे का भाव यदि वह देख पाती तो शायद आँखें मूँद लेती। इस भीतरी आनन्द के परिप्रोत में भी क्या वह अपने यथार्थ को भूल पाती। एक दो बूँद आँसू तब अवश्य उसके भीतर से गिरते। अपने को पहचानने में जहाँ वह बहते बहते आ गयी है उस आवर्त को पहचानने में उसे देर न लगती।

शांति ने कहा—क्यों ऐसी बातें करते हो ? क्यों मेरी व्यथा का पर्दा हटाते हो ? क्यों मुझे गोपन से नीचे घसीटते हो ? पूर्व जन्म में मैंने जितना दुख किसी को दिया होगा उससे अधिक नहीं पाया। किसी भीषण अविश्वास का ही दंड है यह ! उसी विष को हृदय में भरे जलते रहने के लिए फिर इस जन्म में आ गयी। भूसी की आग में कभी जलना देखा है ? कितना निर्विकार होता है वह ! भगवान मेरी फरियाद नहीं सुनते......नहीं सुनते......। मैंने अब छटपटाना छोड़ दिया है। जिधर गति मिलेगी बहती चलूँगी। अपने पापों की यह सजा है। किसी और को क्या दोष दूँ। मैं ही अपने कष्ट और दुःख की जड़ हूँ। पर कितनी गहरी—अँधेरे अंतःकरण तक फैली हुई जो निर्जीव अचेतन नहीं हुआ—बराबर प्राण की आशा ढाँपे

जागता रहता है। वह आशा भी कैसी जिससे कभी उसका परिचय नहीं हुआ—कोई जान पहचान नहीं। पर बिजली-छिपे मेघ की तरह वेदना की सृष्टि है वह !

कमला ने कुर्सी के पीछे से सामने आ खड़े हो कहा—तुम्हारा विचार गलत है। वह दूसरी वस्तु है जिसने तुम्हारे समस्त जीवन को आदि से अंत तक बदल दिया है। सुख दुःख के बाहर कर दिया है। मानसिक जड़ता का अंत तुम्हें अपने भीतर करना होगा। मैं नहीं मानता किसी भी व्यक्ति का महत्व जीवन में इतना अधिक है जो अपने साथ दूसरे के आनंद को इस तरह लूट कर ले जा सके। यदि ऐसा होता तो तुम विश्वास रक्खो ईश्वर के विधान में बाँध कर वह किसी को कभी छोड़ कर जा न सकता। मानव की सहिष्णुता और ममत्व पर वे इतना बड़ा अत्याचार न कर सकते—कहते-कहते शांति के पीले पड़े चेहरे और काँपते होंठो को देख कर कमला विह्वल—कुछ कुछ हतबुद्धि सा हो गया। बरसाती तीज की धुँधली चाँदनी जैसा उसका चेहरा उसके सुंदर सुकुमार शरीर पर एकान्त निष्ठा की पीतिमा बरसा रहा था। उसके परिपूर्ण हृदय की तंत्री के एक-एक तार में उन्माद की लयवती रागिनी बज उठी। कुछ मिनट चुप रह कर बोला—कैसा मांगलिक स्वरूप है तुम्हारा ! जीवन का सबसे बड़ा सर्वनाश और अभिशाप सह कर तुम सबको ममत्व का वरदान देती हो ! स्नेह का कैसा उन्मत्त अविनाशी कल्लोल तुम्हारे प्राण की एक-एक बर्तिका में प्रज्ज्वलित हो रहा है। पर अपने प्रति यह कैसा वैराग्य !—यह आत्म-प्रवंचना क्या है ? यह एक प्रकार की आत्म-अस्वीकृति है। इसे छोड़ कर जीवन को अपनाओ—उसे अपने निकट आने दो। क्यों दूर-दूर भागती रहती हो......उसे देखो—प्यार करो।

शांति ने आत्मदाह की भ्रांति में एक अविजानित रोमांच से काँपते कंठ से पूछा—कहाँ......कैसे......मुझे तो नहीं दिखता......

कुछ नहीं दिखता। कहाँ आता है वह! कब......किधर से......किस दिशा से......बोलो।

वासंती समीरण रह-रह कर अपनी अस्पष्ट मादकता संध्या के अचंचल प्राण में उढ़ेल रही थी। कमरे की एक एक रमक मतवाली हो उठी थी। आकाश में आगे-आगे अंधकार और पीछे-पीछे किसी अज्ञात छायालोक की स्वप्न-माधुरी सिमटी चली आती थी—नवोढ़ा सलज्ज वधू जैसी। कमलाकांत ने स्थिरता की घनी श्यामलता आँखों से विकीर्ण करते हुए कहा—जिस अमरलोक में तुम रहती हो उसके हृदय को हिलाता हुआ वह सूर्यालोक की तरह नित्य जीवन का मांगल्य पूरा करने तुम्हारे पास आता है। आनन्द के उस उत्साह-वेग को क्यों विमुख करती हो? उसे सहने की कोशिश करो। क्यों नहीं अपने दोनों उज्ज्वल नेत्रों को खोल उसका जाग्रति अभिषेक करती! तुम देखोगी तन मन की सारी शुचिता उज्ज्वलता से जगमगा उठेगी। क्यों भूल जाती हो तुम अपनी आदि शक्ति के रक्तारक्त आकर्षण को! क्यों अपने को इतना उपेक्षित मलिन रखती हो?—कहते कहते आन्तरिक उद्रेक से कमलाकान्त का स्वर अवसित हो उठा!

भावावेश के कारण शांति को भी स्वेदकंपित रोमांच हो आया। एक बड़ी सौंधी मिठास से वह आकंठ भर गयी। अपने भीतर नयी प्रेरणा—नयी शक्ति—नया बोध पाकर उसका हृदय सुख से भरा आ रहा था। धड़कते कंठ से बोली—सच कहते हो! मैंने उसे नहीं देखा......आज तक नहीं। कभी देख सकूँगी—

क्यों नहीं—कमलाकांत ने अपने हाथों में अत्यंत स्नेहपूर्वक शांति का हाथ लेते हुए कहा—जिन्दगी खंडित होकर रह जाने के लिए नहीं। उससे बड़ी और मनोज्ञ होती है वह! उसकी अगाधता को यों कम न करो! जीवन की संज्ञा पाने दो।

शांति ने न जाने क्यों बड़े आवेग भरे यत्न से कमला के हाथों

में दबे अपने स्वेदसिक्त हाथ को नहीं खींचा। क्या यही जीवन की सिद्धि है—चरम उपलब्धि—स्वर्ग और धरा के बीच की विभाजक रेखा—युगयुग के लिये खोई जीवन की संपूर्ति। इसमें विकलता की पैनी वंचना नहीं—अतृप्ति की मारात्मक धार नहीं—अपने को धोखा दे देकर पलने वाली अकृतज्ञता नहीं। यही है प्रतिदान जो आज तक उसे अप्राप्य रहा है......दुर्लभ......अति दुर्लभ पर जो है प्राणों का पूरक—हृदय के खंड-खंड को मोम सा जोड़ने वाला।

कमला ने कहा—यह संयम—यह नियमन—यह वैराग्य एक दो दिन का नहीं—जीवनव्यापी है यह सब! अपनी शक्ति और तेज को निस्तेज, म्लान निश्चेतन कर लेना। सुंदर देह और यौवन-परिपूर्ण सौंदर्य लेकर यह विकृति कैसी कुरूप है। एक असंभव वस्तु की लुब्ध आशा में पड़ कर छाया के पीछे दौड़ते रहना भूखे-प्यासे उस छाया की मरीचिका को छाती से लिपटाये चलना! मरने से पहले जीवन का सारा रस सूख ज ने पर भयानक शाप की कुहेलिका छोड़ते हुए मर जाना! आजीवन लालसा के क्रुद्ध प्रभंजन का आघात सहना—शून्य से टकरा कर अपने को तिलमिल गलाना। अपरिचित अनजाने एकत्व की साध लिये मृत्युधुंधों में सिर धुनना। क्या है यह सब? ऐसी इंच-इंच कर भस्म करती रहने वाली असीम मरु की प्यास और उसे वहन करने वाला जीवन! याद रक्खो तुम! प्रवृत्तिहीन जीवन में व्यक्ति का मन घुट घुट कर मर जाता है। एक बँधी नीरस अनुकृति जैसा बिना किसी ब्यौरे का अपने अस्तित्त्व के लिए पग पग पर माफी माँगता चलना जीवन! कौन है जो न्याय करेगा? किसका विधान है यह! केवल मन की कायरता और पराजय है यह! अधिक नहीं।

शांति के मन के उफान की सीमा नहीं। जल-प्रपात जैसी अपनी अरुद्ध अविस्मित अवनत देह कुर्सी से उठा कर वह कमल के बराबर तन कर खड़ी हो गयी। उसके गर्वोंधत शरीर में स्निग्ध ऊष्मा फैली

आ रही थी। जीवन की प्रगूढ़ एकस्वरता में आज उसे नवीनता का प्राणाद्र प्रणिपात मिला है। कमला ने उसका हाथ छोड़ दिया। उसके कंधे पर अपना सिर रख कर हाथ से उसकी सूखी अलकों के गुच्छों को सहलाता......दूसरे से शांति की ढोड़ी कोमलता-पूर्वक स्पर्श करता हुआ बोला—रक्त के बिन्दु-बिन्दु में संचरण करने वाली इस अग्नि-मदिरा को लोग पाप कहते हैं। कलुष का कीचड़ वासना का कदम न जाने किस किस नाम से इसे पुकारते हैं। इस स्वर्गीय उत्तेजना को पाप कहना कितना बड़ा पाप है वे यदि जान पाते तो देवत्व का झूठा उपहास न किया करते। मैं पूछता हूँ इससे सत्य प्रत्यक्ष कल्याण कहाँ पाया जा सकता है! जीवन का इससे शीतल विराम-स्थल और कहाँ है? सूर्यास्त के आकाश जैसी मुमूर्षता को लेकर जो जीवन भर उपवास करते हैं वे बौनों की तरह अपना लकवाग्रस्त विकास लिये क्षय होते रहते हैं।

कमला के तरुण निश्वासों के झुरमुट में शांति की तड़पती संपूर्ति अपूर्ति एक गमनीय दिशा पर बढ़ रही थी। उसकी आँखें आप से आप मुँदी जा रही थीं। पूरी चेष्टा करने पर भी वह उन्हें आधी से अधिक न खोल पाती थी। एक हाथ कमलाकांत की पीठ पर थप-थपाती–दूसरे से हौले-हौले उसकी छाती की सजीवता में आश्रय ढूँढती बोली—पर......पर......इसका अंत कहाँ होगा। कहाँ जाकर खत्म होती है यह प्रवृत्ति निवृत्ति की आँखमिचौनी? कहाँ तक जाती है यह ऊर्ध्वगामी प्रेरणा......यह प्रतिहिंसक आत्मशिखा! छोड़ दो मुझे......छोड़ दो...मेरा दिल घबरा रहा है......

मरघट में बसंत-बयार क्यों चलती है? ऊसर में पावस क्यों उमड़ता है? उजड़े से उजड़े जीवन में भी सपनों की साकारता क्यों आती है? यह सृजन की प्रेरणा है—पारपूर्ति का क्रम है—भविष्य की चिरनवीनता का इतिवृत्त है। इसी लालसा में—इसी प्रेरणा में लाखों करोड़ों आगामी जीवन निहित रहते हैं। शक्ति का रूपीकरण

है यह। इससे तुम छूट नहीं सकती। कोई नहीं छूट सकता। मरने के बाद भी मानव इससे नहीं छूटता। इस विराट सत्य में संपूर्ण भव बँधा है। इसी शक्ति से नदियाँ बनती हैं—पृथ्वी अंकुरिता होती है—मिट्टी से कोंपल फूटते हैं—आकाश में तारे उगते हैं। सृष्टि की अवाधता का रहस्य है यह। इसके बिना मानव के स्वरूप का रहस्य अपरिस्फुट रह जाता है—उसके केन्द्र के चारो ओर घूमनेवाली यथार्थता छिपी रह जाती है। नारी का नारीत्व......पुरुष का पुरुषत्व इसके बिना झूठा है। असंगत है—अनर्गल है। जिस निवृत्ति की तुम आज तक दुहाई देती रही हो वह पूर्णता की पुकार नहीं रिक्तता की रंकता है। शून्यता का संताप है। आत्मप्रसाद नहीं—आत्मप्रताड़ना है यह। स्वभाव बनाने की चेष्टा तुम करती रहो पर अभाव कभी स्वभाव बन सका है......कहते-कहते कमलाकांत ने शांति को और कस कर समेट लिया। उसका मन अपने स्पंदन को उसके स्पंदित प्राण में प्रविष्ट कर देना चाहता था। अन्ध सुरापी की तरह उसके होंठ शांति के कुमारी जैसे शीतल होठों की ओर बढ़े जा रहे थे। वह उत्तेजना से विकल हो आत्मसमर्पण की चंचल तुष्टि का उल्लास दोनों हाथ उछालने के लिए लालायित हो उठा था। शांति का प्रकंपित गात सिहर कर दोहरा हो गया था। वह दूसरे क्षण चेतन ज्वलंत विवेक से छटपटाती चीख कर बोली—छोड़ दो—छोड़ दो मुझे! मेरे प्राण फटफटा रहे हैं। मैं कुछ नहीं चाहती......मैं कुछ नहीं चाहती। दूर बैठो जाकर......कहती कहती बधिक के जाल में पड़ी राजहंसिनी की तरह अपनी देह फड़फड़ाने लगी। निग्रहभरी मर्मान्तक वेदना से उसका अंग-अंग मुक्ति के लिये संघर्ष कर रहा था। उसकी उग्रता की व्याकुलता से कमरे के भीतर की वायु का एक-एक टुकड़ा काँपने लगा।

संयत विश्वास से अपनी लालसा को पराभूत करते हुए कमला ने कहा—क्यों......क्यों......ऐसी क्या बात है? भुजाओं का भरा

आलिंगन पाप नहीं। क्या तुम्हें तुष्टि की विभोरता नहीं लगती ? यह आत्मप्रतारणा कैसी ? सुस्थिर हो जाओ। चिल्लाना तुम्हें शोभा नहीं देता......कहते-कहते कमला ने फिर शांति को अपने पिपासित वक्ष की ओर खींचा। उसके खींचने में दृढ़ता थी......दृढ़ता में प्राणोन्मेष-कारी उद्दीपन।

शांति ने फूट-फूट कर रोते हुए कहा—मेरा दम घुट रहा है। रोम-रोम में कोई बरछी भोंक रहा है। मुझे छोड़ दो....मैं न छूटना चाहूँ तब भी छोड़ दो। यह सुख नहीं सह सकती—यह दाह नहीं सह सकती—जो कहना चाहती हूँ नहीं कह सकती। मुझे मार डालो मंजूर है। गर्दन मेरी मरोड़ दो। पर छाती से दूर कर दो। छोड़ो...छोड़ो फौरन छोड़ो। मुंह उधर करो...मेरी देह जल रही है।...छोड़ो... हटो...हट जाओ...छोड़ो।

शांति कमला को अलग ठेल कर आराम कुर्सी पर गिर पड़ी। लगभग दस मिनट बाद जब उसने आँख खोली। सामने खड़ा कमला उसकी ओर तृषातुर नेत्रों से देख रहा था। शांति ने आँखें मूँद लीं। कमला ने कहा—शांति ! शांति !! आँखें खोलो। जी कैसा है ? क्यों इतनी दहशत तुम्हारे चेहरे पर है ? क्या बात है ? मेरी ओर देखो। मुझसे भूल हुई— मैं माफी माँगता हूँ।

शांति की दशा उस मशीन जैसी थी जिसके पूर्जे उलझ गये हों पर जिसकी गति न बंद हुई हो। जो भीषण वेग से चली जा रही हो। जिसके भीतर भयानक प्रतिकूलता—अनहोनी असम्बद्धत—पाशव परिचालन चला जा रहा हो—चलता जाता हो। कमला चुपचाप खड़ा उसके चेहरे पर छायी भीषण वेदना की आकृति देख रहा था जो एक अति क्रूर हिंसक—कुछ-कुछ दानवी परिख्याति लिये प्रतिक्षण अधिकाधिक गहरी होती जाती थी। घोरतम यातना की कठोरता उसके तने होंठो और निष्कम्प विस्फारित पुतलियों पर छायी हुई थी। जैसे उसके संपूर्ण अस्तित्त्व के दो टुकड़े हो गये हों......उनमें घोर

खंड-युद्ध हो रहा हो। दोनों एक दूसरे पर संहारक प्रहार कर रहे हों–एक दूसरे को खाये जा रहे हों......

...सहसा शांति उठ खड़ी हुई। कमला ने हाथ जोड़ कर कहा––मैं क्षमा चाहता हूँ। अत्यंत दुःखी हूँ। अपराध मैं इसे नहीं कहूँगा। आपको मेरे व्यवहार से दुख हुआ है। क्षमा चाहता हूँ। चलिए आपको भेज आऊँ...

नहीं! मैं चली जाऊँगी। आप यहीं रहिए। कह कर शांति आँधी की तरह नीचे उतरी। उसके हृदय को अपने को ही घायल करने के लिये जैसे तलवार मिल गयी हो। वह तेजी से कदम बढ़ाते घर की ओर चली। शांति ने 'क्लाक-टावर' की ओर देखा—साढ़े आठ बज चुका था। उसकी गति में आग्नेय उन्मत्तता आ गयी थी। धावा मारे वह सागर पंछी की भाँति उड़ती जा रही थी जिसे शाम होते-होते कहीं बसेरा लेने के लिये पहुँचना रहता है। संदेह वर्जना सी शांति उद्रेक के अतिरेक में तपती-फुँकती घर पहुँची। दरवाजे पर हरी ने कहा—भैया आये हैं दीदी! तुम्हें कई बार पूछ चुके। जाऊँ कह आऊँ। मेरे टुन्ना के लिये बढ़िया खिलौने लाये हैं...

शांति ने पुचकार कर कहा—बहुत थकी हूँ हरी। सुबह भेंट होगी। तू मत कहना। बुला भेजा तो जाना पड़ेगा।

हरी अब बराबर बहन का कहना मानता है। चुपचाप जाकर बैठ गया।

मा ने कहा—हद कर देती है लल्ली! नौ बजे दिन को निकली रात को नौ बजे आ रही है। क्यों इतनी दौड़-धूप करती है। कहीं तबियत खराब हो गयी तो! मुसीबत झेलनी होगी।

लल्ली ने कहा—हाँ मा! आज देर हो गयी। काम ज्यादा था। आगे इतनी देर न होगी। भैया कब आये? भाभी को लिखा न था।

शाम को आये हैं। दो-तीन बार पूछ चुके तुझे! चार-पाँच दिन

रहने को कहते हैं। फिर जायंगे। उनका काम खत्म नहीं हुआ। खाना खा ले। पूरा दिन बीत गया। सुबह भी ठीक से नहीं खाया।

खाना न खाऊँगी। थक गयी हूँ। चुपचाप लेटूँगी जाकर। भैया से सुबह मिलूँगी। बुलायें तो कह देना सो गयी है।

शांति चुपचाप बिस्तर पर लेट गयी। जिस इच्छा की निवृत्ति में बराकर सुख मानती रही है उसी पूर्ति की इच्छा आज कहाँ से कैसे पैदा हो गयी? निरन्तर दुख सहते रहने पर भी दुख को प्रकट करने की कभी प्रवृत्ति न होती थी। सुख की लालसा करना दुख को अभिव्यक्त करना ही है। शांति का दिमाग और मन आवेगों से व्याकुल हो रहा था। कोई चीज रह-रह कर बाहर निकलने के लिये घुमड़ती थी पर निकल न पाती थी। छाती पर चट्टान सी रक्खी आती थी। उसने कसकर दाँत भींच लिये—निढ़ाल निराश होकर परिताप से प्रस्तरीभूत हो गयी......

घंटे भर ही बाद मा दूध का गिलास लेकर आयी तो लड़की की दशा देख कर चीख उठी। हिस्टीरिया का फिट उन्होंने पहले देखा न था। शांति को कभी न आया था। आवाज सुनते ही उषा पति से बातें करते-करते चौंक कर नीचे उतरी। हरी और उसके पिता आ गये। उषा ने कहा—फिट है। आप चिन्ता न करें। मैं 'स्मेलिंगसाल्ट' लेकर आयी। सुँघाते ही होश आ जायगा। शांति की मा को होश न था। लड़की के दाँत बैठ गये थे। चेहरे पर मृत व्यक्ति जैसी भाव-हीनता......अजीवित जड़ता थी। बोलीं—बीस दफे इस लड़की से कहा इतनी दौड़-धूप न कर! कितनी मेहनत करती है। दुबला पतला शरीर जब देखो तब काम की चिन्ता। न खाने का समय न सोने का, न घर लौटने का। हाय रे भाग्य!

लगभग १५ मिनट में शांति को होश आ गया। उषा ने कहा—लल्ली! क्या हाल है? तबियत ठीक है न! तुम्हारे भैया आये हैं। बुलाऊँ उन्हें।

शांति ने पूर्ण खुली पर उदभ्रांत आँखों से उषा की ओर देख कर कहा—नहीं ! उन्हें आराम करने दो। सुबह मिलूँगी। मेरी तबियत ठीक है। सिर में बड़ा दर्द है। बदन फटा जा रहा है। क्या करूँ ?

कुछ नहीं बेटी ठीक हो जायगी—उषा ने सान्त्वना देते हुए कहा। सिर में तेल डाले देती हूँ। कितना रूखा है ! तू कभी ठीक तरह से बाल भी नहीं बाँधती। कहती हुई उषा तेल लेने गयी।

काट कर फेंक दूँगी बाल ! क्या जरूरत है इनकी—शांति बुद-बुदाती बोली। उषा लाकर सिर पर तेल मलने लगी। विमल ने पुकारा—लल्ली ! कैसी तबियत है तेरी। क्या हो गया तुझे आज ! लेटी रह ! उठ कर क्यों बैठती है। लेटी रह।

चले जाओ भैया ! तुम क्यों आये ? तुम्हें किसने बुलाया ? जाओ ! फौरन जाओ ! खड़े हो ? तुम्हें कौन बुलाने गया था ? जाओ ! फौरन जाओ।

विमल चुपचाप चला आया। शांति फिर पलंग पर गिर पड़ी। मा पंखा झलने लगी। उषा सिर में तेल मलने लगी। हरी भौचक्का सा चुपचाप खड़ा देख रहा था। क्या हो गया दीदी को......

एक घंटे बाद शांति को दूध पिला कर उषा लौट आयी। शांति की आँखें झपने लगीं थीं। उषा ने कहा—जा हरी ! सोता क्यों नहीं ? सोने के कमरे में जाकर चुपचाप सो। तुम सोवो अम्मा ! अब इसे जगाना मत।

विमल चारपाई पर पड़ा न जाने क्या-क्या सोच रहा था। उषा आकर बच्चे को दूध पिलाने लगी। चाची पहले सो चुकी थीं।

बारह

दूसरे दिन शांति स्कूल नहीं गयी। सुबह से विमल उसकी प्रतीक्षा करता रहा पर वह न आयी। दोपहर बीती। तीसरे पहर विमल ने उषा से कहा—लक्ष्मी की तबियत कैसी है। दिन भर हो गया आयी नहीं। जरा हरी को बुलाओ न!

हरी स्कूल से लौट आया था। विमल ने पूछा—लक्ष्मी क्या कर रही है रे! देख आ जरा बुलाना मत। मैं खुद उसके कमरे चलूँगा।

हरी ने लौट कर बताया—पड़ी पढ़ रही है। विमल ने कहा—चल मेरे साथ। कमरे के बाहर से विमल ने पुकारा—लक्ष्मी क्या कर रही है?

शांति झपट कर उठ बैठी। चुपचाप दरवाजे के पास खड़ी हो गयी। दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम कर नीचे भूमि की ओर देखने लगी।

विमल ने कहा—तुमने ठीक किया जो स्कूल नहीं गयी। मैंने इसी-लिये तुम्हें नहीं बुलाया—तुम लेटो चल कर। मैं कुर्सी पर बैठता हूँ। खड़ी मत रहो।

मेरी तबियत ठीक है भैया! कमजोरी थी सुबह दूर हो गयी। यों ही नहीं गयी। आपने क्यों तकलीफ की। मुझे बुला लेते। मैं आने को सोचती थी...

तुम्हारे कमरे तक आने में मुझे तकलीफ होगी! तुम्हारे चेहरे से लगता है तुम हफ़्तों की बीमार हो। क्या है? फिट तुम्हें पहले कभी नहीं आया? आया तो तुम्हें इतना गिरा दिया। चल कर डाक्टर को दिखा दो।

शांति ने कहा—नहीं भैया! ऐसी बात नहीं। कल परसों बिल्कुल ठीक हो जाऊँगी। तुमने पहले से कुछ नहीं लिखा। एकाएक आ गये। अब तो न जाओगे?

एक बार जाना पड़ेगा। एक किताब खत्म कर आया हूँ। दूसरी

लगी हुई है। तीसरी के लिये उसने अभी से जान खाना शुरू कर दिया है। मेरे लिये भी रोटियों का रास्ता दूसरा नहीं। जम कर किताबें, लिखूँगा। मेरे पास पहले की लिखी पर्याप्त सामग्री है। 'लीग' का क्या हाल-चाल है? कमला मजे में है न! मुरारी की मृत्यु का हाल मैंने 'पेपर्स' में पढ़ा था। मेरा विद्यार्थी रह चुका है। मुझे बड़ा अफसोस हुआ। उसके स्मारक के लिये चंदा देना है। मुझसे इन लोगों ने माँगा नहीं। पर एक समय मैं लीग की कार्यकारिणी में रह चुका हूँ। देना कर्त्तव्य हो जाता है। कमला को मेरे आने का पता लगेगा तो अवश्य आवेगा। तुम बाहर निकलतीं तो संभव है उसे आज पता लग जाता। क्या सोच रही हो लल्ली! लेट जाओ न! इस तरह खड़े-खड़े बात करोगी तो मैं चला जाऊँगा। लो चला!

शांति चुपचाप चारपाई पर लेट गयी। चद्दर उठा कर उसने अपने ऊपर डाल लिया। उसकी उभरती साँस में वायु समा न सकने के कारण फूल रही थी। यौवन की मौन कुंठा का विस्तार ही ऐसा होता है। मन की शांत हिलोरें फिर नयनों की नमित कोरों के किनारे आ आकर उन्हें द्रवित करने लगी......जीवन के मार्गदर्शक नक्षत्र को देख कर हृदय की मौन अवसिता जलन न जाने किस अचीन्ही करुणा का सहारा खोजने लगती है। नारी का नारीत्व है यह!

कमल के सम्बंध में शांति क्या बताये? कल रात से वह मौत की मीनार बनी ऐसी ही जीवन के आकाश में मुँह बाये पड़ी है। सूर्य की रश्मियाँ कमरे की बड़ी खिड़की की राह आकर उसके जले राख की तरह अजीवित मुख पर पड़ रहीं हैं पर उसके भीतर जो जीवित अंधी कब्र है क्या वहाँ तक वे पहुँच पाती होंगी? सुबह से ज्यों-ज्यों घंटे एक एक कदम चुपचाप आगे बढ़ते हैं त्यों त्यों कैसी हूक उसके भीतर उठती रही है। वह अपने भीतर बराबर खिसकती रही है। ये हूकें भी कैसी होती हैं! सारी तृषित मानवता की अंतर और बाह्य गति उन पर निर्भर रहती है। पर वे स्वयं कितनी परवश होती हैं! न वे दिल

की धड़कनों को सुन पाती है न दिल की धड़कनें उन्हें सुनती हैं। ठंडी हवा उनमें नयी बलदायिनी शक्ति और मधुर सिहरन नहीं पैदा करती—गोधूली की विषादारुण अरुणिमा उन्हें आकाश में उदित होने वाले नक्षत्रों की आशा का बल नहीं देती। कैसी भयंकर जड़ता उन्हें ग्रसे रहती है। उनमें कंपन नहीं होता—उनमें गर्जना नहीं होती—उनमें चीत्कार नहीं होता—उनमें उल्लास की धूम्रशिखा भी नहीं होती......

विमल कुर्सी पर बैठ गया। हरी चुपचाप आकर बहिन के पैताने बैठा था। शांति को लगा वह अपने अन्दर से कुछ निकाल फेंकना चाहती है पर निकाल कर फेंक नहीं पाती। जिन बातों को यों निर्वासित करना चाहती है वे संगठित होकर न निकलने की ज़िद कर रही हैं। उसकी अन्तरात्मा यदि निर्दोष निरपराध होती तो उसमें इतनी दृढ़ता होती। पर वह तो बेजान हो गयी है—कल से मुर्दा पड़ी है। शांति चुप है पर उसका मन न जाने किससे कैसा बोल रहा है। कल की घबराहट छटपटाहट का स्थान अवसन्न विभीषिका ने ले लिया है। वह चुप है......

विमल ने कहा—तू किस चिन्ता में है। कुछ बोलती नहीं। क्या सोच रही है! मेरे ऊपर नाराज है जो पहले से आने की सूचना नहीं दी। दो चार दिन पहले से तू खुशी मनाना शुरू कर देती। मैंने कोई इरादा नहीं बनाया था। एकाएक मेरे मन में आया—चल पड़ा। इसमें मन भारी करने की क्या बात है। सिर में दर्द है?

विमल की निष्कपट सरल बातों ने शांति के मन को अभिभूत कर दिया। उसे अपनी रुलाई रोकना असंभव हो गया। वेदना की बीन की झंकार फिर प्राण में समा गयी। भीतर-भीतर चारो ओर बिखरा सारा का सारा अर्ध सिमट आया। चादर के भीतर उसके पैर डगडग काँपने लगे। साँसों का तार कंपन के दुर्दान्त वेग से असह असंगत-क्षुब्धता के किनारे आकर टूट गया। विमल के आकाश जैसे

भाल के नीचे वह अंधकार के स्वरों में बँधी निशा जैसी मँडरा मँडरा कर केन्द्राकार फिरने लगी। फूट-फूट कर रो उठी......रो रो कर फूट पड़ी। सोया तूफान हहराता हुआ जाग पड़ा। उसने आँसुओं से लथ-पथ अपना मुँह चादर के भीतर छिपा लिया......

विमल की समझ में कुछ न आ रहा था। सामने सृष्टि जैसे गूँगी हो गयी थी। आकाश में एक पक्षी भूला भटका उड़ा चला जा रहा था। दिवास्वप्न से जगी हुई उसकी तीव्रगति न जाने किस सुदूर कोटर से आती बच्चों की प्रत्याशा का आह्वान सुन रही थी। धूल की गठरी सिर पर रक्खे हवा उसे उड़ाये लिये जा रही थी। विमल ने कहा—मुँह खोलो। मेरी ओर देखो। क्यों अकारण रो रही हो! क्यों नदी के कगारे सी कटती जा रही हो। मुझे बताओ न। मुझको देख कर रोना कबसे आना शुरू हुआ। आँखें खोलो। पलकों में कौन सी व्यथा है—मैं भी देखूँ—समझूँ......

शांति झपट कर उठ बैठी। मुख पर यातना के प्रचंड मेघ की दहाड़ थी। केवल दहाड़ ही नहीं उसका बरसा और अनबरसा प्लावन था। वैसे ही रो रही थी यद्यपि फूट-फूट कर होने वाली क्रिया का स्थान मंथर वेगपूर्ण गति ने ले लिया था। उन्मादिनी की भाँति विमल के चेहरे की ओर देखने लगी......देखती गयी......देखती गयी जब तक नमी के धुँधल के भेद कर दृष्टि बढ़ने में असमर्थ हो गयी।

कैसा अक्षम्य संताप था जो न बढ़ता था न रुकता था......

विमल ने सिर पर हाथ फेरते हुए पुचकार कर कहा—लक्ष्मी! क्या बात है? मुझसे छिपाने की जरूरत! कह डालो न! कल रात को तुमने मुझे भाग जाने को कहा। मुझे तुम्हारे सामने न आना था पर तुम्हारी तबियत का हाल सुन कर मुझसे रहा न गया। आज तुम चाहती हो तो मैं चला जाऊँ! जाने के पहले तुम्हारे मानसिक कष्ट का कारण जानना चाहता हूँ। कौन सी बाढ़ है यह जो तुम्हारे भीतर पछाड़ खा रही है। बोलो......बोलो न!

शांति ने सुबुक कर चादर में मुँह छिपा लिया। आँसुओं की आर्द्रता में छिपती मुँदती आँखें चादर से पोंछ कर कढ़े-खाँड़े की तरह अपने ऊपर गिरते बोली—मैं तुम्हारे साथ चलूंगी। यहाँ अब एक क्षण न रहूँगी। विनती करती हूँ मुझे ले चलो। यहाँ मैं मर जाऊँगी। जीवित न बचूँगी......

विमल ने कहा—मैं तीन सप्ताह में लौट आऊँगा फिर काफी महीने यहाँ रहूँगा। तुम्हारा मेरे साथ परदेश में अकेले रहना...... लोग क्या कहेंगे?

तुम! तुम कुछ कहोगे......उन लोगों की तरह बातें सोचोगे?

मैं तुम्हें जानता हूँ......अपने को जानता हूँ। मैं क्या कहूँगा? पर और लोग। तुम्हारे घर में लोग हैं। मेरे घर में भी। वे क्या इसे अच्छा समझेंगे। दादा सुनेंगे तो क्या कहेंगे? भाभी चलती तो बात दूसरी थी। पर उसका जाना असंभव है।

कुछ असंभव नहीं! भाभी को ले चलो। मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मुझसे एक क्षण न रहा जायगा। जिस प्रकार होगा यहाँ से भाग जाऊँगी। तुम चले क्या गये मेरा बल लेते गये। मैं क्या थी क्या हो गयी......

रोते-रोते शांति ने सारी बात बता दी। विमल ने कहा—बस? इतनी सी बात के लिये तुम संताप भोग रही हो। मैं इसमें कोई हानि नहीं देखता। आकर्षण की जीवनोन्मुख अविनाशी ज्वाला है यह! कौन इससे बचा है......कौन बचेगा......कौन प्रतिकार करेगा? हरी एक लोटा पानी ले आ भैया! जल्दी! उठो मुँह धो डालो। अगर एक आँसू तुम्हारी आँख में देखा तो माफ न करूँगा।

मैं नहीं चाहती तुम मुझे माफ करो। मैं सिर झुकाए खड़ी हूँ। जो दंड चाहो मुझे दो। पर मुझसे ऐसी बात न करो। मैं कल 'लीग' से स्तीफा दे दूँगी। तुम क्या समझोगे मेरा कितना अपकार हुआ। मैं क्या थी—क्या हो गयी। मुझे अपने से दूर न करो। तुम्हारे बिना

मेरी निष्कृति नहीं—यह मैं जान गयी। मुझे अपने से दूर कर दोगे तो कहीं की न रहूँगी।

इसमें माफ करने की क्या बात है ? तुमने कोई अपराध नहीं किया। तुम्हारे ज्वलन्त विवेक ने तुम्हें यह प्रतिक्रिया दी है। मैं इससे विवेक नहीं मानता। मैं इसे चरित्र की प्रोज्ज्वलता और बेदागपन नहीं मानता। मैं तुम्हें क्या माफ करूँगा ? तुमसे केवल यह प्रार्थना करूँगा तुम अपने को माफ कर दो। अपने को निरपराध सताने से वही पाप होता है—वही मानवीय अकर्त्तव्य होता है जो दूसरे को उत्पीड़ित लांछित करने से। अपने विडम्बनाभोगी प्राण को शांत करो।

तुम इसे नहीं समझोगे ? कोई इसे नहीं समझेगा। इसे मैं समझती हूँ—मेरे भगवान समझते हैं। ऐसी अशुचिता का अनुभव मैं कर रही हूँ कि मुझसे सुबह पूजा तक नहीं की गयी। होश सँभालने के बाद आज पहली बार मैंने भगवान की पूजा नहीं की। उनके सामने ढोंग रचने की मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई। कौन सा मुँह लेकर उनकी पारदर्शी मूर्ति के सामने जाऊँ ? तुम्हारे सामने आने पर कम कालिख लगती है मेरे मुँह पर ? मैंने देवता का निर्माल्य दूषित किया है। मैंने पूजा का अर्घ्य कलंकित किया है—उपासना की नीराज़नी निष्ठा मैंने अपवित्र कर डाली। मुझे क्षमा करो भगवान्......मुझे क्षमा करो... मैं पापिनी हूँ। वासना की उन्मुख विकलता के पीछे-पीछे चल पड़ने वाली......बह जाने वाली पापिनी! हे भगवान! हे देवता!! हे स्वामी!!! कैसे मेरा त्राण होगा ? कैसे रौरव नर्क से मेरी रक्षा होगी। तुम चलो भैया! मेरी ओर न देखो। तुम भी अपवित्र हो जाओगे... जाओ। कहते-कहते शांति ने इतने जोर से अपने होंठ काट डाले कि खून बहने लगा। उसकी आँखों से फटी-फटी अस्थिर भीषणता झलक रही थी। अपने आवेग की असहायता से विक्षिप्त होकर शांति ने फिर आँखें मूँद लीं।......

विमल ने शांति के मुँह से चद्दर हटा कर एक ओर फेंक दिया।

शांति उठ कर खड़ी हो गयी—भागो ! भागो !! मुझ पापिष्ठा की परछाईं तुम पर न पड़े। मेरी लालसा की जघन्यता—मेरी कामना की कुत्सितता से ओट चले जाओ ! भागो भैया ! भाभी !! सब भागो। कैसी भयानक लपट है। नहीं सही जाती—कहती-कहती शांति दूर हट कर खिड़की से टिक वक्र खड़ी हो गयी। कैसी यंत्रणा-दायक जलन है यह !

विमल ने कहा—अभी तुम मेरे साथ कलकत्ते चलने को कहती थी। भाभी को ले चलने को कहती थी। अब हम लोगों को दूर भगा देना चाहती हो। एक क्षण-एक बात—दूसरे क्षण—दूसरी ! होश में आओ—संगत बात करो।

क्या करूँ ? जलते अंगारे की तरह उस कलुषित स्पर्श की बात नहीं भूलती......नहीं भूलती......रह रह कर ऊपर चढ़ी बैठती है। जब देखो तब जाग उठती है। जब तक बेहोश रही तब तक शायद उसे भूली रही। अपने मन को धोखा नहीं दे पाती। कहाँ थी यह अनुभूति इतने दिन ? जरूर मेरे भीतर थी। पुरानी पापिन हूँ मैं ! मुझे आँख दिखा कर रोक सकते हो......मेरे मन को नियंत्रित नहीं कर सकते......अनियंत्रित दाह है वहाँ मेरे भैया ! मेरा हाहाकार अब न रुकेगा। हे भगवान् ! कैसे मेरा उद्धार होगा। मेरे अन्तर्यामी !

जानता हूँ बहन ! मैं सब जानता हूँ। कल तेरी मुद्रा देख कर जान गया था किस विकट आतंक से तू विह्वल है। समय उसके प्रभाव को आपसे आप निरस्त कर देगा। समय का प्रभाव ही ऐसा है। मानव बड़ी से बड़ी वेदना भूल जाता है। फिर पहले जैसी शांत पवित्रता तुम्हारे मन को परिपूर्ण कर लेगी।

कौन मेरी अग्नि परीक्षा ले रहा है ? तुम ले रहे हो......तुम भैया ! तुम मेरे हृदय के साथ खिलवाड़ कर रहे हो—काँप कर शांति ने दोनों हाथों से अपना सिर दबा लिया......आकुल भाव से तुम्हें अपने भीतर पुकारती हूँ। इस दारुण दुर्दैव से मेरी रक्षा करो। क्यों

नहीं तुम अपने आसन पर आ बैठते ? जिस मूर्ति को मैं अब एक पल नहीं देखना चाहती वह क्यों मुझे दिखती रहती है ? क्यों नहीं तुम मुझे बचाते......क्यों इस प्रवंचक अदृष्ट के साथ खिलाते-खिलाते मुझे सीमा के बाहर ले गये ! ऐसे विप्लव की आँधी में मुझे उड़ा दिया। तुम्हीं पर इसका भार है......आज जब मैं साथ चलने कहती हूँ तो दायित्व से भागते हो......कैसे हो तुम......कितने बेदर्द और छली......प्रवंचक और ऐन्द्रजालिक। हो न ! मुझे रास्ता नहीं दिखाते ! मुझे इस आग से नहीं उबारते।

तुम इसे असंयम और कदाचार क्यों कहती हो ? मन के साथ तुम्हारा यह व्यर्थ का संग्राम क्यों चल रहा है ? हृदय की भूखी लालसा कब तक तृप्ति की ओर न जायगी ? संयम के नाम पर जीवन की अकर्मण्यता कब तक टिकेगी ? यह वासना का कलुष नहीं जीवन का प्रवाह है। जीवन......जो निषेधों वर्जनाओं के पाषाणमय कूलों के बीच वेग से बहते महानद की धारा की भाँति कल्लोल और उल्लास के साथ अग्रसर होता है......जिसमें हास, कलरव आवेग है...... जो गतिशून्य और प्रशांत नहीं। जो प्रवृत्ति के श्यामल मेघ सा फैलता है। जो हर क्षण नया होता है......जो सदैव नये सिरे से बनता रहता है। क्यों तुम इसके नये स्वाभाविक रूप में जाने से इंकार करती हो ? तुम आत्मा की पवित्रता की बात करती हो। दोनों अलग अलग चीजें हैं। शरीर को दुख देने और परिपूर्ति के सुखों से वंचित रखने से और आत्मा की शुद्धता से क्या सम्बंध है ? मन को भूखों मारने से काम नहीं चलता। उसे इस प्रकार निष्पाप नहीं किया जा सकता। यह तपस्या की क्रिया क्या आत्मा पर कोई स्थायी प्रभाव डाल पाती है ? कदापि नहीं। रह गया मैं ? मैं तुम्हारे साथ छल-क्रिया करूँगा ? मैं तुम्हें इस आत्म-प्रवंचक गतिरोध से हटाना चाहता हूँ। तुम मुझको लेकर उसे और घनीभूत करना चाहती हो। हरी पानी ले

आया। मुँह धो डालो। मन को शांत कर जीवन को गहराई से समझो......

तुम्हें हृदय के गोपनतम प्रदेश में पूजती फिरती हूँ। कैसे मैं इतनी आत्म-विस्मृत हो गयी? नग्नता की ज्वालामयी स्मृति को मैं कहाँ दफनाऊँ! जिसे भीतर जगाती हूँ वह क्यों नहीं जागता। जिसे आराधती हूँ—उसके संचार का अनुभव नहीं होता—जिसे नहीं चाहती वह अभिशाप की तरह पीछा करता है। कितना कठोर दंड है यह—किस पाप का फल है.........किस पातक का यह अधःपतन है। कितनी बड़ी मिथ्या को मन में आश्रय दिये हूँ। पर निकालने पर भी वह नहीं निकलती। अजगर के सैकड़ों वेष्टनों में कसे जीव की तरह यह तिलमिला कर घुटना......नहीं सहा जाता भगवान्! नहीं सहा जाता भैया! मुझे उबारो......मेरी रक्षा करो......असह है यह प्राणदंड......तुम इसे जीवन कहते हो......सत्य कहते हो... . स्वभाव कहते हो। सत्य में यंत्रणा क्यों—जीवन में आत्ममरण का दुःसह पीड़न कहाँ......स्वभाव में प्राण के निर्वासन की वेदना क्यों? कितना आत्मनिवेदन किया पर तुम न पसीजे......कैसे स्थिर धीर बनूँ? भीतर से ऐसी मर्मभेदिनी पीड़ा लेकर कैसे आत्म-विक्रय करूँ......कर्मभोग है यह!......कहते-कहते शांति चारपाई पर मुँह के बल गिर पड़ी और फूट-फूट कर रोने लगी।

रोओ न लल्ली! यह विधिलिपि नहीं है। इसकी रचना करने वाली स्वयं तुम हो। बलपूर्वक एक बार अपने को पहचान कर इसे तोड़ सकती हो। अदृष्ट का यह विधान नहीं तुम्हारी ही रेखा लेखा है। अपने मन की भीषण व्याधि की तुम्हीं विधात्री हो। किसी अन्य ज्ञात अज्ञात शक्ति को दोष न दो। तुम्हीं अपने रुधिर से इस व्यथा को रूप रंग दे रही हो। दुष्प्राप्य मरीचिका को आदर्श मान कर जीवन भर उसके पीछे-पीछे पशु की तरह चलते जाना—निरावेग—निष्काम—निष्प्रयोजन क्या है यह! जिन्दगी के प्रति सबसे निष्ठुर परिहास है—

सबसे कठोर व्यंग है। दुःख और पश्चात्ताप का यह ज्वालामुखी तुम्हारे भीतर किसी वास्तविक पदस्खलन को लेकर होता तो मैं तुम्हारे साथ पसीजता...रोता। यह युगों के निर्जीव संस्कार पर चोट पड़ने की अवांछित पीड़ा है। सत्य है केवल वह दुर्दयनीय स्पृहा जो तुम्हारे हृदय में तड़ित वेग से संचारित होकर यौवन की अब तक सोयी कामना को जगा गयी।

वह घृणित लिप्सा थी—नारकीय आसक्ति...इससे अधिक नहीं। केवल शरीर की आग थी न ! क्षणभर के लिये मधुर लोभनीय लग कर ज्वालापुंज दे गयी। किस पवित्र जल में अवगाहन कर अपने खोये नारीत्व को नये सिरे से लौटा सकूंगी ? कौन सी प्रार्थना निरत उपासना मैं करूँ ? जिस देवता पर अपनी बाती चढ़ाना चाहती हूँ वह मुझे जैसे पहचानता नहीं—अपने को भी नहीं पहचान पाता। जिसे सत्य समझ कर बराबर मन के साथ वरण करती आई वह मुझे प्रताड़ित करने में सुख पाता है। मेरे अभाग्य की सीमा है...एक युग की साधना उसी के द्वारा तिरस्कृत होने पर इस तरह पथभ्रष्ट हो गयो। कैसा भ्रम मुझे हो गया...कैसी भ्रांति में जाकर मैं फँस गयी भँवर में पड़ी नाव जैसी। तुम इतना सह लेने के बाद भी मेरी उपेक्षा करते हो। मैं ऐसे ही इधर-उधर मारी-मारी फिरूँगी—जीवन की अवरुद्ध गलियों में भटका करूँगी।

मैं तुम्हारी उपेक्षा नहीं करता लक्ष्मी ! तुम्हारी उपेक्षा मैं कैसे करूँगा। उपेक्षा केवल अपनी करता हूँ। अन्य किसी की नहीं। कभी नहीं।

वही मेरी उपेक्षा है। तुम अपनी उपेक्षा करते हो याने मेरी उपेक्षा करते हो। मेरी उपेक्षा करके आज तुमने मुझे इस दशा में पहुँचा दिया है। अब न करो। घड़ी भर के लिये मेरे को अपने में भटक लेने दो। जो हो गया उसे क्या करूँ ? कितनी आशा लगा कर बैठी थी। जीवन में न पा सकूँगी तो मरने पर पाऊँगी। मार्ग की उड़ती

धूल से अंधी होकर किनारे भी न लगने पायी। मैं मिट गयी...लुट गयी...। सब कुछ लुट गयी...किसे शरण के लिये पुकारूँ...किसे...किसे ?

विमल ने कड़े स्वर में कहा—मुँह धो डालो ! अम्मा, दादा, उषा, चाची किसी क्षण आ सकते हैं। वे लोग यह खिलवाड़ देखेंगे तो क्या कहेंगे ? जितना कहा और सहा क्या वह काफी नहीं ? देर न करो—हरी बैठा तब से तुम्हारी ओर गौर से देख रहा है। थोड़ा बहुत समझता है। इस प्रकार अपने को प्रवाद में न डालो। कोई आ जायगा...

मुझे परवाह नहीं भैया ! जिसका सर्वस्व लुट जाता है उसे अपनी दीनता के प्रदर्शन का क्षोभ नहीं होता। मैं बिल्कुल बेलौस—अकृतज्ञ हो गयी हूँ। जिसका इतना बड़ा पातक आत्मा का पर्दा फाड़ कर फूट पड़ा हो उसका किससे क्या दुराव ? मैं लाचार हूँ। मुझे न रोको। रोने दो। न जाने कितना रोऊँगी तब जलन शांत होगी—कहते-कहते शांति की आँखें मूसलाधार बरस पड़ीं। तुम्हें यह खिलवाड़ लगता है। मेरा जीवन भर का संचित भंडार जल गया। तुम्हें हँसी सूझती है। ठीक है ! मैं इसी की पात्री हूँ। यही मेरे लिये उचित है।

फौरन उठ कर मुँह धोओ—नहीं मैं रात को चला जाऊँगा। समझीं ! मेरी बात तुम टालोगी यह मैं न जानता था।

चले जाओ ! मैं स्वयं मनुष्य-समाज से निर्वासित हो जाऊँगी। मेरे भयानक पाप का यही आंशिक दंड है...यही उसका प्रायश्चित है। दैहिक पाप पाप है—मन का पाप महापाप है। मैं चाहती हूँ सब लोग मुझे देख कर उँगली उठा कर कहें—यह पापिनी जा रही है। मैं सब स्वीकार कर लूँगी। मुँह से उफ न करूँगी। तुम्हारी शिक्षा ने मेरे भीतर अनात्म का साहस जाग्रत किया है। मैं उसे लेती चलूँगी। शायद मेरा खंडित नारी-धर्म एक क्षण को जुड़ सके।

मेरा कहना न मानोगी। मुँह हाथ न धोओगी। रोना बंद नहीं करोगी। एक ओर हृदय के गम्भीर आवेग के साथ मुझे पाने की

व्याकुलता प्रकट कर रही हो—दूसरी ओर मेरा कहना नहीं मानतीं। झूठा है तुम्हारा सारा प्रेम और विवेक! तुम मेरे विश्वास की रक्षा तक नहीं कर सकतीं।

यहीं आकर शांति विवश कातर हो जाती है। प्रत्येक नारी यहाँ अपने को शिथिल और आत्म-समर्पित अनुभव करती है। विमल ने अभिमान से फूल कर कहा—एक ओर मेरे प्रति श्रद्धा-प्रेम का दम भरती हो—दूसरी ओर मैं कुछ कहता हूँ तो घृणा के साथ प्रत्याख्यान करती हो। मालूम नहीं—मेरी श्रद्धा और विश्वास का अपमान करती हो या अपनी। कैसी सजग विरक्ति है तुम्हारी! जिसे तुम बार-बार सत्य की निष्ठा कहती है वह असत्य का कौतुक है।

आर्त कंठ—अस्पष्ट स्वर से न जाने क्या कहती और पागलों की तरह चीत्कार करती शांति लड़खड़ाते पैरों से कमरे का चक्कर काटने लगी। सचमुच वह विक्षिप्त जान पड़ने लगी थी। विमल ने कहा—तुम्हारी बात माने लेता हूँ। तुमसे एक भूल हो गयी। पर क्या तुम किशोरावस्था के निष्कलुष मन और चरित्र को फिर नहीं पा सकतीं? सच्चे मनुष्य की तरह रहने की चेष्टा क्या नहीं कर सकतीं? अपने को पापिनी मान कर इस प्रकार प्रलाप करती हो। तुम्हें पाप से घृणा करनी चाहिये—पापी से नहीं। अपने ऊपर इस प्रकार घृणा करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। यौवन की अल्हड़ उमंग में इस प्रकार की भूलें सबसे होती हैं। पर भूल के बाद तत्काल तुमने सँभल कर··· अपने को सँभाल कर जिस आत्मगौरव का परिचय दिया है क्या वह स्तुत्य नहीं? कौन है जो ऐसे तूफानी क्षणों में अपने को रोक पाता है? बढ़िया के प्रवाह की तरफ किसका मन सब बंधनों को तोड़ कर उस समय नहीं दौड़ जाता। तुम्हारे अवलम्बनहीन हृदय ने इतने उन्माद के साथ पाये आश्रय को ठुकरा कर उस समय क्या कम महान काम किया है। मैं केवल तुम्हारे दृष्टिकोण से देख कर कहता हूँ यह। संसार के पिच्छिली पथ में किसका पैर नहीं फिसलता। पर गिरते-

गिरते सँभल जाना—न केवल अपने को वरन अपने सहयोगी-सहयात्री को भी बचा लेना—कितना हितकर—कितना महान ! तू सोचती है मुझे इसका कम अभिमान है। जिनकी तृष्णाएँ नियमित रूप से शांत होती रहती हैं वे भी वैसी स्थिति में अपने को न रोक पाते। मैं उस स्थिति विशेष की मानसिकता को दोषी मानता हूँ—तुझे नहीं। तेरा मुँह देखने से—तेरी बातें सुनने से पता लगता है कितना भीषण दंड तू पा चुकी है। क्या मेरा हृदय वेदना से व्यथित नहीं होता। मन में निषिद्ध विचार आया ही करते हैं। उनसे अपने को साफ बचा ले जाना तेरी जैसी का ही काम है। उठ मुँह धो डाल !

अनुगता याचकी-सी शांति चुपचाप खड़ी सुन रही थी। काँपते पैरों हाथों से बढ़ लोटे को ले मुंह धोने लगी। विमल ने कहा—हरी ! भाभी से जाकर चाय बनवा ला—खाली चाय। एक लोटा पानी और रख जा। तौलिया ले आ। जल्द। खुद ढूढ़ लाना।

दूसरा लोटा पानी आने पर शांति ने फिर एक बार सिर और मुँह धोकर तौलिये से पोंछा। उसका अंग परिचालन बड़ा सुस्त था। जैसे वे सब क्षत-विक्षत हो गये हों। चुपचाप खिड़की से टिक कर खड़ी हो गयी।

विमल ने कहा—सुबह से तुमने खाया पिया नहीं। कितना सूखा सूखा है मुँह तुम्हारा ! तुम्हारी जैसी पुण्य की प्रतिमा के मुँह पर आन्नद की दीप्ति खेलनी चाहिए उसका कहीं नाम नहीं। जिसे दुर्दान्त प्रलोभन से तुम इस प्रकार अपने को ज़ब्र कर वीरतापूर्वक अपना रक्षा कर आयी थी उससे तुम्हारी चितवन और ऊँची होनी चाहिए थी—तुम्हारा मस्तक गर्व से और तना होना चाहिए था। मैं देख उसका उल्टा रहा हूँ। इस वेदना के पीछे कैसा छविमय निष्ठापूर्ण भाव अंकित है ! पावनता की यह मांगलिक सूर्यलेखा बिना भीतरी बल और कौमार्य के नहीं आ सकी ! विभा की अंशुमालिका हो तुम ! शुचिता की अरुणा हो—साध्वी गरिमा की पुन्यायन ज्वाला ! गौरव और दीप्ति

के आडम्बर से वर्जित तुम मेरे कितने बड़े अभिमान की अधिष्ठात्री हो क्या जान सकोगी। शायद मैं तुम्हें न जान सकूँगा। तुम्हें लज्जा और कुंठा कैसी ? वह मुझे होनी चाहिए जो तुम्हें ऐसे अनधिकारी व्यक्ति के संपर्क में सौंप गया। जो नारी के आदर सम्मान पर आक्रमण करता है—इस प्रकार उसे अपनी इच्छा-पूर्ति की ओर खींचने की चेष्टा करता है उसे और क्या कहूँ। तुमने मेरा सिर ऊँचा कर दिया। मुझे आशा है तुम्हारा प्रहार उसके हृदय पर सदा अंकित रहेगा।

शांति विमल के बदले हुए स्वर से विस्मित कुछ कुछ पुलकित हो रही थी। वह अपनी जगह से तिल भर न हिली-डुली। ग्रीक या रोमन मूर्तिकार द्वारा बनायी गयी, वेदना की शुभ्र अश्रुमयी अन्त-र्लक्ष्मी-सी वह खड़ी रही। होंठों में लहराती विस्मय की सुधा-धार आँखों की तारिकाओं की सारी कातर-विह्वलता को शराबोर किए थी। विमल के भीतर कर्त्तव्य और प्रेम की बेदाग प्रेरणा पूरे वेग से उमड़ी थी। जो बात उसके निकट इतनी साधारण ही नहीं नैसर्गिक और जीवन-विज्ञानानुमोदिता थी उसी को लेकर—केवल उसके आभास मात्र से कोई सतवन्ती अपार अखंड दुख पा सकती है यह उसके लिये कल्पनातीत था। वह पुरुष होकर शांति के गौरव को भूल गया पर शांति तिरस्कृता, समाज द्वारा वंचिता चिर उत्पीड़िता विधवा होकर असंवृत नहीं हुई—होते-होते सँभल गयी। जीवन के उस बड़े अपरि-चित सुख का स्वाद पाते-पाते नारीत्व की गौरवशाली परम्परा से टूटने की आशंका मात्र से लौट आयी। यह भीषण मानसिक ज्वाला इसी-लिए कि उसके भीतर अचीन्हे सुख के प्रति ऐसी विमुग्ध जिज्ञासा पैदा हुई। विमल को लगा—वह तुच्छ है......तुच्छातितुच्छ है और जो पीली-पीली चम्पे की बेदाग टहनी सी कुंठिता किशोरी है वह महान—अति महान है। उसका पूरा शरीर श्रद्धा से नत हो रहा था। यही नहीं मुक्तकंठ से अपनी हीनता अकिंचनता स्वीकार करने के लिये उसका चित्त उमड़ा आ रहा था। इसे वह कुसंस्कार ग्रस्त समझता

था। यह तो शील तेज और आत्मिक सौन्दर्य की खान है। ईश्वर को न मानने पर भी विमल आत्मा को मानता है। उसकी नित्यता और ध्रुवता को मानता है। सुकर्म,सुविचार सुनीति को मानता हूँ— उनके द्वारा जीवन के उच्चतर होते रहने की क्रिया को मानता है। यहीं पर आत्मा का माध्यम उसे स्वीकार हो जाता है। वह इसी महानता का विद्रुप और उपहास कर रहा था। जीवन में जो एक चिह्न भी नहीं छोड़ गया—एक जीवित स्वप्न बन कर जो रातों रात ढह गया उस सपने की कहानी के प्रति प्रथम मिलन रात्रि जैसी उत्कट एकनिष्ठ, स्थिर अचंचलता......क्या है यह। कैसा विराट मोह है। अन्यत्र कहीं देखा है?—विमल को याद नहीं आता। यह इस पिछड़े हुए, उजड़े हुए, लुटे चुसे सदियों से शोषित देश का नारी-संस्कार है। आवेष्ठन है उसकी चिरागत पुण्य गाथा का। विमल विचलित और विक्षुब्ध हो गया। बोला—इधर आना लल्ली! मेरे पास। आ तो बहन! वहाँ क्यों खड़ी है। सड़क की ओर पीठ किये। पास आ बैठ! निकट न बैठेगी तो मेरा जी न भरेगा।

शांति चुपचाप कुर्सी के सामने पड़ी चारपाई की पट्टी पर बैठ गयी। विमल ने कहा—मुझे लगता है आज मैंने नींद से जाग कर आत्म-अन्वेषण का आनन्दप्रद स्वप्न देखा है। मैं तुम्हारे इस ज्वाला-मुखी से परिचालित दुख के लावे को पहचान न पाया था। तुमने जिस अपनत्व घनत्व को मान कर मुझे यह सुनाया उसे भी मैं न समझ सका। अब सब जान गया हूँ। सब समझ गया हूँ—मेरी आँखें खुल गयी हैं। आज की यह संध्याघड़ी मेरे लिये युग-प्रवर्तिका बन गयी है। न जाने किन पुण्यों का प्रभाव है जो तुझ सी बहन मुझे मिली है—' कहते कहते विमल ने शांति के पैर पर अपना सिर रख दिया।

शांति ने दोनों हाथों से कोमलता-पूर्वक विमल का सिर उठा कर फिर कुर्सी की पीठ से टिका दिया और उत्तेजना से काँपते हुए बोली—क्या कर डाला भैया! क्यों मुझे नर्क में डाल दिया। कहाँ जाकर

इसका परिमार्जन करूँ—कहती-कहती शांति बार-बार हाथ से विमल के तलवों की रज ले लेकर अपने मस्तक से छुआने लगी। आँखों से टप टप आँसू विमल के घुटनों पर गिर रहे थे। उसके हृदय में क्षोभ, अभिमान वेदना और स्पर्श की पावनता की लहर उठ रही थी। विमल ने कहा—अच्छा बदला है यह ! मैं तेरे पैर पर एक बार सिर रक्खूँ तू बार-बार अपना हाथ मेरे पैर की धूल से गंदा करे—माथे पर चढ़ाये। बैठ ! चुपचाप। बैठी रह। शांति घायल मृगी की तरह छटपटाती हुई लोटने लगी। उसकी आँखों से इतनी देर तक यत्न से रोकी आँसुओं की धाराएं फिर बह निकलीं......

विमल ने कहा—ठीक तरह से बैठ जा ! क्यों इतनी दुखी हो रही है ? मैंने तुझसे हार मान ली। अब कुछ न कहूँगा। समझ गया तू कौन है—क्या है—कहाँ है—किस धातु की बनी है। मेरी सारी आशंकाएं तेरी प्रचंड आत्म-ज्योति के सामने नत हैं। तुझे और अधिक पहचान सकूँ—अपने को अधिक तेरी श्रद्धा और भ्रातृत्व के योग्य बना सकूँ......

शांति ने स्थिर हो जमीन पर बैठ कर कहा—भैया ! आशीर्वाद दो:.... पश्चात्ताप की यह व्यथा—यह व्याकुलता अब कम न हो। वासना की लहर मेरी आत्मा को छू भी न सके—केवल क्षण भर के लिये विभ्रांत मस्तिष्क की कल्पना—छिछलती कल्पना बन कर रह जाय। मेरा लोक परलोक अधिक न बिगड़े। जीवन के सारे विश्वास और भक्ति की पूँजी तुम हो। तुम्हारे ऊपर मेरी दृढ़ आस्था है। वह ज्यों की त्यों अकंपित अपरिमेय रहे। इसी के माधुर्य में मैं डूबी रहूँ। और कोई कामना नहीं है। मैंने तुम्हें पूर्ण रूप से पहचाना नहीं—तुम्हारा आदर नहीं किया। उसी का फल है यह ! मुझे अभिशप्त दुर्भाग्य झेलना पड़ रहा है। अब तुम बराबर मेरे हृदय में गूँजते रहो। मेरी जन्म भर की साधना सफल कर दो......कहती-कहती

आँख मूँद कर स्वप्नाविष्ट की तरह शांति भूमि पर उसके पैर टटोलने लगी। हाथों की गति में यंत्रणा का गहरा आर्तनादी कंपन था।

मन के इस पाप को कहाँ ले जाऊँ? प्रतिक्षण इसी जलन में जलती रही हूँ। सोचती थी तुम सुन कर घृणा से मेरी ओर से मुँह फेर लोगे। तुम देवदूत की जाति के हो। जिसे सोच-सोच कर मेरा हृदय दो टूक हो रहा था उसे तुमने इतनी छोटी बात समझ कर उड़ा दिया। इतने से ही काम न चलेगा। मेरा हाथ पकड़ कर अपने पावन स्पर्श के प्रभाव और आलोक से राह दिखाते हुए मुझे शांति के राज्य में ले चलो। मेरा हृदयसंगत धर्मसंगत अधिकार है यह! सबसे बढ़ कर तुम पर मेरा दावा है।

जरूर है! कब मैंने उसे नहीं माना। कब उससे इंकार किया है। अब बस करो। पश्चात्ताप से अधीर तुम्हारी मूर्ति मुझसे देखी नहीं जाती। तुम जितना घृणा करना चाहो—मुझसे करो। मैंने तुम्हारे भीतर यह आग लगायी है। आज तुमने उसका कोई प्रतिशोध नहीं माँगा। उल्टा तुमने स्वर्ग के सौरभ से मुझे भर दिया। जीवन के इस पवित्र शुभ मुहूर्त को चिरस्थाई बना दो। जीवन-सुधा का यह स्रोत अब रुके नहीं। प्रतिक्षण मुझे यह प्रतिदान मिलता रहे। मैं इसी प्रकार अवदात उजागर होता चलूंगा।

उषा चाय लेकर आ पहुँची। शांति अब भी सिर नीचे किये भूमि पर बैठी थी। आँसू अब नहीं बह रहे थे पर सारी देह में रह-रह कर एक कंपन की भीगी लपट दौड़ जाती थी। उषा ने कहा—जमीन पर क्यों बैठी हो लल्ली! तबियत कल से खराब है। लेटी रहो न। आराम करना चाहिए तुम्हें। भैया का अदब करने का यह तरीका नहीं। लेटो वर्ना इन्हें मैं ले जाऊँगी।

विमल ने चाय का प्याला ले लिया। पत्नी से बोला—बैठो!

उषा शांति के पास आकर बैठ गयी। शांति की पीठ पर अत्यन्त स्नेह से हाथ फेरने लगी! उसे लगा...शांति भीतर-भीतर क्रंदन से

अवरुद्ध हो रही है। उषा ने कहा—लल्ली! मेरी ओर देखो। क्या मुझे भूल गयी?

शांति ने फफक कर कहा—भाभी! भैया के साथ कलकत्ते चलो! मैं चलूँगी। मैं यहाँ से चल पड़ना चाहती हूँ। यहाँ अब रहूँगी तो अच्छी न होऊँगी। कोई प्रतिक्षण मुझे अपने निर्दय बूटों के नीचे रौंदता रहता है। चलो मेरी भाभी! तुम चलोगी तो मेरा भी त्राण होगा!

उषा न कुछ जानती थी—न अनुमान लगा सकती थी। एकाएक शांति का मन क्यों यहाँ से ऊब गया यह उसकी कल्पना के परे था। बोली—घबड़ा न! कलकत्ते चल कर कहाँ रहेगी? गोद में इतना छोटा बच्चा लेकर चलना ठीक होगा? चाची यहाँ कैसे अकेली रहेगी। तू जाना चाहती है अपने भैया के साथ चली जा! (मुस्करा कर) मुझे भूल न जाना। कभी-कभी चिट्ठी-पत्री लिखती रहना। सुना है—खूब बड़ा शहर है। वहाँ जाकर लोग अपने घर वालों को भूल जाते हैं। तू न भूलना।

विमल ने कहा—सुन रही हो लल्ली! यह चोट मेरे ऊपर है। गोया मैं तुम लोगों को वहाँ भूल गया था। भूल जाता तो बिला नागा दोनों वक्त खत लिखता!

क्यों झूठ बोलते हो! देवी के मंदिर में बैठे हो। लल्ली के कमरे को मैं देवी के मंदिर से कम नहीं समझती। यहाँ तो सच बोलो। झूठ बोलने के लिये इतनी बड़ी दुनिया पड़ी है। लल्ली कहेगी—भाभी को रोज दो चिट्ठियाँ मिलती थीं सप्ताह में एक दिखाती थी। लल्ली के मन में मेरी ओर दुराव पैदा करना चाहते हो........

जब था भाभी! तब था। पहले जरूर देवी का मंदिर था। अब नर्क का कारखाना है! यहाँ उठते-बैठते पाप की काली छायाएं घूमा करती हैं। मुझको दिखायी देती हैं। मैं बराबर उन्हें देखती हूँ। आँखें खोलती हूँ तो......मूँदे रहती हूँ। तो यहाँ से कहीं दूर

चलना चाहती हूँ । भैया के साथ अकेले कैसे जाऊँगी । तुम्हारी आज्ञा होने पर भी और लोग क्या जाने देंगे । ऐसी बात कहो भाभी। जो अभागिन बेवा को शोभा दे......

'हर्ज क्या है बेटी ! कौन तुमको लेकर अन्यथा भाव मन में लाने का दुस्साहस करेगा । उसी क्षण भगवान उसे दंड देंगे । मेरा चलना कठिन है ! तुम्हारे कहने से क्या होता है । जिन्हें ले चलना है उनसे पूछा है ? वे ले चलना चाहते हैं ? मुझे साथ लेकर निकलने में उन्हें शर्म लगती है । बड़े प्रोफेसर विद्वान की बीबी ऐसी घामड़ और घटिया ! बेपढ़ी-लिखी गँवार । लोग जानेंगे तो क्या कहेंगे......न न ! ऐसे धर्मसंकट में उन्हें न डालो । मुझे यहीं पड़ी रहने दो । तुम जाकर घूम आओ । मैं दादा-अम्मा से कहूँगी । मेरे कहने पर वे कैसे न करेंगे । आपत्ति जब मुझको नहीं तो किसे होगी ।

क्यों मुझे जली-कटी सुनवा रही हो लल्ली ! मन के फफोले फोड़ने का कोई मौका ये हाथ से नहीं जाने देतीं । मैं इनको लेकर बाहर निकलने में शर्माता हूँ । शहर भर में अपनी सज्जनता सरलता के लिये प्रख्यात मैं !

मैं कुछ नहीं जानती । आप लोगों के इस वाद-विवाद से मुझे मतलब नहीं । मैं यहाँ से चली जाऊँगी । आप न ले चलेंगे तो कल बाबूजी (ससुरजी) को पत्र लिखा दूँगी । फौरन वे आ जाएँगे । उनके साथ चली जाऊँगी ! यहाँ न रहूँगी । यहाँ मुझे रौरव नर्क का अहसास रहा है । भाभी ! क्यों मजाक करती हो । मेरी मनोदशा ऐसी नहीं कि मैं तुम्हारे मजाक सह सकूँ ! तुम चलने को तैयार हो जाओगी तो भैया मान जायंगे । वहाँ रहने का प्रबन्ध हो जायगा । जो व्यक्ति भैया के रहने को स्थान दे सकता है वह उनके परिवार को भी दे देगा । यहाँ चाची अकेली क्यों रहेंगी ? मेरा घर है ।

न रहेंगी—उषा ने चिन्तित स्वर में कहा—वे फौरन अपने मायके भागेंगी । इसलिये मैं अपने जाने की बात नहीं करती । अबकी

बार ये थोड़े समय के लिये जा रहे हैं। कहते हैं—महीने भर के भीतर लौट आयंगे। संभव है और जल्द काम खत्म हो जाय। इतने थोड़े समय के लिये परदेश में गृहस्थी बाँधना-जुटाना क्या इनके लिये कम असुविधाजनक होगा। ऐसी क्या बात है? तुम मेरे साथ रहो। इतना अधीर होती हो मानों भैया तुमसे सदा के लिए छूट रहे हैं। तबियत दो चार दिन में ठीक हो जायगी। तब तक ये यहाँ हैं। क्यों तुम्हारा मन एकाएक उचट गया? किसी ने कुछ कहा तो नहीं? किसने तुम्हारे मन का तार इस तरह झकझोर दिया? मुझे बतलाओ कुछ! कहतेकहते उषा ने शांति का नीचे की ओर गड़ा मुखड़ा उठा कर ऊपर खींचा। मुँह अपने सामने करते ही वह अचकचा कर चौंक पड़ी। यह तो महीनों की बीमार जान पड़ती है। उषा उसका मुँह भली भाँति देख न ले इसलिये शांति ने झपट कर अपना चेहरा उसकी गोद में छिपा लिया। उषा की छाती से वह पूरे वेग से लिपट गयी।

उषा ने सिर झुका कर शांति को चूम छाती से लगा लिया। शांति ने नीड़ का विश्राम देती हुई गोद में पड़े-पड़े अपने उच्छ्वसित दीर्घश्वासों को दबाने का यत्न कर रही थी। उसके मुख पर आन्दोलित उन्मत विकार के चिह्न निर्विकार-हृदय उषा की समझ में न आते थे। यह आँसुओं से गद्‌गद्‌ स्वर! कारण क्या है? उसके पति की ओर सप्रश्न दृष्टि से देखा। विमल चुपचाप बैठा गंभीर वेदना के इस वातावरण में अपने मन की कुंठा का किनारा खोज रहा था। आँख के सामने सब तस्वीरें एक-एक कर भूल रही थीं। ठोकर खा कर जीवन के प्रति नयी चेतना—एक नया विवेक जाग्रत हुआ था। छलछिद्रों से भरी दुनिया का दूषित चरित्र अपनी सारी दुर्बलता में उसके सामने खुल पड़ा था। जीवन का भारी अध्याय समाप्त कर आज उसने पुण्य के नवीन पर्व में प्रवेश किया है। जिसका आदर्श सामने है पर जिसका अनुकरण संभव नहीं! प्राण की अधजली बाती जैसे फिर से जल उठने की चेष्टा कर रही है। जड़ता और स्थूल

सांसारिकता से तंद्रिल मन का सारा दैन्य मिट चुका है। उषा से उसकी आँखें मिल गयीं। उषा ने उनमें जैसे बहुत कुछ पढ़ लिया पर रहस्य का जो अभेद्य......कुछ-कुछ डरावना पर्दा सामने पड़ा है यह कब हटेगा ? कैसे वह इन रो-रोकर सूजी अँखड़ियों के भीतर जाय ? कैसे वहाँ का भेद पावे ? पति से वह सब जान सकेगी—उसे विश्वास न था। इस गंभीर एकाकी प्राणी ने कभी उषा को अपने हृदय के भावों के निकट नहीं आने दिया। जीवन के फूल बिनते-बिनते दोनों जरूर साथ रहे हैं—पर काँटें काँटें...वेदना और अशांति के काँटें उसने अकेले ही झेले हैं। शांति गोद में मुँह ढाँपें बैठी है। चारो ओर एक कलमुँही कानाफूसी का समुद्र सा बिछा है। पर वह उन अस्फुट स्वरों को सुन नहीं सकती। शांति वैसी ही निस्पंद निश्चेष्ट पड़ी है। उसका उच्छ्वसित हृदय-वेग जैसे मंद पड़ गया है। रह-रह कर काँपना भी बंद है। इस हरियालियों से भरी साध्वी गोद में वह बहुत कुछ अशांति खो बैठी है। उसके पिंजर के भीतर झंझा के झोंके नहीं आते। भावना की आँधी आँखों के भीतर ही मुँदती-झिपती रह जाती है। लेकिन कब तक......कब तक यह विश्राम मिलेगा ? कब तक जीवन का सर्वस्व सुख जान पड़ने वाली गोद में वह ऐसी ही चिड़िया की तरह दुबकी रहेगी......उसकी छाँह की श्यामलता का मर्मर पियेगी......पीती रहेगी......पीती चलेगी। कब तक......सहसा खाँड़े की तरह उठ कर शांति ने कहा—मेरी बात मान लो भाभी ! आज तक मैंने तुमसे कुछ नहीं कहा। मेरी विनती मान लो......चलो कलकत्ते चलो। यहाँ मुझे नारकीय उत्पीड़न हो रहा है। रात में तुम भैया से बात कर लो। वे तुम्हें मेरी उल्का सी जलती—आग की लकीर मेरी साँस-साँस पर खींचती वेदना समझा देंगे। तुम मेरी जात की हो—मेरी पीर समझोगी। तुम जरूर समझोगी—मेरा विश्वास है। तुम्हारे साथ मैं चली चलूँगी—मेरा मन इस पापी वातावरण से मुक्ति पा

जायगा। कभी फिर जीवन में तुमसे कोई बात न करूँगी......कोई आग्रह न करूँगी एक बार......केवल एक बार यह प्रलय की बाढ़ निकल जाने दो। एक बार! केवल एक बार काल सर्प के फन पर धन-धन करती इस धरती को घूम जाने दो......मुझे यहाँ से दूर...... कहीं सुदूर पहुँच जाने दो। यहाँ मुझे न छोड़ो। अभी तुम लोग बैठे हो। मैं होश में हूँ। तुम्हारे जाने के बाद नहीं जानती मेरी वहशत मुझे किधर ले जायगी—मैं क्या-क्या कर निकलूँगी। लज्जा के माथे पर लात मार कहाँ किस ओर चल दूँगी। इस भीषण अग्नि-परीक्षा से तुम मुझे निकाल सकती हो......तुम्हीं......

शांति के आवेश में उषा को रहस्य की नयी हूक मिली। पति की ओर निश्चयात्मक दृष्टि से बोली—यहाँ क्या होगा? स्कूल के काम का क्या होगा? लीग की लीडरी तुम्हारी जगह कौन करेगा? सारे शहर के लोग तुम्हारा अभाव अनुभव करेंगे। छुट्टी मिल सकेगी?

मैं सब छोड़ दूँगी। लीग से स्तीफा दे दिया है। दोपहर को ही डाक से भेज दिया है। स्कूल से छुट्टी न मिली तो वह भी छोड़ दूँगी। अपने को अधिक न छलूँगी। लौटने पर देखा जायगा। घर मैं स्कूल खोल लूँगी। अभी इस हिंसक पाप से मेरी रक्षा करो। यह मेरा खून कर देगा......मुझे मार डालेगा......मेरा नाश कर देगा......मैं जीना चाहती हूँ......मुझे अपना मोह है। तुम लोग मुझे बचाओ! बोलो......! बचावोगी न भाभी!

विमल उठ कर चला आया था। कुर्सी पर उसकी जगह हरी बैठा इस मन को भारी कर देने वाले......कुछ-कुछ डरावने व्यापार को समझने की चेष्टा कर रहा था। पर उसकी नन्ही समझ में कुछ न आता था। उषा ने कहा—तू कब आ गया रे! जा खेल न! यहाँ औरतों के पास छिपा बैठा है। जब देखो यहीं घुसा रहेगा। जा देख टुन्ना जागा तो नहीं? चाची के पास पड़ा होगा।

हरी चला गया। उषा बड़ी देर तक बैठी शांति को मौन और

मुखर तसल्लियाँ देती रही। जीवन की काली, भयावनी, निस्संग एकाकी रात में कोई घनीभूत वेदना—गहरा दर्द भी इसी तरह उठ-उठ कर—गिर-गिर कर तसल्लियाँ देता है। ऐसा ही अपनापन उसमें होता है।

तेरह

रात में उषा ने विमल से सब बातें जानने की चेष्टा की पर विमल ने केवल सांकेतिक रूप में बताया। किस प्रकार मन में दुर्बलता का आभास मात्र पा जाने से शांति सब कुछ छोड़ कर भगी जा रही है और विदारक पराभव की यंत्रणा भोग रही है यह देख कर उषा का हृदय क्लेश से भर गया। यातना के किस त्रासी कुम्भीपाक में वह जल रही है यह उषा ने शांति के दग्ध होने से बचे शरीर और मुख पर देख लिया था। कैसी क्षत-विक्षत, शून्य और निष्प्राण वह हो गयी है। कुछ न कुछ उसकी इस ज्वालामयी वेदना के शमन के लिये करना होगा। बड़ी देर तक पति-पत्नी पड़े गहरी टीस से भरे हुए अलग-अलग इस कठिन स्थिति पर विचार करते रहे। उषा की कलकत्ते जाने की तबियत न होती थी। विमल थोड़े समय के लिये यह झंझट लेकर वहाँ न जाना चाहता था। दो तीन हफ्तों के बाद उसे लौट कर आना है। तब तक के लिये जाकर गृहस्थी जमाना नये सिरे से सब आयोजन करना उसकी समझ में न आता था। उषा ने कहा—यह हो सकता है कि तुम अब कलकत्ते न जाओ। यहीं रहो। काम यहाँ न चला आयेगा? तब शायद मान जाय।

मेरा लौट कर जाना जरूरी है। वहाँ से मैं जल्द से जल्द आ सकता हूँ पर जाना पड़ेगा। मेरे यहाँ रह जाने से क्या होगा?

लल्ली अपने दुख के सहारे ही जियेगी। मैं अपने कंधों पर उसका दुख कैसे ले सकूँगा। वह स्वयं झेलने से झिलेगा। व्यर्थ है यह! यही दमन मानव को दुर्बल और अकिंचन बनाता है। मैं मानता हूँ—पवित्रता के प्रति नारी का हृदय श्रद्धा और अनुराग से परिपूर्ण रहता है। पर उसे निभाने का यह तरीका गलत है। मैं उसके इस मार्ग का अनुमोदन नहीं कर सकता। जिस दमन पर लल्ली को इतना विश्वास है— संभव है तुम्हें भी हो— वह मानसिक गुलामी का ही रूप है। किसी प्रकार का कोई नैतिक आधार उसका नहीं। हमारे अज्ञान और आत्म-विवेक के कारण वह अपना कठोर बंधन कर्त्तव्य का आवरण पहन-पहन कर जकड़ा करता है। लेकिन दमन से जीवन की निश्चयात्मक प्रवृत्तियों को निर्मूल नहीं किया जा सकता। वे दबती शात हो सकती हैं पर तुरंत किसी न किसी अन्य विकृति का रूप ले पनप उठती हैं। दमन से विश्वासों और सिद्धातों को नहीं कुचला जा सकता। इसे एक प्रकार का धीमा धीमा बलिदान कहा जा सकता है। बड़े-बड़े ऊँचे शब्दों में इसकी गरिमा महिमा गायी जा सकती है। पर यह आचरण सदैव अपने उद्देश्य के विरुद्ध जाता है। अपने महान उद्देश्य का प्रतिद्वंदी होकर वह विफल हो जाता है। ऐसे बलिदान का मूल्य तिल-तिल कर क्षय की अवस्था में आत्महत्या करने से अधिक नहीं। मन की प्रमादी मोहावस्था है यह! तुम यह सब क्या समझोगी!

सचमुच उषा यह सब न समझती थी। उसके मन में एक कराह उठी—ऊँची उठी फिर धीमी पड़ गयी। अपनी व्याकुलता की साँस को भीतर-भीतर उसने घोट लिया। पति की आखिरी बात ने उसके भीतर गहरी अपार्थिव चीख—एक घिरता हुआ अभिमान जगा दिया। मुँह फुला कर बोली—मैं गँवार अपढ़......क्यों ये बातें समझूँगी। सारी समझ तुम्हारे पास है—बाकी सब मूर्ख हैं......

विमल ने ठहाका लगा कर कहा—नाराज हो गयीं। तुम भी खूब

हो। हम दूसरे की इतनी बड़ी समस्या का हल निकाल रहे हैं वहाँ अपनी बात को लेकर नाखुश होना—खुश होना..... कैसा लड़कपन है। वही बात तुम कहो तब ठीक है......मैं कहूँ तो मुँह फुलाओ। इससे क्या......तुम मूर्ख हो तो मेरी हो......बुद्धिवती हो तो मेरी! मैं बराबर निराग्रह करता रहा हूँ। कभी तुमसे या अपने जीवन से कुछ माँगा नहीं। आखरी वक्त अब क्या शिकायत करूँगा। मैंने मजाक में कहा था......मैं जानता हूँ—तुम बुद्धिवती होती तो इतनी सुंदर न होतीं......नक्षत्रों से खचित फाल्गुनी रात की बौराती श्यामलता और गौरता एक साथ तुम्हारी देह में ऐसी उन्मादक न हो उठती......

उषा को हँसी आ गयी। रूप और बुद्धि का बैर होता है—ऐसी बात नहीं। बोली—लल्ली को देखो। कितनी रूपवती है—सिंदूरी चाँद की चाँदनी जैसी। क्या कम बुद्धिवती है किसी से ? मर्द होती तो न जाने कहाँ पहुँच जाती।

इसीलिये वह इतना कष्ट झेलती है। अपवाद है न वह ! अपवाद सदैव यंत्रणा में घुला करता है—चाहे वह यंत्रणा मानसिक हो—चाहे शारीरिक—चाहे आत्मिक। यदि बुद्धिवती न होती तो इतने परिताप की जरूरत उसे क्या थी। क्यों उसका वेदना के वेग से बिखरा विवश मन एकाग्र न हो पाता ! उसकी मिसाल मत दो उषा !—कहते कहते पत्नी की ओर विमल ने स्निग्ध विस्मय की भावना से देखा......कई अपूर्ण आँसू उसकी आँखों में आरती की बत्तियों तरह एक साथ जल उठे थे......बड़े बनने के क्रम में लीन आँसू......

भाग्य की बात है। मा-बाप ने अच्छा घर-वर देख कर विवाह कर दिया। वे क्या जानते थे कि भाग्य में ऐसी उजड़न है। बेचारी एक बार पति को ठीक तरह देख भी न पायी। देख लेती तो उसकी सुधि में रो तो सकती। कभी-कभी जब चर्चा करती है तो आँख से एक

आँसू नहीं गिरता। कैसा भयंकर अलगाव है यह! भीषण तटस्थता···
···जो अपने को अपने में आभासित नहीं होने देती......इतना बड़ा पारदर्शी तल पाकर भी जिसका रूप कभी बिम्बित नहीं होता···
···अपरिचय और घना होता रहता है......मरे सत्य की तरह।

कहती हो—तुम बेवकूफ हो! बातें कैसी लच्छेदार करती हो। निराश भी होना चाहूँ तो निराश होने का मौका नहीं। लल्ली को मानसिक पीड़ा है। इतनी तीव्र पीड़ा होती है तभी हिस्टीरिया का फिट आता है। तुम क्या तय करती हो? सुबह से फिर यही बात करेगी। कैसी प्रतिक्रिया उसके ऊपर हुई है। लगता है बाहर निकलने में भी उसे ग्लानि होती है......गतानुगति का इतना बड़ा भय! उस संसर्ग से बनी स्मृति में जी नहीं सकती। बोलो कलकत्ते चलोगी? चलो घूम आओ कहाँ दुबारा जाना होगा।

तुम और लल्ली चले जाओ! मेरे चलने की जरूरत क्या। लल्ली को मेरे साथ क्या मिल जायगा? उसे तुम्हारी चाह है। तुम साथ रहोगे। वह धीरे-धीरे अपनी लज्जा से उबरती चलेगी—मैं चलूँगी व्यर्थ में तुम दोनों की आज़ादी में खलल पड़ेगा—अति सहज आत्मीयता से चेहरे पर बिना किसी तरह का कोई भाव झलकाये उषा ने कहा। विमल भीतर-भीतर और अपनी ओर होने लगा।

उषा ने विमल की याद में ऐसी बात नहीं की थी। उसको उषा की भीतरी चमक पकड़ाई न देती थी। क्या अन्तर्ध्वनि में व्यंग यह नहीं? किसी तरह का कोई उपालम्भ भी नहीं है यह। एक अनुप्राणित स्तब्धता इसमें है—जैसे सांध्यकालीन पहाड़ी झील में होती है—इसके पीछे सूक्ष्म—अतिशय सूक्ष्म आहत अभिमान की तरंग है—कुछ कुछ वैसी जैसी लबालब भरे कटोरे को उँगली से छू देने पर उसके जल में पैदा होती है......जिसमें आकार नहीं होता पर घनत्व होता है......किसी प्रकार का खास दावा न होकर जिसमें आंतरिक गुरुत्वाकर्षण की छिपी ललकार होती है।

विमल ने कहा—मैंने उससे कहा था। मैं जानता हूँ इस स्थिति में तुम्हारा मेरे साथ चलना चाची को बुरा लगेगा। पुराने विचार की स्त्री हैं! छोटे बच्चे को लेकर मेरे साथ तुम्हारी इतनी लम्बी यात्रा वे पसंद न करेंगी। लल्ली नहीं मानती। तुम्हारे बिना वह न जायगी। मैं व्यर्थ की उलझन में पड़ जाता हूँ। अकेले मेरे साथ जायगी तो रहेगी कैसे? मैं दिन भर प्रकाशक के दफ़्तर में बैठ कर काम करूँगा। अकेली पड़ी-पड़ी स्मृति के प्रत्याक्रमणों से तिलमिलाया करेगी। तुम रहोगी तो उसे बोलने हँसने के लिए एक साथिन रहेगी। मैं उसकी जिद को गलत नहीं समझता। यह निरुद्देश्य आवेग लेकर वह मेरे साथ चली तो जायगी पर क्या प्रसन्न रह सकेगी? क्या अपनी कुढ़न को भूल जायगी? ऐसा न कहो। चलो तुम चाची को समझा बुझा दिया जाय। कह दूँगा—मेरी तबियत ठीक नहीं रहती। खाना मन का नहीं मिलता......तब वह मान जायँगी। और कुछ कहा जाय?

उषा ने कहा—मैं......मैं न जाऊँगी। बच्चे को तकलीफ होगी। क्या करूँगी जाकर?

तकलीफ यथा संभव न होगी। वहाँ चल कर करने की एक रही! तुम अपने लिये नहीं चल रही हो। तुम एक दुखी और आत्म-प्रवंचित प्राणी को शांति संतोष प्रदान करने चल रही हो।

दोनों जीने पर किसी की आहट सुन कर चौंक पड़े। रात को दस बज रहा था। ऊपर की सीढ़ी पर खड़े होकर शांति ने पुकारा—भाभी!

लल्ली! चली आ! क्या बात है?—उषा ने किंचित विस्मय से कहा—

चाय का पैकेट चाहिए। बाबूजी आ गये······इस गाड़ी से। उनके लिये बनेगी।

उषा ने आल्मारी से निकाल कर चाय का नया पैकेट दे दिया। विमल ने कहा—लल्ली! बैठो पाँच मिनट। बाबूजी का इस समय

आने का प्रयोजन......तुमने बुला भेजा था। क्यों वे आज आये—अभी आए—अभी?

मैं क्या जानूँ भैया—शांति ने निरुत्साहित निर्विकार भाव से कहा—मैंने बुलाया नहीं। तुम्हें शायद यह ख्याल हो रहा है। सत्य है मैंने उन्हें नहीं बुलाया। खुद आये हैं वे! मुझे बुलाने के लिये आये होंगे। कल पता चलेगा। इससे क्या? चाय बना कर पिलानी होगी। तुम पिओ तो एक प्याला तुम्हें बना कर ले आऊँ? पियोगे?

नहीं लल्ली! मेरा मन भारी है। चाय हल्के मन को हल्का कर देती है......भारी मन को और भारी! तुम क्यों तकलीफ करोगी। तुम्हारी तबियत ठीक न होगी। उषा चली जायगी। वह बना देगी जाकर। बच्चा सो रहा है। मैं जाग रहा हूँ। पर मेरे जागने और इनके रहने से प्रयोजन?

उषा ने कहा—मैं चलती हूँ। सब ठीक कर दूँगी। खाना बनेगा। अकेले तू कैसे सब करेगी।

नहीं भाभी! शांति ने दृढ़ स्वर से कहा—तुम बैठो! मैं सब कर लूँगी। तुम अब न उठो। भैया! मेरी बात का ध्यान रखना मैं अपने से एक अणु अब अलग नहीं होना चाहती। तुम चाहोगे मैं वहाँ जाने से बच जाऊँगी। यहाँ रहना मुझे किसी भाँति स्वीकार नहीं। मैं यहाँ का जीवन नहीं जी सकती।......कोई मुझे गरदनियाँ देकर यहाँ से भीतर-भीतर भगाता है......

शांति चली गयी। उषा और विमल निस्तब्ध एक दूसरे की ओर देखते पड़े रह गये। उनके शब्द गले तक आ आकर ठिठक जाते थे। प्राण भीतर-भीतर झुके प्रतीक्षमान थे। दारुण अभिशाप है वैधव्य का जो आत्मरक्षा की चुटीली भावना से इस प्रकार विचलित हो उठा......यहाँ से और कहीं जाने का सुयोग न मिलेगा तो उस बंधन के जाल में जा बँधेगी जहाँ जाकर उसके व्यक्तित्व का कोई अस्तित्व न रह जायगा।

उषा ने कहा—तुम्हारा खाना रक्खा है। खा लो तब सोओ।

मुझे भूख नहीं। तुमने इतने प्रेम से बनाया। मैं नहीं खा रहा! तुम्हें मान होना स्वाभाविक है!

उषा हँसने लगी। क्या आज ब्याह कर आयी हूँ जो इस तरह बात-बात पर मान करूँगी—रूठूँगी। खाना रोज बनाती हूँ। इच्छा नहीं है न खाओ। कभी-कभी मजेदार बात कहते हो। न जाने बूढ़ा क्यों आ पहुँचा? उस बार लल्ली ने साफ-साफ कह दिया था—मैं कभी न जाऊँगी।

वह उसकी बहू है! बहू पर उसका कानूनी अधिकार है। चाहे तो जबरदस्ती ले जा सकता है। यह भलमनसाहत है उसकी जो कुछ कहता नहीं। लल्ली स्वयं उसके साथ जाने को तैयार बैठी है। मौके से आ गया! तुम कलकत्ते न चलोगी तो वह ससुराल चली जायगी। कैसी निराशा होगी उसे उस समय—तुम सोच सकती हो।

मैं कुछ नहीं सोच सकती। समझ भी मुझमें नहीं। मैं केवल अनुभव कर सकती हूँ। घूमते-घामते आदमी जब थक जाता है तो कहीं न कहीं विश्राम की जगह चाहता है। तुम न दोगे कहीं और निकाल लेगी।

मैं देने के लिये तैयार हूँ। तुम नहीं मानती। डरती हो तुम्हारी जगह वह न घेर ले। और तुम्हें क्या डर है। क्यों इंकार करती हो?

जी नहीं! मैं इतनी डरपोक नहीं। जानती हूँ जो मेरा है वह आज का नहीं युग-युग का है। वह चिरकाल रहेगा। कोई उसे छीन नहीं सकता—उसका हरण नहीं कर सकता। इतना भय मेरे मन में रहता तो लल्ली इस मकान में पैर न रख सकती। तुम जानते हो फिर भी मुझे अपवाद लगाते हो। ठीक है। तुम्हें अधिकार है। चाहे जो कहो। मुझे सिर झुका कर सब सुनना होगा। पत्नी हूँ कि मज़ाक!

विमल ने कहा—फिर क्यों नहीं चलतीं? कौन बात है जो तुम्हें रोकती है। मैं बार-बार कहता हूँ। लल्ली रट लगाये है। तुम्हारा हाल

है—मूरख टेक गही सो गही। कोई बात नहीं सुनतीं। क्या कहूँ मैं··· जो समझा कह दिया।

गलत समझा गलत कहा तुमने! तुम्हारी महानता के अनुरूप यह बात नहीं। कोई छोटा आदमी यह कहता मैं सुन लेती। तुम उदार परिमाणहीन हो क्या मैं नहीं जानती? मजाक में भी ऐसी बात न कहा करो। मुझे कष्ट होता है।

तुम्हें ऐसी बात कहनी चाहिए। खुद शुरुआत करती हो। जब दूसरा कहता है तब अपने दिल की दुहाई देती हो। अच्छा कायदा है!

शांति दूसरे दिन एक बार भी विमल के पास न आयी। विमल को कई दिन रहना था। उसकी पत्नी भी उस दिन घर के कामों में फँसी रहने के कारण वहाँ न जा सकी। विमल दिन भर घर में पड़ा रहा। शांति के आने की प्रतीक्षा बार-बार करता रहा। शांति नहीं आयी। शाम को हरी दिखायी दिया। विमल ने बुला कर पूछा—क्यों रे! दीदी क्या कर रही है—आज आयी नहीं।

हरी ने मुंह बनाते हुए कहा—वह जा रही है भैया! अपनी ससुराल। मा ने समझाया पर मानती नहीं। जाने दो भैया! क्या किया जा सकता है। बाबूजी कल जायँगे। स्कूल से छुट्टी लेने के लिए दोपहर में रायसाहब के यहाँ गयी थी। बड़ी अपने मन की लड़की है। दादा-अम्मा किसी की नहीं सुनती।

विमल चुपचाप सुनता रहा। उसकी इच्छा नहीं हुई कि वह हरी द्वारा शांति को बुलवा ले। लोगों से मिलने जाना था। शाम को वहाँ विषण्ण मन से चला गया। रात को पत्नी ने कहा—कल लल्ली जा रही है। तुमने सुना है।

नहीं—विमल ने कहा—कैसे मालूम हुआ। यहाँ आयी थी?

अम्माजी आयी थीं। कह रही थीं। तैयारी कर चुकी है। मैं दिन भर काम में लगी रही। एक बार न जा सकी। कल भेंट होगी। पर

दोपहर को चल देंगे। सुबह आवेगी। बिना अपने भैया से मिले कैसे जा सकेगी?

विमल की कुछ बोलने की इच्छा न हो रही थी। प्रच्छन्न वेदना उसके प्राण में अवसादी घुमड़न भरती जा रही थी। चुपचाप खाना खाकर लेट गया। उषा से अधिक बात करने की इच्छा न होती थी। उषा भी दिन भर काम करते करते थक गयी थी। चाची को दो दिन से दमे का दौरा आ गया था। वे कुछ न करती—चाहतीं भी तो उषा न करने देती।

दूसरे दिन दोपहर को सोफे पर पड़े किताब पढ़ते-पढ़ते विमल ने किसी के आने की आहट पाकर आँखें उठायीं—शांति सामने खड़ी थी लाल-लाल आँखें लिये। विमल ने कहा—लल्ली! तुम दिखायी नहीं पड़ी कल। बैठो! नहीं नहीं यहाँ बैठो सोफे पर—जमीन पर नहीं।

शांति चुपचाप सोफे के सिरे पर नीची आँखें कर बैठ गयी। विमल फिर चुप हो गया। दस-बारह मिनट बाद सन्नाटा तोड़ते हुए शांति ने कहा—मैं जा रही हूँ भैया! आपको प्रणाम करने आयी हूँ। मेरी गाड़ी का समय है।

विमल ने गंभीर स्वर से कहा—सुन चुका हूँ तुम्हारे जाने का निश्चय। कुछ कहना व्यर्थ है। जो ठीक समझो करो। जिसमें तुम्हें सुख मिले......

शांति ने सिर झुका किसी तरह सारी शक्ति लगा कर विमल के पैर छुए। रुलाई का लहरा उसके होंठों तक आ रहा था जिसे उसने सारी शक्ति लगा कर भीतर ठेल दिया। वह रोना नहीं चाहती। रोने का स्थान अब मुँह से एक शब्द न निकालने के निश्चय ने ले लिया है। वह रोयेगी नहीं—कुछ बोलेगी नहीं—मुँह से एक शब्द न निकालेगी। विमल ने कहा—इस संबंध में तुमने मेरी राय नहीं ली। उसकी जरूरत नहीं समझी। अपने मन से जो चाहा तय कर लिया। कल उषा पूछने लगी—लल्ली क्यों जा रही है? मैंने कहा—

यह वही बता सकती है। लोग सोचते हैं—कम से कम उषा सोचती है—मैं तुम्हारे सब कामों का कारण जानता हूँ। लेकिन...... अच्छा......एक दिन तुमने जहाँ जाने से इतने दर्प के साथ इंकार कर दिया था वहाँ अब माता-पिता की अनिच्छा होने पर भी जाओगी मैंने न सोचा था—पहले जा सकती थीं।

मुझे संतोष है मैं तुमसे छिपा कर कोई बात अपने साथ नहीं ले जा रही। मा-बाप की अनिच्छा सारी की सारी ऊपरी है। पिछली बार उन्होंने कितना आग्रह मुझसे जाने का नहीं किया था। आज उनके रोकने को क्या अधिक मूल्य दूँगी मैं? अब सारे दुख दुर्भाग्य की उपेक्षा मैं कर सकती हूँ। जो एक दिन कठिन लगता था वह काल की एक ही चोट से अतिशय सरल लगने लगा। बस मैं यही कहने आयी हूँ—मेरे अपराध क्षमा कर देना। यह यंत्रणा कभी और न भोगनी पड़े—यह आशीष मैं तुमसे चाहती हूँ। तुम दोगे तो मैं अवश्य पाऊँगी। दोगे न मुझे......अपने प्रति और सहज बना दोगे न!

विमल कुछ न बोला। कुछ मिनट और बैठ कर शांति उठ पड़ी। फिर विनयपूर्वक दोनों हाथ जोड़ कर चुप-चाप बिना एक बार पीछे देखे नीचे उतर आई। विमल वैसा ही अडोल प्रस्तरित बैठा रहा... बैठा रहा। शांति के मुख पर अंकित पीड़ा कितनी 'प्राफेटिक' थी......कितनी......कितनी......कितनी!